श्री
समयसार नाटक
रचियता :-
स्व॰ पं॰ बनारसी दास जी
हिन्दी टीका
स्व॰ श्री बुद्धिलाल श्रावक
प्रकाशक:
श्री वर्द्धमान पब्लिक लायब्रेरी
धर्मपुरा देहली।

प्रकाशक
राधामोहन जैन
श्री वर्द्धमान पब्लिक लायब्रेरी
मन्त्री
धर्मपुरा, देहली।

सब सारन में सार है,
समयसार को सार।
बिन जाने इस सार के,
है नर जन्म असार॥

मूल्य दो रुपया

मुद्रक
शिवजी मुद्रणालय
किनारी बाज़ार, दिल्ली

कलिकाल सर्वज्ञ

आचार्य कुन्दकुन्द का संक्षिप्त परिचय

महर्षि कुन्दकुन्द आचार्य को कलिकाल सर्वज्ञ कहा जाता है। शास्त्र प्रारम्भ के पूर्व मंगलाचरण में आ० कुन्दकुन्द देव का स्मरण गणधर देव के बाद किया जाता है और इनको गणधर तुल्य माना जाता है। आपके बाद के (उत्तरवर्ती) सभी आचार्य अपने को कुन्द-कुन्द आम्नायी कहने में गौरव मानते हैं। आ० कुन्दकुन्द का स्थान सर्वोपरि है। मंगलाचरण में आ० कुन्दकुन्द को मंगल स्वरूप माना गया है।

> मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी।
> मंगल कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तुमंगलम् ॥

दि० जैन समाज में भ० कुन्दकुन्द का आसन बहुत ही ऊँचा है। दि० सम्प्रदाय का मूलाधार इन आचार्यप्रवर के महान व्यक्तित्व में स्थित है। यदि कुन्दकुन्दाचार्य न होते तो दिगम्बर सम्प्रदाय आध्यात्मिक क्षेत्र में इतना उन्नतशील भी न होता। भ० कुन्दकुन्द का सम्बन्ध दक्षिण भारत से विशेष रहा है। ईसा की प्रथम शताब्दि में दक्षिण भारत के पिदपनाडु नामक प्रदेश के अंतर्गत कुरुमरई ग्राम में आपका जन्म हुआ था।

आपके पिता श्री का नाम करमुण्ड और पूज्य माता जी का नाम श्रीमती था, आपके पिता जी वैश्य वर्णी थे और उस समय के धन जन सम्पन्न महान श्रेष्ठी थे। वैसे आपके जन्म काल का निश्चित समय अभी तक ठीक २ ज्ञात नहीं हो सका है फिर भी ऐतिहासिक विद्वानों

ने आपका समय ईसा की प्रथम शताब्दि माना है। प्राकृत पट्टावलि में भी वि० सं० ४९ दिया गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि आप ईस्वी सन् के प्रारम्भ न होने के पूर्व ही आपका जन्म हुआ था क्योंकि विक्रम सम्वत् ईस्वी सन् के ५७ वर्ष पूर्व प्रचलित हुआ था।

आप दीर्घपुरुष थे और आपकी आयु ९६ वर्ष की थी। ईस्वी पूर्व सन् ८ में आपको आचार्य पद की प्राप्ति हुयी इससे जाना जा सकता है कि आपका जन्म ईस्वी पूर्व सन ५२ में हुआ था। और आपके आचार्य जिनचन्द्राचार्य थे। पट्टावलि में आपको जिनचन्द्राचार्य का शिष्य लिखा है। आप ११ वर्ष तक बाल्यावस्था में रहे ३३ वर्ष साधु रूप में, ५२ वर्ष आचार्य पद पर आसीन रहे इस हिसाब से आप की ९६ वर्ष की आयु थी।

आध्यात्मिक विषय के तो आप जन्मजात रसिया और प्रबल ज्ञाता थे। आध्यात्मिकता के संस्कार आपको अपनी माता जी से मिले थे। जब आप नवजात शिशु थे तब आपकी माता जी आपको पालने में झुलाती हुयीं निम्न प्रकार गाया करती थी।

> शुद्धोऽसिबुद्धोऽसि निरंजनोऽसि,
> संसार माया परिवर्जितोऽसि।

उक्त प्रकार की लोरियां गाकर माता जी बालक को पीठ आहिस्ता-आहिस्ता थपथपा कर सुलाती थीं। इन लोरियों द्वारा आप को ऐसा संस्कार मिला कि आपने अपने युग में भारत देश में अध्यात्मवाद की गंगा प्रवाहित कर दी जिसमें डुबकी लगाकर असंख्य मानवों को प्राण-दान मिले और मुक्ति की राह मिली।

सेठ करमुण्ड जी सन्तान हीन थे और सेठानी श्रीमती जी सन्तान हीनता के कारण उदास रहती थीं। अतः सेठ जी सेठानी जी को धर्म की बातें सुनाकर मन बहलाते रहते थे। उनकी गायों को चराने वाला एक मतिवरण नाम का ग्वाला था। एक दिन ग्वाले ने देखा कि सारा

जंगल भस्म हो गया है किन्तु बीच में कुछ हरे भरे पेड़ बच रहे हैं। यह देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वहाँ उसे एक संदूक मिला खोल कर देखा तो उसमें आगम ग्रंथ रखे हुए थे। ग्वाला ग्रंथों को उठा लाया और अपने घर रख दिये।

भाग्यवशात् एक दिन एक विशुद्ध चरित्र के धारक निर्ग्रन्थ मुनि पधारे तब सेठ जी एवं सेठानी जी ने भक्तिभाव से पड़गाह कर नवधा-भक्ति की शुद्धिता पूर्वक मुनिराज जी को आहार कराया। इस आहार-दान के कारण युगल दम्पत्ति ने अमित पुण्य संचय किया। और उन्हें अपने आप में अचानक विश्वास हो गया कि अब हम निसन्तान नहीं रहेंगे। इसी समय मतिवरण चरवाहे ने आगम ग्रंथ जो कि उसे जंगल में मिले थे मुनिराज जी के लिए भेंट कर दिये।

इस शास्त्रदान के प्रभाव से उसके ज्ञानावरणी कर्म का बंध क्षीण हुआ और क्षयोपशम अधिक हुआ। यही मतिवरण ग्वाला आगे चल कर इन्हीं श्रीमती जी सेठानी की कूँख से पुत्र हुआ। यह पुत्र बचपन से ही महान प्रतिभाशाली असाधारण व्यक्तित्व लिए हुए पैदा हुआ था। और देखते ही देखते समस्त विद्याओं एवं कलाओं में पारंगत पूर्ण पंडित हो गया। शुक्ला द्वितीया के चन्द्र की तरह यह बालक दिन प्रति दिन वृद्धिगत होता रहा।

एक दिन श्री जिनचन्द्राचार्य विहार करते हुए कुरुमरई ग्राम पधारे तब सेठ सेठानी पुत्र सहित आचार्य श्री के दर्शनार्थ आये। आचार्य श्री की धर्म देशना सुनकर श्रेष्टि पुत्र पूर्व संस्कारों के कारण प्रति-बुद्ध होगये और घर नहीं लौटे। और माता पिता से आज्ञा लेकर मुनि हो गये। आप आजन्म अखंड बाल ब्रह्मचारी ही रहे। सच तो यह है कि आप आगर्भ दिगम्बर मुनि थे, मुनि दीक्षा लेते समय आपकी आयु संभवतः १०।११ वर्ष की थी। सिद्धान्त के अनुसार ८ वर्ष और अन्त-र्मुहूर्त के अन्दर बालक में केवलज्ञान प्राप्ति की योग्यता हो जाती है।

मुनि होने पर साधक के रूप में आपने घोर साधनायें (तपश्चर्या) कीं। मलय देश के अन्तर्गत हेम ग्राम (वर्तमान पोन्नूर) के निकट स्थित नीलगिरि पर्वत आपकी चरणरज से पवित्र हुआ और इसी पर्वत की चोटी पर आपके चरण भी विद्यमान हैं। इस नीलगिरि पर्वत को वर्तमान में कुन्दकुन्दाद्रि कहते है, और श्री कानजी स्वामी जी यहां ससंघ २-३ बार वन्दनार्थ आ चुके हैं, और कानजी स्वामी जी कुन्द कुन्दाद्रि की उन्नति एवं विकास में महान योगदान दे रहे हैं, यह आनन्द की बात है।

आज से दो हजार वर्ष पूर्व दक्षिण भारत में कांचीपुर (वर्तमान कांजीपुरम् (Kanji puram Pravenccpialras) जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा हैं। आ० कुन्दकुन्द का अधिक समय यहीं पर व्यतीत हुआ था। कुन्दकुन्दाचार्य जैन धर्म के उस समय अद्वितीय ज्ञाता थे। प्राकृत और तामिल भाषा के अधिकारी विद्वान थे।

चारणऋद्धि—

एक दिन ध्यानस्थ अवस्था में ही आपने विदेह क्षेत्रस्थ सीमंधर स्वामी का स्मरण किया था और तीर्थंकर भ० सीमंधर ने परोक्ष रूप में आपको धर्म लाभ दिया था। जिसे सुनकर दो चारण देव आपके दर्शन करने आये और आपको पूर्व विदेह क्षेत्र ले गये जहां कि आपने सीमंधर प्रभु के साक्षात् दर्शन किये थे। कुछ इतिहासकारों का मत है कि श्री कुन्दकुन्द महर्षि को चारण ऋद्धि प्राप्त थी अतः वे स्वयं विदेह क्षेत्र गये थे उन्हें चारणदेव नहीं ले गये थे। कुछ भी हो, पर यह सत्य है कि आ० कुन्दकुन्द, स्वामी विदेह क्षेत्र गये थे। तीर्थङ्कर भगवान के चरण कमलों में बैठकर आपने सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन किया था। १ मतान्तर निर्णय २ सुमर्त शास्त्र ३ कर्म प्रकाश ४ न्याय प्रकाश ऐसे चार ग्रन्थ बनाने साथ लाये थे।

गृद्धपिच्छिकाचार्य—

पूर्व विदेह जाते समय आ० कुन्दकुन्द की मयूर पिच्छिका विमान से उड़कर गिर गयी तब काम चलाने के लिए उन्हें गिद्ध (गृद्ध) पक्षी के परों की पिच्छिका देदी गयी। इस प्रकार आप का नाम गृद्धपिच्छि-काचार्य प्रसिद्ध हो गया।

ऐलाचार्य—

कहते हैं कि जब विदेह स्थित सीमंधर स्वामी के समवशरण में गये तो वहाँ आपके लिए धर्मसभा में ५०० धनुष्य की अवगाहना वाले असंख्यात नर नारी दिखाई दिये। इस भय से कि कहीं मैं इनके पैरों के नीचे न दब जाऊँ। तब भ० सीमन्धर केवली के सिंहासन के नीचे बैठ गये। उस समय विदेह क्षेत्र के चक्रवर्ती भी धर्मसभा में बैठे हुये थे।

उन्होंने सिंहासन के नीचे बैठे हुए आ० कुंदकुंद को अपनी हथेली पर रख लिया। चक्रवर्ती को आश्चर्य हो रहा था कि मनुष्य की तरह हाथ नाक कान पैर सभी कुछ हैं पर यह किस जाति का मनुष्य है? इसको चक्रवर्ती नहीं समझ रहे थे।

अतएव उन्होंने सर्वज्ञ देव भ० सीमंधर से प्रश्न किया—भगवन! यह किस जाति का मानव कीट है। तब भगवान ने कहा—सम्राट्! भरत क्षेत्र के आर्य खंड के ये सबसे बड़े दिगम्बराचार्य हैं। इन्होंने विचार किया कि मैं ३॥ हाथ का ही हूँ और यहाँ के लोग ५०० धनुष की अवगाहना वाले हैं कहीं मैं दब न जाऊँ इस भय से ये सिंहासन के नीचे बैठे हैं। भगवान की वाणी सुनकर सम्राट् ने उनकी खूब विनय की और कहा भाई! ये तो ऐलाचार्य हैं।। ऐला का अर्थ छोटी इलाचयी अथवा केवल इलायची होता है।

कुण्डकौन्डाचार्य—

दक्षिण के कुन्ड कौन्ड प्रदेश से आपका बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध

रहा है। यहाँ पर आपने वर्षों तक आत्मसाधना की और ज्ञान की गंगा बहाते हुए हजारों नर नारियों का आत्म कल्याण किया। इसलिए आपको कुन्डकोन्डाचार्य भी कहते हैं।

श्रुतिमधुर—

श्रुति मधुर नाम से भी आप प्रसिद्ध हैं। आपकी वाणी श्रवणेन्द्रिय के लिए बड़ी मधुर लगती थी जैसे कि जिह्वा के लिए अमृत मधुर लगता है। अतः आपका अपर नाम श्रुति मधुर भी है।

वक्रग्रीवाचार्य—

पूर्व विदेह से लौटने पर आचार्य श्री धर्मप्रचार और सिद्धान्त ग्रंथों के अध्ययन में ऐसे तल्लीन और एकाकार हो गये कि इन्हें अपने तनोंवदन की सुध ही नहीं रही। सतत श्रुत-अभ्यास के कारण गर्दन टेढी हो गई। तब लोग इन्हें वक्रग्रीव कहने लगे और तभी से आप का नाम वक्रग्रीवा चार्य प्रसिद्ध हो गया। किन्तु योग साधना या आत्म साधना के द्वारा आपकी वक्रग्रीवा स्वयमेव ही पूर्ववत् सीधी हो गयी। धन्य है आपकी आत्म साधना एवं तपश्चर्या को।

आ० कुन्दकुन्द की विजय—

एक बार आ० कुन्दकुन्द ने ५९४ मुनियों के संघ सहित श्री गिरनार जी की यात्रा के लिये विहार किया। विहार करते २ श्री गिरनार पहुंच गये। इसी समय श्वेताम्बर सम्प्रदाय का संघ शुक्लाचार्य की अध्यक्षता में यहाँ आया था। श्वेताम्बर लोग चाहते थे कि पहिले हमारा संघ यात्रा करे, क्योंकि हमारा सम्प्रदाय दि० सम्प्रदाय से प्राचीन है।

इस विषय पर आ० कुन्दकुन्द का शास्त्रार्थ शुक्लाचार्य जी के साथ

हुआ। अन्त में कुन्दकुन्दाचार्य के मन्त्र फल से सरस्वती देवी[1] प्रगट हुई और उसने कहा कि दिगम्बर मत ही (सम्प्रदाय) श्वेताम्बर संप्रदाय से प्राचीन है। तब आ० कुन्दकुन्द ने सर्वप्रथम अपने संघ के साथ श्री गिरनार पर्वत की यात्रा कर आदर्श विजय प्राप्त की। और यह सत्य है कि अन्त में सत्य की ही विजय होती है। "सत्यमेव जयते नानृतम्"

पद्मनन्दि—

इस समय दिगम्बर मत की प्राचीनता सिद्ध होने पर कुन्दकुन्द स्वामी ने हजारों की संख्या वाली जनता के बीच अपने कमण्डलु में से कमल-पुष्प प्रगट कर जनता को आश्चर्य चकित कर दिया था। इस कारण आप तभी से "पद्मनन्दि" आचार्य नाम से प्रसिद्ध हो गये।

रचनाएँ—

आ० कुन्दकुन्द देव ने समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, रयणसार, अष्ट पाहुड़, दश भक्त्यादि संग्रह, कुरल काव्य आदि अनेक उच्चकोटि के आध्यात्मिक एवं लोकोपयोगी ग्रन्थों की रचनायें की हैं। आचार्य श्री के इन ग्रंथों को आगम ग्रंथ कहा जाता है।

कुरल काव्य—

दक्षिण भारत प्रारम्भ से ही विद्या का केन्द्र माना गया है वहाँ के अधिकांश लोग विद्या व्यसनी होते हैं। मैलापुर (वर्तमान MELLA PURRAM) नगर तो तामिल विद्वानों का घर ही था। वहाँ एक "विद्वत् समाज" नाम की संस्था थी, इस नगर में जैनियों की भी अच्छी खासी बस्ती थी। ऐलाचार्य ने (कुन्दकुन्द स्वामी) तामिल भाषा में एक "कुरल" नामक महाकाव्य की रचना की और अपने तिरुवल्लुवर शिष्य के हस्तक "विद्वत् समाज" में भिजवा दिया।

१—कहीं २ अम्बिकादेवी का नामोल्लेख मिलता है।

विद्वत्मंडली ने इस महाकाव्य को खूब ही पसन्द किया और वह तामिल साहित्य का एक रत्न बन गया। यह नीति का अपूर्व ग्रंथ है, तामिल देश में कुरल काव्य को "वेद" कहते हैं। आचार्य देव ने इसकी रचना ऐसी उदार दृष्टि से की है कि प्रत्येक धर्म का अनुयायी इस कुरल काव्य को श्रद्धा भक्ति पूर्वक मानता है। धर्माचार्य श्री कुन्दकुन्द जी महाराज स्वयं उदार थे उनकी कृति में साम्प्रदायिकता की गंध नहीं आ सकती। कुरल काव्य के अतिरिक्त आपने तामिल भाषा में किन-किन ग्रंथों की रचना की यह अज्ञात है। ऐतिहासिक विद्वानों को इस ओर शोध खोज करना चाहिये। विस्तार भय से सभी ग्रन्थों का परिचय नहीं दिया जा सकता।

—'स्वतंत्र जी'

जगत मूल ये राग है, मुक्ति मूल वैराग
मूल दोहन को यह कह्यो, जाग सकै सो जाग

समयसार की महानता

त्रिलोक सम्बन्धी जितने भी चर अचर प्राणी हैं वे सभी शाश्वत सुख शांति चाहते हैं, और इसके लिये प्रयत्न भी करते हैं। पर इस प्रयत्न में उनको सफलता नहीं मिलती। जिन पदार्थों के द्वारा यह जीव सुख शांति प्राप्त करना चाहता है जड़ और उनमें अपनी अनुराग बुद्धि रखता है वे पदार्थ सुख शांति के कारण नहीं हैं। हां! सुखाभास तो हो सकते हैं पर यथार्थ सुख नहीं हो सकते और न सच्चे सुख के कारण ही हो सकते हैं, क्योंकि यहां मूल में ही भूल है। सच्चा सुख कुछ और ही है जिसका लगाव जड़ भौतिक पदार्थों से अणुमात्र भी नहीं है।

जो जीव ऐन्द्रिय विषय भोगों में ही मस्त रहते हैं आनन्द मानते हैं और विषय भोगों में रुचि रखते हैं ऐसे जीवों की चर्चा इस समयसार महान ग्रंथराज में नहीं मिलेंगी। सुख शांति प्राप्त करने के सम्बंध में लोगों के विभिन्न मत हैं। कुछ लोग कहते हैं जीव दुष्कर्मों के द्वारा ही सांसारिक असह्य यातनायें भोगते हैं। अगर इन यातनाओं से मुक्ति पाना है तो सत्कर्म करना चाहिए।

कुछ लोगों का मत है कि जिस परमात्मा ने सृष्टि की है उसी की उपासना से दुःखों से मुक्ति होकर सुख शांति प्राप्त होते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि संकल्प और विकल्प ही संसार में घुमाते हैं इन विकल्पों की समाप्ति निर्विकल्प समाधि द्वारा ही हो सकती है। कुछ लोगों का मत है कि आत्मा जो निर्विकार शुद्ध एवं पवित्र है किन्तु उसमें विकार है यही विकार दुःख का कारण है विकार समाप्त होते ही यह आत्मा सुख शांति प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार लोगों की अनेक धारणायें हैं पर वे असत्य हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता, और ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि किसी की धारणा किसी के विरुद्ध है। इन सभी धारणाओं का लक्ष्य एक ही है ईश्वर पद की प्राप्ति, जिसका अपर नाम समयसार भी है। क्योंकि समय नाम आत्मा का है और आत्माओं में जो श्रेष्ठ आत्मा है वह परमात्मा या ईश्वर कहलाता है।

समयसार का अर्थ

"सम् एकी भावेन स्वगुण पर्यायान् एति गच्छति" सः समयः इस निरुक्ति से समय का अर्थ सभी पदार्थों में घटित होता है। क्योंकि सभी पदार्थ अपने अपने गुण एवं पर्यायों से युक्त हैं। "सम् एकत्वेन युगपत् ए अयते गच्छति जानाति" इति समयः। इस निरुक्ति से समय का अर्थ आत्मा होता है, क्योंकि आत्मा ही एक पदार्थ है कि जिसका ज्ञाता द्रष्टा स्वभाव है और वह सभी पदार्थों को जानता है।

समय शब्द के दो अर्थ हैं—१. समस्त पदार्थ २. आत्मा। अर्थात् समस्त पदार्थों में या आत्मा में जो सार है वही समयसार कहलाता है। सभी पदार्थों में सार (श्रेष्ठ) पदार्थ आत्मा नाम का पदार्थ है और आत्म पदार्थ में भी निरपेक्ष सहज शाश्वत चिदानन्द घन आत्म स्वभाव ही सार है। समयसार के अपर नाम बहुत हैं, पर उनमें से कुछ नाम निम्न प्रकार हैं।

परम ज्योति, प्रभु, विभु, ईश्वर, परमात्मा भगवान, परम विशुद्ध, परमपारिणामिकभाव, शुद्ध स्वभाव, ज्ञाता द्रष्टा, जगतपिता, चिन्मात्र, चित्स्वभाव, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, आनन्द घन, निर्विकार, निरंजन, अक्षय, अचल, ध्रुव, महापिता, शुद्ध बुद्ध, अजर, अमर, निरामय, जिन, जिनेन्द्र, सच्चिदानन्दमय, सहजानन्दमय, अपरिणामी, अकर्त्ता, निरामय, चैतन्य, शिवस्वरूप शिवंकर, सर्वज्ञ, आदि।

समयसार कलश टीका में भ० शुभचन्द्र जी ने समयसार की निम्न प्रकार व्याख्या की है।

सं०—सम्यक् त्रिकालावच्छिन्नतया अयन्ति गच्छन्ति पाद्मुवन्ति स्वगुणपर्यायानिति समया:—पदार्थ: तेषां मध्यसार: सरति गच्छति सर्वोत्कृष्टत्वमिति सार: परमात्मा।

सं०—सम्यक् यथोक्त रूपेण अयन्ति जानन्ति स्याद्वादात्मकं वस्तु निश्चित्वन्ति ते समया: सातिशयसम्यग्द्रष्टि प्रभृति क्षीण कषाय पर्यन्ता जीवा: तेषां पूज्यत्वेन सारो समयसार: जिन: इत्यर्थ:।

अर्थ सरल है। ऊपर समयसार के जो दो अर्थ किये हैं, उन्हीं से मिलता जुलता अर्थ इस व्याख्या का है।

यह ग्रन्थ जैन समाज का अत्यन्त सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। आध्यात्मिक विद्या के रहस्य को उद्घाटित करने वाला इतना सरस सरल सुबोध और अपने में पूर्ण अपने ढंग का यह एक ही ग्रंथ है। इसमें शुद्ध आत्मतत्त्व का विवेचन है और शुद्ध निश्चय नय की दृष्टि से लिखा गया है। आत्मा का स्वरूप, आत्मिक गुण, आत्म स्वभाव, आत्मतन्मयता, शुद्धात्मा इन्हीं सबका स्पष्ट एवं विशद विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ के अध्ययन से मानव मन कुछ समय के लिये अपूर्व अध्यात्म पावन गंगा में डुबकियां लगाने लगता है और आत्मा का रहस्य और आत्मस्वरूप की यथार्थता खुल खिलकर निखर उठती है। यह ऐसा ही अपूर्व ग्रंथ है और अध्यात्म विषय का उच्चकोटि का ग्रंथ है।

समयसार की विभिन्न टीकायें

समयसार की रचना प्राकृत भाषा में की गई है। आचार्य अमृतचन्द्र जी ने इस ग्रन्थराज पर आत्मख्याति नाम की विशद टीका की है। इस टीका के अन्तर्गत मूल गाथाओं का भाव विशद करने के लिए आप ने जगह २ स्वरचित संस्कृत पद्य दिये है जिन्हें "कलश" कहते हैं।

इन कलशों की संख्या २७७ है "यह मंदिर यह कलश चढ़ावे" यानी आ० कुन्दकुन्द का समयसार उसे मंदिर के रूप में और अमृतचन्द्र सूरि के संस्कृत पद्य मंदिर के कलश के रूप में हैं। आत्मख्याति टीका में समयसार को शांत रस का नाटक कहा गया है और उसमें जीव अजीव के स्वांग दिखाये गये हैं। इसीलिए बनारसीदास जी ने नाटक समयसार नाम रखा है। अमृतचन्द्र सूरि के कलशों पर भट शुभचन्द्र जी ने (१६वीं शताब्दी) "परमाध्यात्म तरंगिणी" नाम की टीका लिखी है। पांडे राजमल्ल जी ने भी कलशों की एक "बालबोधिनी" भाषा टीका है (ढूंढारी भाषा में) इसके अतिरिक्त पं० जयचन्द्र जी ने भी परमाध्यात्म तरंगिणी टीका पर ढूंढारी भाषा में हिन्दी टीका लिखी है। परमाध्यात्म तरंगिणी नामक ग्रंथ (हिन्दी टीका सहित) श्री महावीर जी से प्राप्य है। जयसेन आचार्य ने भी संस्कृत में टीका की है।

विगत ३ दशक से श्री कानजी स्वामी (सोनगढ के सन्त) इसी समयसार की अध्यात्म गंगा की धारा को अपनी वाणी द्वारा प्रवाहित कर रहे हैं।

—'स्वतंत्र जी'

ईश्वर को प्राप्त करने वाला भव्य जीव अपने घट में अपनी ही साधना करता है। और जिस समय आप में अपने आपको निरीक्षण करता है उसी समय वह स्वयं ही ईश्वर बन जाता है।

कविवर बनारसीदास जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र

कविवर बनारसीदास जी समन्वय वाद प्रधान सुधारक एवं विचारक थे। आज से ३७६ वर्ष पूर्व इन जैसा अध्यात्मवादी दूसरा विद्वान् नहीं था। ये कबीर की कोटि में आते हैं। अध्यात्मवाद सिद्धान्त के द्वारा इन्होंने "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त अपनाया था। आप का संक्षिप्त जीवन निम्न प्रकार है।

बनारसीदास जी का जीवन एक असफल कच्चे व्यापारी का जीवन है। बनारसीदास जी एक आध्यात्मिक व्यापारी थे, अध्यात्मवाद और व्यापार ये दोनों तो परस्पर विरोधी हैं। पर इस अद्भुत विरोधाभास के प्रत्यक्ष दर्शन हमारे लिए बनारसीदास में होते हैं। वे सच्चे अध्यात्म-वादी थे इसलिए वे व्यापार में प्रायः असफल ही रहे। अध्यात्म से रोटी नहीं मिलती, रोटी या आजीविका के लिए बनारसीदास जी को व्यापार करना पड़ा।

बनारसीदास जी के पिता का नाम खरगसेन था और ये जौनपुर में रहते थे। ये सुलेमान के साले लोदी खाँ के दीवान धन्ना श्रीमाल के यहाँ पोतदार का काम करने लगे कुछ वर्ष बाद पोतदारी का काम छोड़ दिया और यहीं पर रामदास अग्रवाल के साथ साझे में सराफी का काम करने लगे। खरगसेन जी की जाति श्रीमाल और बिहोलिया गोत्र था।

वि० सं० १६४३ में बनारसीदास जी का जन्म हुआ। इस हिसाब से बनारसीदास जी आज से ३७६ वर्ष पूर्व हुए थे।

बनारसीदास जी अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। कविवर रूपचन्द्र जी इनके गुरु थे और इनने ७ वर्ष की अवस्था से विद्याध्ययन प्रारम्भ किया था।

इनके गुरु पहुंचे हुए आध्यात्मिक विद्वान थे इसी कारण बनारसी-दास जी पर आध्यात्मिकता का प्रभाव बचपन से ही पड़ा था। प्रतिभा-सम्पन्न थे, प्रखर बुद्धि थी अतएव थोड़े ही समय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। १० वर्ष की अवस्था में आपकी प्रथम शादी हुई। १४ वर्ष की अवस्था में आप पुनः देवीदास जी पंडित के पास कोष, ज्योतिष, अलंकार एवं कोक शास्त्र पढ़ने लगे। कोकशास्त्र पढ़ने पर मनुष्य की विषय भोगों में जो गति होती है वही बनारसीदास जी की हुई। पर, दुर्भाग्य कि बनारसीदास जी की प्रथम पत्नी का विवाह के १५-१६ वर्ष बाद स्वर्गवास हो गया।

इसके पश्चात् कविवर के क्रमशः दो विवाह और हुए, पर गुणवती प्रथम पत्नी को वे विस्मरण न कर सके। तीनों पत्नियों से आपके ७ पुत्र, २ पुत्रियाँ ऐसी ६ सन्तानें हुयीं, पर सभी काल के गाल में समा गए। आपका अन्तिम पुत्र नौ वर्ष का होकर चल बसा। इस पुत्र को खोकर उन्हें भारी निराशा हुई और संसार के वातावरण से आत्म-ग्लानि हुई। आपके अन्तरंग की मार्मिक पीड़ा के उद्‌गार निम्न पद्य से प्रगट होते हैं। यह घटना वि० सं० १६६८ की है।

नौ बालक हुये मुये, रहे नारि नर दोय।
ज्यों तरुवर पतझार ह्वै, रहै ठूंठ से दोय॥

दुख को तो केवल भुक्त भोगी ही समझ सकता है। अन्तिम पुत्र की मृत्यु से बनारसीदास के दुःख का पारावार नहीं रहा तभी तो आप

की अन्तश्चेतना से उक्त पंक्तियों का स्रोत फूट पड़ा।

यौवन के प्रारम्भ से ही कविवर को इश्कबाजी का चश्का लग गया था। आपका अधिक समय इश्कबाजी की चर्चा में ही व्यतीत होता था। ऐसे ही समय में आपको कविता करने का भी शौक हो गया। इधर इश्कबाजी का भूत सवार था तो उधर इश्कबाजी की कवितायें करने की धुन सवार थी इसलिए आप शृंगार रस की ही कवितायें अधिक लिखते थे। एक हजार पद्यों में शृंगार रस की कवितायें लिख डालीं।

और एक दिन उन्हें अपने पर घृणा हुई और गोमती नदी की बहती हुई वेगवती धारा में शृंगार रस की पुस्तक सदा के लिए समर्पित कर दी। यहीं से कविवर के जीवन में एक नया मोड़, एक नई जागृति, एक नवीन चेतना, एक नयी दिशा आती है। बनारसीदास जी ने गभीरतापूर्वक विचार किया कि जिन कविताओं के द्वारा मैं पथ भ्रष्ट हो रहा हूँ तब उन कविताओं के द्वारा क्या लोग पथ भ्रष्ट न होंगे? इसीलिए आपने शृंगार रस की कविताओं को नदी में बहाकर सदा के लिए छुट्टी ले ली। जैसा कि निम्न दोहे से स्पष्ट है :—

तिस दिन सों बनारसि, करी धर्म की चाह।
तजी आसिखी फासखी, पकरी कुल की राह॥

कविवर ने अपने जीवन में अनेक चढ़ाव उतार देखे थे। वे असह्य अनेक संकटों से गुजरे कड़वे मीठे सभी अनुभव मिले। इश्कबाजी के कारण भयंकर बीमारियों के शिकार हो गए, मरणासन्न अवस्था तक नौबत पहुंच गई। चोरों ने आप का लूटा, माल (सोना चांदी रत्नादि) तो गया सो गया पर एक बार तो जान बचाने के भी लाले पड़ गए थे।

गार्हस्थिक संकटों और मुसीबतों का तो आप को पद पद पर

सामना करना पड़ा, ७ पुत्रों और २ पत्नियों का मर जाना क्या कम संकट था, कम दुःख था? मृत्यु से अधिक और क्या दुःख हो सकता है। आपने अपने जीवन में तरह २ के रंग और अनेक खेल देखे थे। कभी साधु सन्यासियों के चक्कर में रहना, कभी अपने मित्रों के साथ नंगे नाचना, कभी इश्क की धुन तो कभी धार्मिकता की धुन तो कभी कोरी आध्यात्मिकता की धुन, तो कभी कुछ तो कभी कुछ। इस प्रकार हम देखते हैं कि बनारसीदास जी का जीवन विविध समस्याओं से ओत पोत था। जब तक उन्हें वास्तविक वस्तु हाथ नहीं लगी तब तक वे स्वयं समस्या बने हुए थे।

बनारसीदास जी सत्यनिष्ठावान कविवर थे। जब उनको संसार के स्वभाव के यथार्थ दर्शन हुए तब स्वसंवेदनशील होकर उन्होंने केवल यही तो कहा था :—

तत्त्व द्रष्टि जो देखिए, सत्यारथ की भांति।
ज्यौं जाको परिग्रह घटै, त्यौं ताको उपसांति॥

यह दोहा उनके अन्तरंग की भावना को कितने सुन्दर शब्दों में व्यक्त करता है। इस दोहे में आध्यात्मिकता फूटी पड़ती है।

बनारसीदास जी मुगल समय में हुए थे और मुगल शासकों की तीन पीढी देखी थीं। अकबर बादशाह की मृत्यु के (सं० १६६२) समाचार से तो आप मूर्छित हो गए थे। जहांगीर बादशाह के दरबार में भी एक बार आपको जाना पड़ा तब आपने "ज्ञानी बादशाह ताको मेरी तसलीम है" कहकर सलाम किया था। शाहजहां बादशाह के साथ आप शतरंज खेलते थे। गोस्वामी महाकवि सन्त तुलसीदास जी से भी आपका साक्षात्कार हुआ था और तुलसीदास जी ने आप की कविताओं की भूरि २ प्रशंसा की थी।

बनारसीदास जी ने रामायण के सम्बन्ध में एक कविता बनायी

दृष्टि बदलते ही महाकवि पं० बनारसीदासजी ने अपनी 'नवरस' रचना गोमती नदी में बहा दी।

थी। जिसका शीर्षक निम्न प्रकार है—

"विराजै रामायण घट मांहि"

कहते हैं यह कविता बनारसीदास जी ने तुलसीदास जी को भेंट की थी तब तुलसीदास जी, ने कहा था कि आपकी कविता मुझे प्रिय लगी है। सुन्दर ग्रन्थावली के रचयिता कवि सुन्दरदास जी के साथ आगरे में कविवर प० बनारसीदास जी की खूब गहरी मित्रता थी।

२३ वर्ष की अवस्था तक बनारसीदास जी ने कोई धंधा व्यापार नहीं किया। २४वें वर्ष में आपके पिता खरगसेन जी ने सारा काम सिपुर्द कर दिया अनभिज्ञ तो थे ही अतः व्यापार में नुकसान होते रहना अस्वाभाविक नहीं माना जा सकता। बनारसीदास जी जानते ही नहीं थे व्यापार कैसे किया जाता है? क्योंकि तब वे आशिक माशूक के चक्कर में उलझे हुए थे।

कुछ दिनों बाद आप व्यापारार्थ आगरे के लिए गये, और साथ में नीलम पन्ना चुन्नी स्वर्ण मुद्रिकायें तैल वस्त्र घृत आदि ले गये। बड़ी मुश्किलसे आगरा पहुँचना हुआ। व्यापार भी किया पर अनुभव शून्यता के कारण घाटा ही हाथ लगता रहा। और एक दिन ऐसा भी आया कि घाटे में सारी पूँजी समाप्त हो गई और दरिद्रनारायण भी ऐसे हुए कि एक भी पैसा गांठ में नहीं रहा। फिर आगरे के १-२ व्यापारियों के साथ साझे में व्यापार चालू किया लेकिन घाटा ही उठाना पड़ा। भाग्य जो बदला हुआ था।

कविवर बनारसीदास जी की ये घटनाएं हमें आज से ५ हजार वर्ष पूर्व भ० नेमिनाथ के समय में ले जाती हैं जबकि चारुदत्त (प्रसिद्ध वेश्या गामी) का जीवन भी ऐसी ही घटनाओं से भरा हुआ था।

फिर सांझे का काम छोड़कर स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने लगे जिसमें अच्छी सफलता मिली और थोड़ा धन भी कमा लिया और यहीं

जम गये । आगरे में श्री अर्थमल्ल जा निरन्तर अध्यात्म रस में पगे हुए रहते थे। वनारसीदास जी का इनसे परिचय हुआ और इनने पं० राजमल्ल जी कृत हिन्दी बालबोधिनी टीका सहित समयसार ग्रन्थ स्वाध्ययार्थ दिया । पर इन पर इसका विरुद्ध ही प्रभाव पड़ा । एकान्त श्रद्धानी हो गए और धार्मिक बाह्य क्रियाओं को छोड़ बैठे।

जब बनारसीदास जी के गुरु रूपचन्द जी को यह पता लगा कि वनारसीदास जा एकान्तवादी हो गए हैं, तब इन्होंने गोम्मट सार सैद्धान्तिक ग्रंथ स्वाध्याय के लिए दिया । जिससे वनारसीदास जी को अनेकान्त का और वस्तु-स्थिति का यथार्थ भान हुआ आगरे में अनेक विद्वानों का आपको सत्संग मिला जिनमें चतुर्भुज जी भगवतीदास जी धर्मदास जी, कुंवरपाल जी, जगजीवन जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी विद्वान अध्यात्म के ज्ञाता थे और परस्पर में अध्यात्म की चर्चा कर समय का सदुपयोग करते थे।

बनारसीदासजी ने नवरस पद्यावली, नाटक समयसार अर्द्ध कथानक, नाममाला, वनारसी विलास की रचनाएं कीं। इसके अतिरिक्त आपकी अन्य रचनाएं कितनी हैं कौन कौन सी हैं ? सो पता नहीं ।

अर्ध कथानक में आपने अपने जीवन की ५५ वर्ष की सजीव घटनाओं को अपनी कलम से लिखा है । हिंदी साहित्य में यह आत्मचरित सबसे प्रथम है। जैसे गांधी जी ने " मेरी आत्म कथा " पुस्तक अपनी कलम से लिख कर विश्व के समक्ष जो स्पष्टवादिता निर्भीकता निरभिमानता, सत्यप्रियता और स्वाभाविकता का परिचय दिया है वह अजोड़ है । इसी प्रकार का वनारसीदास जी का आत्म चरित्र है जो आपने ३२५ वर्ष पूर्व लिखा था ।

अर्ध कथानक में वनारसीदास जी ने समाज को चुनौती देते हुए

कहा था न तो मुझे आपकी घृणा की पर्वाह है और न आपकी श्रद्धा की चिन्ता (प्रकरण-इश्क बाजी के कारण आप आतशक से पीड़ित थे)।

दुनियां वाले अपनी बुराईयों को छिपाते हैं इसलिए कि हम बदनाम न हो जाएं। पर बनारसीदास जी जैसे महामानव अपनी अच्छाइयों या बुराइयों को संसार के समक्ष निःसंकोच भाव से रख देते हैं यह उनकी कितनी सरलता सत्यता है यही चीज अपने गले उतारनी है। ५५ वर्ष के बाद आपके जीवन चरित्र का कोई पता नहीं लगता। कविवर के विचार से आपने मनुष्य की आयु ११० वर्ष की मानी है और ५५ वर्ष के अपने जीवन की घटनाएं लिखी हैं इसीलिए इस ग्रंथ का नाम आपने अर्द्ध कथानक रखा था जोकि ठीक ही है (यानी जीवन की आधी कथा) बनारसी विलास में छोटी बड़ी ५० रचनाओं का संग्रह है।

कविवर की कृतियों में हमारे लिए रहस्यवाद की झांकी सर्वत्र मिलती है। नाटक समयसार यद्यपि आपकी भावप्रधान रचना है, फिर भी उसमें सर्वत्र रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। रहस्यवादियों के अनुसार रहस्यवाद आत्मा की उस अन्तः प्रवृत्ति का नाम है जिसमें वह उस अलक्ष्य शक्ति से सम्बन्ध जोड़ना चाहता है और इसके लिए वह निरन्तर अन्तर्मुख हुआ खोज शोध में निमग्न रहता है। रहस्यवाद नाम अर्वाचीन भले ही हो पर रहस्यवादी भावना अत्यन्त प्राचीन है और रहस्यवादी रचनाएं पौराणिक ग्रन्थों एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलती है।

नाटक समयसार क्या है, कैसा है, वर्णित विषय किस ढंग से लिखा गया है ? इन सब प्रश्नों के समाधान को तो वे ही समझ सकते हैं जिन ने कि नाटक समयसार का पारायण किया है, रसास्वाद लिया है। सच

पूछो तो, यह तो गूंगे का गुड़ है। गूंगा व्यक्ति गुड़ को चखता है और उससे उसको जो मिठास का अनुभव होता है, वह उसे शब्दों में नहीं कह सकता। ठीक यही हिसाब नाटक समयसार के सम्बन्ध में है, जो इसका अध्ययन, मनन, मन्थन करेगा और ऐसा करने से उसे जो सुखानुभूति होगी वह उस सुखानुभूति को शब्दों में नहीं कह सकेगा। क्योंकि शब्द जड़ हैं पुद्गल हैं और अनुभूति आत्मा का विषय है, भला इन दोनों में साम्य कैसा ?

एक बिगड़ा हुआ व्यक्ति, एक पथ भ्रष्ट व्यक्ति किस प्रकार अपना सुधार करता हुआ मानव से महा मानव बनकर संसार के लिए मार्ग-दर्शक हो सकता है ? यह तथ्य हमें कविवर की जीवनी से लेकर अपने गले उतारना है, और कविवर की जीवनी की यही महत्ता है, यही निचोड़ है, यही सब कुछ है। अब पाठक गण ! कविवर की कविताओं का थोड़ा रसास्वादन भी कर लीजिए आपको खूब आनन्द आयेगा। कुछ पद्य निम्न प्रकार हैं :--

ज्ञान कला जिनके घट जागी, सो जग मांहि सहज वैरागी।
ज्ञानी मगन विषय सुख माहिं, यह विपरीत संभवै नाहीं ॥४०॥
निर्जरा द्वार (ना० स०)

वस्तु विचारत ध्यावते, मन पावे विसराम।
रस स्वादन सुख ऊपजै, अनुभव याको नाम ॥
राम रसिक अरु रामरस, कहन सुनन को दोइ।
जब समाधि परगट भई, तब दुविधा नहि कोइ ॥
जाके घर समता नहीं, ममता मगन सदीव।
रमता राम न जानहि, सो अपराधी जीव ॥
लाल बंध्यो गठरी विषै, लाल बिना दुख पाय।
खोलि गाठड़ी जो लखै, लाल तुरत मिल जाय ॥
संयम रस फीके लगत, नीके लागत भोग।
दाख पकै तब काग के, होत कंठ में रोग ॥

बनारसीदास जी समन्ववादी थे और सुधारक थे। निम्न दोहों में समन्वय की भावना कूट-कूट कर भरी है—

एक रूप हिन्दू तुरुक, दूजी दशा न कोइ।
मन की दुविधा मानकर, भये एक सों दोइ॥
दोऊ भूले भरम में, करैं वचन की टेक।
राम-राम हिन्दू कहै, तुरुक सलामालेक॥
इनके पुस्तक वांचिये, वेहू पढ़ै कितेब।
एक वस्तु के नाम दो, जैसा सोभा जेब॥

नाटक समयसार में आपने अपने इष्टदेव को ग्रन्थारंभ में निम्न प्रकार नमन किया है।

शोभित निज अनुभूति युत, चिदानन्द भगवान।
सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान॥

बनारसीदास जी की रचनायें इतनी सरल, सरस एवं सुबोध हैं कि साधारण साक्षर व्यक्ति भी आपके भावों को हृदयंगम कर लेता है। लगता है कविवर महोदय या तो सरस्वती पुत्र हैं, या दैवी कवित्व शक्ति रखते हैं। सम्यग्दृष्टि के विचारों के सम्बन्ध में आप लिखते हैं—

जिनके मिथ्यामति नहीं, ज्ञान कला घट मांहि।
परचे आतम राम सों, ते अपराधी नांहि॥३०॥

—मोक्षद्वार

आपकी दृष्टि में आलसी और उद्यमी निम्न प्रकार हैं—

बंध बढ़ावे अंध ह्वै, ते आलसी अजान।
मुक्ति हेतु करनी करै, ते नर उद्यमवान॥११॥

—बंध द्वार

रोकै आवत करमकों, सो है संवर तत्त ॥३१

जो पूरव सत्ता करम, करि थिति पूरण आउ।
खिरवेकों उद्यत भयो, सो निर्जरा लखाउ ॥३२

जो नवकर्म पुरानसों, मिलें गांठि दृढ़ होइ।
सकति वढ़ावै वंसकी, वंध पदारथ सोइ ॥३३

थिति पूरनकरि जो करम, खिरै वंधपद भानि।
हंस अंस उज्जल करै, मोक्ष तत्वसो जानि ॥३४

भाव पदारथ समय धन, तत्व वित्त वसु दर्व।
द्रविन अर्थ इत्यादि बहु, वस्तु नाम सर्व ॥३५

सवैया इकतीसा।

परमपुरुप परमेश्वर परमज्योति,परब्रह्म पूरन परम परधान है। अनादि अनंत अविगत अविनाशी अज,निरदुन्द मुकत मुकुंद अमलान है॥ निरावाध निगम निरंजन निरविकार, निराकार संसार सिरोमनि सुजान है। सरवदरसी सरवज्ञ सिद्ध स्वामी शिव,धनी नाथ ईश जगदीश भगवान है ३६

चिदानंद चेतन अलख जीव समैसार वुद्धरूप अवुद्ध असुद्ध उपजोगी है। चिद्रूप स्वयंभू चिन्मूरति धरमवंत, प्रानवंत प्रानजंतु भूत भवभोगी है॥ गुनधारी कलाधारी भेपधारी विद्याधारी, अंगधारी संगधारो जोगधारी जोगी है। चिन्मय अखंड हंस अक्षर आतमराम, करम कौ करतार परम वियोगी है ॥३७

दोहा

खंविहाय अंबर गगन, अन्तरित्त जगधाम ।
व्योम वियत नभ मेघपथ, ए आकाशके नाम ॥ ३८

यम, कृतांत, अंतक, त्रिदश, आवर्ती, मृतथान ।
प्रानहरन, आदित तनय, कालनाम परमान ॥ ३९

पुन्य सुकृत ऊरध वदन, अकर रोग शुभ कर्म ।
सुखदायक संसार फल, भाग वहिर्मुख धर्म ॥४०

पाप अधोमुख एन अघ, कंप रोग दुखधाम ।
कलिल कलुप किलविप दुरित, अशुभकर्मके-नाम ॥४१

सिद्धत्तेत्र त्रिभुवन मुकुट, शिवमग अविचल थान ।
मोत्त मुगति वैकुंट शिव, पंचमगति निरवान ॥४२

प्रज्ञा धिषना सेमुपी, धी मेधा मति वुद्धि ।
सुरति मनीपा चेतना, आशय अंश विशुद्धि ॥४३

विचक्षण पुरुष के नाम । दोहा ।

निपुन विचत्तन विवुध वुध, विद्याधर विद्वान ।
पटु प्रवीन पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान ॥४४

कलावन्त कोविद कुशल, सुमन दत्त धीमंम ।
ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुनीजन सन्त ॥४५

अथ मुनीश्वर के नाम । दोहा ।

मुनि महन्त तापस तपी, भित्तुक चारितधाम ।
यती तपोधन संयमी, व्रती साधु ऋपिनाम ॥ ४६

दरस विलोकन देखनो, अवलोकन दृग चाल।
लखन दृष्टि निरखन जुवनि, चितवन चाहन भाल॥४७
ज्ञान बोध अवगम मनन, जगतभान जगजान।
संजम चारित आचरण, चरनवृत्ति थिरवान॥४८
सम्यक सत्य अमोघ सत, निसंदेह निरधार।
ठीक यथारथ उचित तथ, मिथ्या आदि अकार॥४९
अजथारथ मिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक।
मुधा मोघ निष्फल वितथ, अनुचित असत अठीक॥५०

सवैया इकतीसा

जीव निरजीव करता करम पुण्य पाप, आस्रव संवर निरजरा बंध मोष है। सरवविशुद्ध स्यादवाद साध्य साधक, द्वादस दुवार धरै समैसार कोष है॥ दरवानुयोग दरवानुयोग दूरि करै, निगमकौ नाटक परमरस पोष है। ऐसौ परमागम बनारसी बखाने जामें, ज्ञानको निदान शुद्ध चारित की चोष है॥५१

जीवद्वार

अथ ग्रन्थारम्भ को नमस्कार। दोहा

शोभित निज अनुभूतियुत, चिदानंद भगवान।
सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान ॥१२

सवैया ३१सा।

जो अपनी दुति आपु विराजत, है परधान पदारथ नामी। चेतन अंक सदा निकलंक, महासुखसागर को विसरामी ॥ जीव अजीव जिते जगमें, तिनको गुन ज्ञायक अंतरजामी। सो शिवरूप बसै शिवथानक, ताहि विलोक नमें शिवगामी ॥२॥

सवैया ३१सा।

जोग धरै रहै जोगसुं भिन्न, अनंत गुनातम केवल ज्ञानी। तासु हृदे द्रहसों निकसी, सरिता सम ह्वै श्रुति सिंधु समानी ॥ यातें अनंत नयातम लच्छन, सत्य सरूप सिद्धांत वखानी। बुद्धि लखै न लखै दुरबुद्धि, सदा जग मांहि जगे जिनवानी ॥३॥

छप्पय छन्द।

हों निहचे तिहुंकाल, शुद्ध चेतनमय मूरति। पर-परिनतिसंयोग, भई जड़ता विस्फूरति ॥ मोह कर्म पर

हेतु पाइ, चेतन पर रच्चै। ज्यों धतूर रसपान, करत नर बहु विध नच्चै॥ अब समयसार वर्णन करत, परम सुद्धता होउ मुझ। अनयास बनारसिदास कहि, मिटहु सहज भ्रमकी अरुझ॥४

अथ आगम व्यवस्था। सवैया इकतीसा।

निहचै में रूप एक विवहार में अनेक, याही नै-विरोध में जगत भरमायो है। जग के विवाद नासिवेकों जिन आगम है, जामें स्यादवाद नाम लच्छन सुहायो है। दरसन मोह जाकौ गयो है सहजरूप, आगम प्रमान जाके हिरदैमें आयौ है। अनैसों अखंडित अनूतन अनंत तेज, ऐसौ पद पूरन तुरंत तिन पायो है॥५

अथ निश्चै व्यवहार। सवैया तेईसा।

ज्यों नर कोउ गिरै गिरसों तिहि, सोइ हितू जू गहै दृढ बांहीं। त्यों बुधकों विवहार भलौ तबलों,जबलों शिव प्रापति नांहीं॥ यद्यपि यों परवान तथापि, सधै परमारथ चेतन मांहीं। जीव अव्यापक है परसों, विवहार सों तौ परकी परछांहीं॥६

अथ सम्यग्दर्शन। सवैया इकतीसा

शुद्धनय निहचै अकेलो आपु चिदानंद, अपने ही गुण परजायकों गहतु है। पूरन विज्ञानघन सोहै विवहार मांहि नवतत्वरूपी पंचद्रव्यमें रहतु है॥ पंच द्रव्य नव तत्व न्यारे

जीव न्यारौ लखै, सम्यकदरस यहै और न गहतु है। सम्यक दरस जोई आतमसरूप सोई, मेरे घट प्रगटो बनारसी कहतु है ।।७

अथ जीव द्रव्य व्यवस्था अग्नि का दृष्टांत । सवैया इकतीसा ।

जैसें तृनकाठ वाँस आरने इत्यादि और, ईंधन अनेक विधि पावक में दहिये । आकृति विलोकत कहावै आगि नानारूप, दीसै एक दाहक सुभाव जब गहिये ।। तैसें नव तत्व में भयो है वहुभेषी जीव, शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये । जाही छिन चेतना शकतिको विचार कीजें, ताही छिन अलख अभेदरूप लहिये ।।८

अथ जीव व्यवस्था बनवारी दृष्टांत । सवैया इकतीसा ।

जैसैं वनवारी में कुधातु के मिलाप हेम,नाना भांति भयो पै तथापि एक नाम है । कसिकै कसौटी लीक निरखै सराफ ताहि, वानके प्रमान करि लेतु देतु दाम है ।। तैसै ही अनादि पुदगलसों संयोगी जीव, नवतत्वरूपमें अरूपी महाधाम है । दीसै उनमानसों उद्योतवान ठौर ठौर,दूसरो न और एक आतमा ही राम है ।।९

अनुभव व्यवस्था सूर्य दृष्टांत । सवैया इकतीसा

जैसैं रविमंडलके उदै महिमंडलमें, आतप अटल तम पटल विलातु है । तैसें परमातमा को अनुभौ रहत जो-लों, तौलों कहुं दुविधा न कहुं पक्षपातु है ।। नयको न

लेश पखानकौ न परवेश, निच्छेप के वंस को विधुंस होतु जातु है। जे जे वस्तु साधक हैं तेउ तहाँ बाधक हैं, बाकी रागदोष की दशाकी कौन बातु है ॥१०

जीव व्यवस्था वचन द्वार। अडिल्ल छंद।

आदि अंत पूरन सुभाव संयुक्त है, परस्वरूप परजोग कलपना मुक्त है। सदा एकरस प्रगट कही है जैन में, शुद्ध नयातम वस्तु विराजे वैनमें ॥११

हितोपदेश। कवित्त छंद।

सतगुरु कहै भव्य जीवनिसों, तोरहु तुरत मोहकी जेल। समकितरूप गहौ अपनौ गुन,करहु शुद्ध अनुभवको खेल। पुदगलपिंड भाव रागादिक इनसों नहीं तुमरो मेल। ए जड प्रगट गुपत तुम चेतन जैसे भिन्न तोय अरु तेल ॥१२

सवैया इकतीसा।

कोऊ बुद्धिवंत नर निरखैं शरीरघर, भेदज्ञान दृष्टिसों विचारै वस्तु वासतो। अतीत अनागत वरतमान मोहरस, भीग्यो चिदानंद लखै बंधमें बिलासतो ॥ बंधकों विदारि महामोह को सुभाउ डारि, आतमकौ ध्यान करै देखै परगासतो। करमकलंक पंकरहित प्रगटरूप, अचल अबाधित विलोकै देव सासतो ॥१३

सवैया तेईसा।

शुद्ध नयातम आतम की,अनुभूति विज्ञान विभूति है

सोई। वस्तु विचारत एक पदारथ,नामके भेद कहावत दोई यौं सरवङ्ग सदा लखि आपुहि, आतमध्यान करै जब कोई मेटि अशुद्ध विभावदशातव,सिद्ध सरूपकी प्रापति होई ।१४

ज्ञाता चितवन स्वरूप । सवैया इकतीसा ।

अपने ही गुनपरजायसों प्रवाहरूप, परिनयो तिहूँ काल अपने आधारसों। अंतर वाहिर परकासवान एकरस खिन्नतान गहै भिन्न रहै भौ-विकारसों ॥ चेतनाके रस सरवंग भरि रह्यो जीव, जैसे लोंन कांकर भरयो है रस खारसों । पूरन सरूप अति उज्जल विज्ञानधन, मोकों होहु प्रगट विशेप निरवारसों ॥१५

कवित्त छंद ।

जहँ ध्रुवधर्म कर्मछय लच्छन, सिद्ध समाधि साधि पद सोई। सुद्धपयोग योग महि मण्डित, साधक ताहि कहैं सब कोई ॥ यों परतच्छ परोच्छस्वरूप, सुसाधक साध्य अवस्था दोई। दुहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवे शिव बंछक थिर होई ॥१६

कवित्त छंद

दर्शन ज्ञान चरन त्रिगुनातम, समल रूप कहिये विवहार। निहचै दृष्टि एकरस चेतन, भेदरहित अविचल अविकार॥ सम्यक्दशा प्रमाण उभैनय,निर्मलसमलएकही

चार। यों समकाल जीव की परिनति, कहैं जिनंद गहै गनधार ॥१७

दोहा

एक रूप आतम दरव, ज्ञान चरन दृग तीन ।
भेद भाव परिनाम सों, विवहारे सु मलीन ॥१८
यदपि समल विवहारसों, पर्यय शक्ति अनेक ।
तदपि नियत नय देखिये, शुद्ध निरंजन एक ॥१९
एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर ।
समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहिं और ॥२०

सवैया इकतीसा

जाके पद सोहत सुलच्छन अनंत ज्ञान, विमल विकासवंत ज्योति लहलही है। यद्यपि त्रिविध रूप व्यवहार में तथापि, एकता न तजै यों नियत अंग कही है। सोहै जीव कैसीहू जुगति के सदीव ताके, ध्यान करिवेकों मेरी मनसा उनही है। जातें अविचल रिद्धि होतु और भांति सिद्धि, नांहि नांहि नांहि यामें धोखो नांहि सही है ॥२१

सवैया तेईसा।

कै अपनौ पद आपु संभारत, कै गुरुके मुखकी सुनि वानी।
भेद विज्ञान जग्यो जिनकै प्रगटी सुविवेक कला रजधानी॥
भाव अनंत भये प्रतिबिंबित, जीवन मोच्छ दशा ठहरानी।
ते नर दर्पन ज्यों अविकार रहैं थिर रूप सदा सुखदानी

भेद ज्ञान की महिमा । सवैया इकतीसा ।

याही वर्त्तमान समै भव्यनिको मिटौ मोह, लग्यौ है अनादि को पग्यौ है कर्म मलसों । उदै करै भेदज्ञान महा-रुचि को निधान,उरको उजारौ भारौ न्यारौ दुन्द दलसों ॥ यातैं थिर रहै अनुभौ विलास गहै फिरि,कबहों अपनपौ न कहै पुद्गलसों । यहै करतूति यों जुदाई करै जगतसों, पावक ज्यों भिन्न करै कंचन उपलसों ॥२३

परमार्थ शिक्षा । सवैया इकतीसा

बनारसी कहै भैया भव्य सुनो मेरी सीख,केहू भांति कैसेहू के ऐसो काज कीजिए । एकहू मुहूरत मिथ्यातको विध्वंस होइ, ज्ञानकों जगाइ अंस हंस खोजि लीजिये ॥ वाहीको विचार वाको ध्यान यहै कौतूहल, योंही भरि जनम परम रस पीजिए। तजि भववासको विलास सविकार-रूप अंतकरि मोहकों अनंतकाल जीजिए ॥२४

तीर्थंकर । सवैया इकतीसा ।

जाके देहदुतिसों दसों दिशा पवित्र भई, जाके तेज आगे सब तेजवंत रुके हैं । जाको रूप निरखि थकित महारूपवंत,जाकी वपुवाससों सुवास और लुके हैं ॥ जाकी दिव्य धुनि सुनि श्रवनकों सुख होत, जाके तन लच्छन अनेक आइ ढुके हैं । तेई जिनराज जाके कहे विवहार

गुन, निहचै निरखि सुद्ध चेतनसों चुके हैं ॥२५

जिनस्तुति व्यवहाररूप। सवैया इकतीसा।

जामें बालपनो तरुनापौ वृद्धपनो नाँहिं, आयुपरजंत महारूप महाबल है। बिनाहि जतन जाके तन में अनेक गुन, अतिसै बिराजमान काया निरमल है॥ जैसे बिनु पवन समुद्र अविचलरूप, तैसे जाको मन अरु आसन अचल है। ऐसौ जिनराज जयवंत होउ जगतमें, जाकी शुभ गति महा सुकृति को फल है ॥२६

जिनराज का यथार्थ रूप। दोहा।

जिनपद नाहिं शरीरकौ, जिनपद चेतन माँहि।
जिन वर्नन कछु और है, यह जिनवर्नन नाँहि ॥२७

पुद्गल और चेतन का स्वभाव-दृष्टान्त। सवैया इकतीसा

ऊंचे ऊंचे गढ़के कंगूरे यों बिराजत हैं, मानो नभ लोक गीलवेकों दाँत दियो है। सोहै चहूँ ओर उपवनकी सघन-ताई, घेरा करि मानो भूमि लोक घेर लियो है॥ गहरी गंभीर खाई ताकी उपमा बनाई, नीचो करि आनन पताल जल पियो है। ऐसौ है नगर यामें नृपको न अंग कोउ, योंही चिदानंदसों शरीर भिन्न कियो है ॥२८

तीर्थङ्करके निश्चय स्वरूप की स्तुति।

जामें लोकालोक के सुभाव प्रतिभासे सब, जगी ज्ञान

सकति विमल जैसी आरसी। दर्शन उदोत लियो अंतराय अंत कियो, गयो महामोह भयो परम महारिसी। संन्यासी सहज जोगी जोग सों उदासी जामें,प्रकृति पचाशी लगि रही जरि छारसी। सोहै घटमंदिर में चेतन प्रकट-रूप, ऐसौ जिनराज ताहि वंदत बनारसी ॥२६

निश्चय और व्यवहार नय की अपेक्षा शरीर और जिनवरका भेद

तन चेतन विवहार एकसे,निहचै भिन्न भिन्न हैं दोइ।
तनकी थुति विवहार जीव थुति,नियत दृष्टिमिथ्याथुति सोइ
जिनसो जीव जीवसो जिनवर, तन जिन एक न मानै कोइ।
ता कारन तनकी संस्तुतिसों,जिनवरकी संस्तुति नहिं होइ॥

वस्तु स्वरूप की प्राप्ति से गुप्त लक्ष्मी का दृष्टान्त

ज्यों चिरकाल गड़ी वसुधा महि,भूरि महानिधि अंतर गूझी। कोउ उखारि धरै महि ऊपरि, जे दृगवंत तिन्हें सब सूझी॥ त्यों यह आतमकी अनुभूति, पड़ी जड़ भाव अनादि अरूझी। नै जुगतागम साधि कही गुरु, लच्छन-वेदि विचच्छन बूझी ॥३१

भेद विज्ञान की प्राप्ति में धोबी के वस्त्र का दृष्टान्त

जैसें कोउ जन गयौ धोवी कै सदन तिन, पहिर्यो परायो वस्त्र मेरो मानि रह्यो है। धनी देखि कह्यो भैया यह तो हमारौ वस्त्र,चीन्हें पहिचानत ही त्याग भाव लह्यो

है ।। तैसेही अनादि पुद्गलसों संयोगी जीव,संगके ममत्व सों विभाव तामें वह्यौ है । भेद ज्ञान भयौ जब आपा पर जान्यो तब, न्यारौ परभावसों स्वभाव निज गह्यौ है ।।३२

निजात्मा का सत्य स्वरूप

कहैं विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हों । अपने रस सों भर्यो आपनी टेक हों ।। मोह कर्म मम नाँहि नाँहि भ्रम कूप है । शुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है ।। ३३

तत्वज्ञान होने पर जीव की अवस्था का वर्णन ।

तत्वकी प्रतीति सों लख्यौ है निजपर गुन, दृग ज्ञान चरन त्रिविध परिनयौ है । विसद विवेक आयौ आछौ विसराम पायौ, आपुहीमें आपनो सहारो सोधि लयौ है । कहत बनारसी गहत पुरुषारथको, सहज सुभावसों विभाउ मिटि गयो है । पन्नाके पकायें जैसे कंचन विमल होत, तैसें शुद्ध चेतन प्रकाशरूप भयो है ।। ३४

वस्तु स्वभाव की प्राप्ति में नटी का दृष्टान्त ।

जैसैं कोउ पातुर बनाय वस्त्र आभरण,आवति अखारे निशि आड़ौ पट करिकैं । दुहूँ ओर दीवटि संवारि पट दूरि कीजे, सकल सभाके लोग देखैं दृष्टि धरिकै ।। तैसें ज्ञान सागर मिथ्यात ग्रन्थि भेदिकरि, उमग्यो प्रकट रह्यो तिहुं

लोक भरिकैं । ऐसो उपदेश सुनि चाहिये जगत जीव, शुद्धता संभारै जग जालसौं निसारकैं ॥३५॥

इति श्री नाटक समयसार का जीवद्वार समाप्त

अजीव द्वार

प्रतिज्ञा। दोहा।

जीव तत्व अधिकार यह, कह्यौ प्रकट समुझाइ।
अब अधिकार अजीवकौ, सुनो चतुर मन लाइ ॥१॥

मंगलाचरण। सवैया इकतीसा।

परम प्रतीति उपजाइ गनधर कीसी, अंतर अनादिकी विभावता विदारी है। भेद-ज्ञान दृष्टिसौं विवेक की सकति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है॥ करम कौ नास करि अनुभौ अभ्यासधरि, हिए में हरषि निज उद्धता संभारी है। अंतराय नास भयो शुद्ध परकास थयो. ज्ञानकौ विलास ताकौं वंदना हमारी है ॥ २ ॥

पारमार्थिक शिक्षा। सवैया इकतीसा।

भैया जगवासी तू उदासी व्है कै जगतसौं, एक छः महीना उपदेश मेरो मानु रे। और संकलप विकलप के

विकार तजि, बैठके एकंत मन एक ठौर आनुरे ॥ तेरो घट सरता में तूही है कमल ताकौ, तूही मधुकर है सुवास पहिचानुरे। प्रापति न ह्वै है कछु ऐसौ तू विचारतु है, सही ह्वै है प्रापति सरूप योंही जानुरे ॥ ३ ॥

जीव और पुद्गल। दोहा।

चेतनवन्त अनंत गुण, सहित सुआतम राम।
याते अनमिल और सब,पुद्गल के परिणाम ॥४॥

आत्मज्ञानका परिणाम। कवित्त छन्द।

जब चेतन संभारि निज पौरुष, निरखै निज दृग सों निज मर्म। तब सुखरूप विमल अविनाशिक जानै जगत शिरोमनि धर्म ॥ अनुभौ करै शुद्ध चेतन कौं, रमैं सुभाव वमैं सब कर्म। इहि विधि सधै मुक्तिकौ मारग अरु समीप आवै शिव शर्म ॥ ५ ॥

जड़ चेतन की भिन्नता। दोहा।

वरनादिक रागादि यह, रूप हमारौ नांहि।
एक ब्रह्म नहिं दूसरौ, दीसे अनुभव मांहि ॥ ६ ॥

देह जीव की भिन्नता।

खांड़ौ कहिये कनककौ, कनक म्यान संयोग।
न्यारौ निरखत म्यानसों, लोह कहैं सब लोग ॥७॥
वरनादिक पुद्गल दशा, धरै जीव बहु रूप।
वस्तु विचारत करमसों, भिन्न एक चिद्रूप ॥ ८ ॥

जीव, देह की भिन्नता पर दृष्टान्त।

ज्यों घट कहिए घीवकौ, घटकौ रूप न घीव।
त्यों वरनादिक नामसौं, जड़ता लहै न जीव॥९॥

आत्मा का स्वरूप

निराबाध चेतन अलख, जानै सहज सुकीव।
अचल अनादि अनंत नित, प्रकट जगतमें जीव॥१०

अनुभव। सवैया इकतीसा।

रूप-रसवंत मूरतीक एक पुद्गल, रूप बिनु और यौं अजीव दर्व दुधा है। च्यारि हैं अमूरतीक जीवभी अमूरतीक, याहीतैं अमूरतीक-वस्तु-ध्यान मुधा है। औरसौं न कबहूं प्रकट आपु आपुहीसौं ऐसौ थिर चेतनसु-भाउ शुद्ध सुधा है। चेतनकौ अनुभौ आराधै जग तेई जीव, जिन्हकौं अखण्डरस चाखिवेकी छुधा है॥११

मूढ़स्वभाव। सवैया तेइसा

चेतन जीव अजीव अचेतन लच्छन भेद उभै पद न्यारे।
सम्यक्दृष्टि उद्योत विचच्छण,भिन्न लखै लखिकै निरवारे॥
जे जग मांहि अनादि अखंडित,मोह महामदके मतवारे।
ते जड़ चेतन एक कहैं, तिन्हकी फिरि टेक टरै नहि टारे॥

ज्ञाता विलास। सवैया तेईसा

या घट में भ्रमरूप अनादि, विसाल महा-अविवेक अखारौ। तामहि और सरूप न दीसत, पुग्गल नृत्य करै

अति भारौ । फेरत भेप दिखावत कौतुक, सोंज लिए वरनादि पसारौ । मोहसौं भिन्न जुदौ जड़ सों, चिनमूरति नाटक देखनहारौ ॥ १३

भेद विज्ञान का परिणाम । सवैया इकतीसा ।

जैसें करवत एक काठ बीच खंड करैं, जैसें राजहंस निवारै दूध जलकों । तैसें भेद ज्ञान निज भेदक शकति सेती भिन्न २ करै चिदानन्द पुद्गलकों ॥ अवधिकों धावै मनपर्यै की अवस्था पावै, उमगि कैं आवै परमावधि के थलकों । याही भांति पूरन सरूप कौ उदोत धरैं, करैं प्रतिबिंबित पदारथ सकलकों ॥ १४

इति नाटक समयसारको अजीव द्वार समाप्त भया ।

कर्त्ता कर्म क्रियाद्वार ।

प्रतिज्ञा । दोहा ।

यह अजीव अधिकार कौ, प्रगट बखानौ मर्म ।
अब सुनु जीव अजीवके, कर्त्ता किरिया कर्म ॥ १

भेद विज्ञान में जीव कर्म का कर्त्ता नहीं है, निज स्वभाव का कर्त्ता है

प्रथम अज्ञानी जीव कहै मैं सदीव एक, दूसरो न और मैं ही करता करमकौ । अंतर-विवेक आयौ आपा-पर-भेद पायौ, भयौ बोध गयौ मिटि भारत भरमकौ ॥ भासैं छहों

दरबके गुणपरजाय सब, नासे दुख लख्यौ सुख पूरन परमकौ। करमकौ करतार मान्यो पुदगल पिंड, आप करतार भयौ आतम धरमकौ ॥२॥ जाही समै जीव देह बुद्धिकौ विकार तजै,वेदत सरूप निज भेदत भरम कौं। महा-परचंड मति मंडन अखंड रस, अनुभौ अभ्यासि परकासत परम-कौं ॥ ताही समै घटमें न रहै विपरीत भाव, जैसें तम नासै भानु प्रगटि धरमकौं। ऐसी दशा आवै जब साधक कहावै तब, करता ह्वै कैसे करै पुद्गल करमकौं ॥३॥

आत्मा कर्म का कर्त्ता नहीं है, मात्र ज्ञाता दृष्टा है—

जग में अनादिकौ अज्ञानी कहै मेरो कर्म, करता मैं याकौ किरिया कौ प्रतिपाखी है। अंतर सुमति भासी योग सौं भयौ उदासी, ममता मिटाइ परजाय-बुद्धि नाखी है ॥ निरभै सुभाय लीनौ अनुभौके रस भीनौ,कीनौ व्यवहार दृष्टि निहचै में राखी है। भरम की डोरी तोरी धरमकौ भयो धोरी, परमसौं प्रीति जोरी करमकौ साखी है ॥४॥

भेदविज्ञानी जीव लोगों को कर्म का कर्ता दिखाता है
पर वह वास्तवमें अकर्ता है। सवैया इकतीसा

जैसो जो दरब ताके तैसे गुन परजाय,ताहीसौं मिलत पै मिलै न काहु आनसौं। जीव वस्तु चेतन करम जड़ जाति भेद,अमिल मिलाप ज्यों नितंब जुरै कानसौं ॥ ऐसो सुदि-

वेक जाकै हिरदै प्रगट भयौ, ताकौ भ्रम गयौ ज्यों तिमिर
भागै भानसौं । सोई जीव करम कौ करतारसौ दीसैपै,
अकरता कह्यौ है शुद्धताके परमानसौं ।। ५

जीव और पुद्गल के जुदे २ स्वभाव । छप्पय छन्द ।

जीव ज्ञान गुण सहित, आप गुण-परगुण-ज्ञायक ।
आपा परगुन लखै, नांहि पुग्गल इहि लायक । जीव
दरव चिद्रूप, सहज पुद्गल अचेत जड़, जीव अमूरति
मूरतीक पुद्गल अन्तर बड़ ।। जब लग न होय अनुभौ
प्रगट, तब लग मिथ्या मति लसै । करतार जीव जड़
करमकौ, सुबुधि विकास यहु भ्रम नसै ।। ६

कर्ता कर्म और क्रिया का स्वरूप । दोहा ।

करता परिनामी दरव, करम रूप परिनाम ।
किरिया परजै की फिरनि, वस्तु एक त्रय नाम ।। ७

कर्ता कर्म और क्रिया एकत्व ।

कर्त्ता कर्म क्रिया करै, क्रिया कर्म करतार ।
नाम-भेद बहु विधि भयो, वस्तु एक निरधार ।। ८
नाम कर्म कर्तव्यता, करै न कर्ता दोइ ।
दुधा दरब सत्ता सधी, एक भाव क्यों होइ ।। ९

कर्ता कर्म और क्रिया पर विचार । सवैया इकतीसा ।

एक परिनाम के न करता दरब दोय, दोय परिनाम

एक दर्व न धरतु है। एक करतूति दोइ दर्व कबहूँ न करै, दोइ करतूति एक दर्व न करतु है। जीव पुद्गल एक खेत अवगाही दोउ, अपने२ रूप कोउ न टरतु है। जड़ परिनामनि कौ करता है पुद्गल, चिदानन्द चेतन सुभाउ आचरतु है १०

मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का स्वरूप। सवैया इकतीसा।

महा धीठ दुख कौ वसीठ परदर्वरूप, अंधकूप काहु पै निवारयो नहिं गयो है। ऐसो मिथ्याभाव लग्यो जीवकौ अनादिहीकौ, याही अहंबुद्धि लिये नाना भांति भयो है॥ काहू समैं काहूकौ मिथ्यात अंधकार भेदि, ममता उछेदि शुद्ध भाव परिनयो है। तिनही विवेक धारि बंधकौ विलास डारि, आतम सकतिसौं जगत जीति लयो है॥११

जैसा कर्म वैसा कर्ता। सवैया इकतीसा।

शुद्ध भाव चेतन अशुद्ध भाव चेतन, दुहूँकौ करतार जीव और नहिं मानिये। कर्मपिंडकौ विलास वर्न रस गंध फास करता दुहूँकौ पुद्गल परवानिये॥ तातै वर्नादि गुन ज्ञानावरनादि कर्म, नाना परकार पुद्गलरूप जानिये। समल विमल परिनाम जे जे चेतन के, ते ते सब अलख पुरुष यों बखानिये॥ १२

भेद ज्ञान का मर्म मिथ्यादृष्टि नहीं जानता।

जैसे गजराज नाज घास के गरासकरि, भच्छत सुभाय

नहिं भिन्नरस लियो है । जैसे मतवारो नहिं जान सिख-
रनि स्वाद, जुङ्ग में मगन कहै गऊ दूध पियो है ॥ तैसे
मिथ्या मति जीव ज्ञानरूपी है सदीव, पग्यो पाप पुण्य
सों सहज सुन्न हियो है । चेतन अचेतन दुहूँ को मिश्रपिंड
लखि, एकमेक मानै न विवेक कछु कियो है ॥ १३

जीव को कर्म का कर्त्ता मानना मिथ्यात्व है ।

जैसे महाधूप की तपति में तिसायो मृग, भरमसों
मिथ्याजल पीवनकों धायो है । जैसे अंधकार मांहिं
जेवरी निरखि नर, भरमसों डरपि सरप मानि आयो है ॥
अपने सुभाय जैसे सागर सुथिर सदा, पवन संजोग सों
उछरि अकुलायो है । तैसे जीव जड़ सों अव्यापक सहज
रूप, भरम सों करम को करता कहायो है ॥ १४

भेद विज्ञानी जीव कर्म का कर्ता नहीं है ।

जैसे राजहंस के वदन के सपरसत, देखिये प्रगट
न्यारो छीर न्यारो नीर है । तैसे समकिती की सुदृष्टि में
सहज रूप, न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारोई शरीर है ॥
जब शुद्धचेतनाको अनुभौ अभ्यासे तब, भासे आपु अचल
न दूजा और सीर है । पूरव करम उदै आइके दिखाई
देइ, करता न होइ तिन्हको तमासगीर है ॥ १५

मिले हुये जीव और पुद्गल का पृथक्पना ।

जैसे उसनोदक में उदक सुभाउ सीरो, आगि की उस-

नता फरस ज्ञान लखिये । जैसें स्वाद व्यंजन में दीसत विविध रूप, लौन कौ स्वाद खारो जीभ ज्ञान चखिये ॥ तैसें घट पिंड में विभावता अज्ञानरूप, ज्ञानरूप जीव भेद ज्ञानसों परखिये । भरमसों करम को करता है चिदानंद, दरव विचार करतार भाव नखिये ॥ १६

पदार्थ अपने स्वभाव का कर्त्ता है। दोहा ।

ज्ञान भाव ज्ञानी करै, अज्ञानी अज्ञान ।
दरव करम पुद्गल करै, यह निहचै परवान ॥ १७

ज्ञानका कर्ता जीव ही है, अन्य नहीं है ।

ज्ञान सरूपी आतमा, करे ज्ञान नहि और ।
दर्व कर्म चेतन करै, ये विवहारी दौर ॥ १८

इस विषय में शिष्य की शंका। सवैया तेईसा ।

पुद्गल कर्म करैं नहिं जीव, कही तुम मैं समुझी नहिं तैसी । कौन करै यहु रूप कहो अब, को करता करनी कहु कैसी । आपुहि आपु मिलै बिछुरै जड़, क्यों करि मो मन संशय ऐसी । शिष्य संदेह निवारन कारन, बात कहै गुरु है कछु जैसी ॥ १९

शंका का समाधान ।

पुद्गल परिनामी दरव, सदा परिनमें सोय ।
याते पुद्गल करमको, पुद्गल कर्त्ता होय ॥ २०
जीव चेतना संजुगत, सदा पूरब सब ठौर ।

तातैं चेतन भावकौ, करता जीव न और ॥ २१

शिष्य का पुनः प्रश्न । अडिल्ल छंद

ज्ञानवन्त कौ भोग निर्जरा हेतु है । अज्ञानी कौ भोग बंध फल देतु है ॥ यह अचरज की बात हिये नहीं आवही । बूझै कोऊ शिष्य गुरू समुझाव ही ॥ २२

ऊपर की हुई शंका समाधान । सवैया इकतीसा ।

दया दान पूजादिक विषय कषायादिक, दोहू कर्म बंधपै दुहू को एक खेतु है । ज्ञानी मूढ करम करत दीसे एकसे पै, परिनाम भेद न्यारौर फल देतु है ॥ ज्ञानवन्त करनी करै पैं उदासीन रूप, ममता न धरै तातैं निर्जरा कौ हेतु है । वहै करतूति मूढ़ करै पै मगन रूप, अन्ध भयौ ममता सों बंध फल लेतु है ॥ २३

मिथ्यात्वी के कर्त्तापने की सिद्धि पर कुंभकार का दृष्टान्त ।

ज्यों माटी में कलस, होनकी शक्ति रहै ध्रुव । दंड चक्र चीवर कुलाल बाहिज निमित्त हुव । त्यों पुद्गल परवानु, पुंज वरगना भेष धरि । ज्ञानावरनादिक सरूप विचरंत विविध परि । बाहिज निमित्त बहिरातमा, गहि संसै अज्ञानमति । जग मांहि अहंकृत भावसों, करम रूप व्है परिनमति ॥ २४

जीव को अकर्त्ता मानकर आत्म ध्यान करने की महिमा ।

जे न करैं नयपच्छ विवाद, धरैं न विषाद अलीक न भाखैं ।

जे उदवेग तजैं घट अन्तर, शीतल भाव निरन्तर राखैं ॥
जे न गुनी गुनभेद विचारत, आकुलता मनकी सब नाखैं ।
ते जगमें धरि आतम ध्यान, अखंडित ज्ञान सुधारस चाखैं ॥

जीव निश्चयनयसे अकर्ता और व्यवहार से कर्ता है ।

विवहार दृष्टि सों विलोकत बंध्यो सो दीसैं, निहचैं निहारत न बांध्यो यह किनही । एकपक्ष बंध्यो एक पक्षसों अबंध सदा, दोऊ पक्ष अपने अनादि धरे इन हीं ॥ कोऊ कहै समल विमलरूप कोउ कहैं, चिदानंद तैसोई बखान्यो जैसौ जिनही । बंध्यो मानैं खुल्यो मानैं दुहुनको भेद जानैं, सोई ज्ञानवन्त जीवतत्त्व पायो तिनही ॥२६

समरसी की प्रशंसा

प्रथम नियत नय दूजो विवहार नय, दुहुसों फलावत अनंत भेद फलैं हैं । ज्यों २ नय फलैं त्यों त्यों मनके कल्लोल फलैं, चंचल सुभाव लोकालोकलौं उछलैं हैं । ऐसी नयकक्ष ताकौ पक्ष तजि ज्ञानी जीव, समरसी भये एकता-सों नहिं टलै हैं । महामोह नासै शुद्ध अनुभौ अभ्यासि निज बल परगासै सुखरासि माहिं रलै हैं ॥२७

सम्यग्ज्ञानसे आत्मस्वरूप की पहिचान होती है । सवैया इकतीसा ।

जैसे काहूं बाजीगर चौहटे बजाइ ढोल नानारूप धरिकैं भगल विद्या ठानी है । तैसे मैं अनादिकौ मिथ्यातकी तरंग-

निसों, भरममें धाइ बहुकाय निज मानी है। अब ज्ञानकला जागी भरमकी दृष्टि भागी,अपनी पराई सबसौंज पहिचानी है। जाके उदै होत परवान ऐसी भांति भई, निहचै हमारी ज्योति सोई हम जानी है ॥२८॥

ज्ञानी का आत्मानुभव में विचार।

जैसें महा रतनकी ज्योतिमें लहरि उठे, जलकी तरंग जैसें लीनहोइ जलमें। तैसें शुद्ध आतम दरबपरजाय करि, उपजे बिनसे थिर रहे जिन थल में॥ ऐसे अविकलपी अ-जलपी अनंदरूपी अनादी अनंत गहिलीजे एक पलमें। ताको अनुभव कीजे परम पिऊष पीजे, बंध को बिलास डारि दीजे पुदगल में ॥२९॥

आत्मानुभव की प्रशंसा। सवैया इकतीसा।

दरवकी नय परजाय नय दोऊ नय, श्रुत ज्ञानरूप श्रुतज्ञान तो परोप है। शुद्ध परमातमाको अनुभौ प्रगट तातें अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोप है॥ अनुभौप्रवान भगवान पुरुष पुरान,ज्ञानऔ विज्ञानघन महासुख पोष है। परम पवित्र योंही अनुभौ अनंत नाम, अनुभौ विना न कहूँ और ठौर मोख है ॥३०

अनुभवके अभावमें संसार और सद्भावमें मोक्ष है इसपर दृष्टान्त

जैसे एक जल नानारूप दरबानुयोग, भयौ बहु भांति

पहिचान्यो न परतु है। फिरि काल पाइ दरवानुयोग दूरि होत अपने सहज नीचे मारग ढरतु है॥ तैसे यहु चेतन पदारथ विभाव तासों, गति योनि भेष भव भांवरि भरतु है। सम्यक सुभाइ पाइ अनुभौके पंथ धाइ, बंध की जुगति भानि मुकति करतु है॥ ३१

मिथ्यादृष्टि जीव कर्म का कर्ता है। दोहा।

निशि दिन मिथ्याभाव बहु, धरै मिथ्याती जीव।
तातैं भावित करम कौ, करता कह्यो सदीव॥ ३२

मिथ्यात्वी जीव कर्म का कर्ता और ज्ञानी अकर्ता है। चौपाई।

करै करम सोई करतारा, जो जानै सो जाननहारा।
जो कर्ता नहिं जानै सोई, जानै सो करता नहिं होई॥ ३३

जो ज्ञानी है वह कर्ता नहीं है। सोरठा।

ज्ञान मिथ्यात न एक, नहिं रागादिक ज्ञान महि।
ज्ञान करम अतिरेक, ज्ञाता सो करता नहीं॥ ३४

जीव कर्म का कर्ता नहीं है। छप्पय छंद।

करम पिंड अरु राग भाव, मिलि एक होंहि नहिं। दोऊ भिन्न स्वरूप बसहिं, दोऊ न जीव महिं। करम पिंड पुग्गल, विभाव रागादि मूढ़ भ्रम। अलख एक पुग्गल अनंत, किमि धरहि प्रकृति सम। निज निज विलास जुत जगत महि, जथा सहज परिनमहि तिम। करतार जीव जड़

करमकौ, मोह विकल जन कहहिं इम ॥ ३५

शुद्ध आत्मानुभव का माहात्म्य । छप्पय छन्द ।

जीव मिथ्यात न करै भाव नहिं धरै भरममल । ज्ञान ज्ञान रस रमै, होइ करमादिक पुद्गल ।- असंख्यात परदेश सकति, जगमगे प्रगट अति । चिदविलास गंभीर धीर, थिर रहै विमल मति । जब लगि प्रबोध घट महि उदित तब लगि अनय न पेखिये । जिमि धरमराज बरतंतपुर, जहं तहं नीति परेखिये ॥ ३६

इति श्री नाटक समयसार कर्ता कर्म क्रिया द्वार समाप्त

पापपुण्य द्वार

प्रतिज्ञा । दोहा ।

करता क्रिया करमकौ, प्रगट बखान्यौ मूल ।
अब बरनौं अधिकार यह, पाप पुन्य समतूल ॥ १

मंगलाचरण । कवित्त ।

जाके उदै होत घट अंतर, विनसै मोह महातम रोक । शुभ अरु अशुभ करमकी दुविधा, मिटे सहज दीसे इक थोक । जाकी कला होतु सम्पूरन, प्रतिभासैं सब लोक अलोक । सो प्रबोध शशि निरखि बनारसि, सीस नवाइ देतु पग धोक ॥

पुण्य पापकी समानता। सवैया इकतीसा।

जैसे काहु चंडाली जुगल पुत्र जने तिन्ह, एक दियो बांभन कुं एक घर राख्यो है। बांभन कहायो तिन्ह मद्य मांस त्याग कीनो, चंडाल कहायो तिन मद्य मांस चाख्यो है॥ तैसे एक वेदनी करमके जुगल पुत्र एक पाप एक पुण्य नाम भिन्न भाख्यो है। दुहों माहिं दौरधूप दोउ कर्म बंधरूप, याते ज्ञानवंत नहिं कोउ अभिलाख्यो है ॥३॥

शंका। चौपाई।

कोऊ शिष्य कहै गुरु पांहीं, पापपुण्य दोऊ सम नाहीं।
कारन रस सुभावफल न्यारे। एक अनिष्ट लगै इक प्यारे।

सवैया।

संकिलेस परिनामनिसों पाप बंध होइ, विशुद्धसों पुन्य बंध हेतुभेद मानिये। पाप के उदै असाता ताको है कटुक स्वाद, पुन्य उदै साता मिष्ट रसभेद जानिये॥ पाप संकिलेस रूप पुन्य है विशुद्ध रूप, दुहूको सुभाउ भिन्न भेद यों बखानिये। पापसों कुगति होय पुन्यसों सुगति होय, ऐसो फल भेद परतक्ष परमानिये ॥४॥

शंका का समाधान। सवैया इकतीसा।

पाप बंध पुन्य बंध दुहूमें मुकति नांहि, कटुक मधुर स्वाद पुग्गलको पेखिये। संकिलेस विशुद्धि सहज दोऊ कर्म चालि, कुगति सुगति जग जालमें विशेखिये॥ कारना-

दि भेद तोहि सूझत मिथ्यातमांहि, ऐसो द्वैत भाव ज्ञान-दृष्टिमें न लेखिये । दोऊ महा अन्धकूप दोउ कर्म वन्ध-रूप दुहूको विनास मोख मारगमें देखिये ॥६

शुद्धोपयोग ही उपादेय है ।

सीलतप संजम विरति दान पूजादिक, अथवा असंजम कषाय विषै भोग है । कोउ शुभरूप कोउ अशुभ सरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है ॥ ऐसी वंध पद्धति वखानी वीतराग देव, आतम धरम में करम त्याग जोग है । भौ जल तरैया राग द्वेषको हरैया महा, मोख को करैया एक शुद्ध उपयोग है ॥७॥

शिष्य गुरु प्रश्नोत्तर ।

शिष्य कहै स्वामी तुम करनी अशुभ शुभ कीनी है निषेध मेरे संसै मनमांही है । मोखके सधैया ज्ञाता देस-विरती मुनीस, तिन्हकी अवस्था तो निरावलंव नाँही है ॥ कहै गुरु करमको नास अनुभौ अभ्यास, ऐसो अवलंव उनही को गुन पांही है । निरुपाधि आतम समाधि सोइ शिवरूप, और दौर धूप पुद्गल परछांही है ॥८॥

मुनि श्रावककी दशामें वंध और मोक्ष दोनों हैं ।

मोक्षसरूप सदा चिनमूरति वंधमई करतूति कही है । जावतकाल वसै जहां चेतन, तावत सो रस रीति गही है ॥

आतमको अनुभव जबलों,तबलों शिवरूप दसा निबही है ।
अन्ध भयो करनी जब ठानत, बंध विथा तब फैल रही है

मोक्ष की प्राप्ति अन्तर्दृष्टिसे है । सोरठा ।

अन्तर दृष्टि लखाउ, निज सरूपको आचरण ।
ए परमातम भाउ, शिवकारन एई सदा ॥१०॥

बाह्य दृष्टि से मोक्ष नहीं है ।

करम शुभाशुभ दोइ,पुद्गलपिंड विभावमल ।
इनसों मुकति न होइ, नहिं केवल पद पाइए ॥११

शिष्य गुरु प्रश्न उत्तर । सवैया इकतीसा

कोउ शिष्य कहै स्वामी अशुभ क्रिया अशुद्ध, शुभ क्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न वरनी । गुरु कहैं जबलों क्रियाको परिणाम रहै, तबलों चपल उपयोग योग धरनी । थिरता न आवैं तोलों शुद्ध अनुभौं न होइ,याते दोऊ क्रिया मोखपंथ की कतरनी । बंध की करैया दोऊ दुहूमें न भली कोऊ, बाधक विचारि में निषिद्ध कीनी करनी ॥१२॥

ज्ञान मुक्ति का कारण है । सवैया इकतीसा ।

मुक्तिके साधकको बाधक करम सब, आतमा अनादि कौ करम मांहि लुक्यो है । एते परि कहै जो कि पाप बुरा पुण्य भलो, सोई महामूढ़ मोक्ष मारगसों चुक्यो है ॥ सम्यक् सुभाव लिये हिये में प्रगटयो ज्ञान, ऊरध उमंगि

चल्यो काहूपे न रुक्यो है । आरसी सौं उज्वल बनारसी कहत आपु, कारन सरूप ह्वै के कारजको ढुक्यो है ॥१३

ज्ञान और शुभ अशुभ धारा । सवैया इकतीसा ।

जौलौं अष्टकर्म को विनास नाहीं सर्वथा, तोलों अंतरातमा में धारा दोइ बरनी । एक ज्ञान धारा एक शुभाशुभ कर्मधारा, दुहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी । इतनो विशेष जु करम धारा बंधरूप, पराधीन सकति विविधि बंध करनी । ज्ञान धारा मोक्षरूप मोक्षकी करनहार, दोपकी हरनहार भौ समुद्र तरनी ॥१४॥

यथायोग्य कर्म और ज्ञान से मोक्ष है । सवैया इकतीसा ।

समुझै न ज्ञान कहै करम क्रिये सों मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यात की गहलमें । ज्ञानपक्ष गहै कहै आतमा अबंध सदा, बरते सुछंद तेउ बूडे हैं चहलमें । जथायोग करम करै पै ममता न धरैं, रहैं सावधान ज्ञान ध्यान की टहल में ॥ तेई भवसागर के ऊपर ह्वै तरैं जीव, जिन्हको निवास स्यादवाद के महल में ॥१५

मूढ तथा विचक्षण क्रिया । सवैया इकतीसा ।

जैसे मतवारौ कोउ कहै और करै और, तैसे मूढप्राणी विपरीतता धरतु है । अशुभ करमबंध कारन बखानैं मानैं, मुकतिके हेतु शुभ रीति आचरतु है ॥ अन्तर

सुदृष्टि भई मूढता विसरि गई, ज्ञान को उद्योत भ्रम तिमिर हरतु है। करनी सों भिन्न रहै आतम सरूप गहै, अनुभौ आरम्भ रस कौतुक करतु है॥ १६

इति नाटक समयसार का पुण्य पाप एकत्व कथन संपूर्ण।

आस्रव द्वार।

प्रतिज्ञा। दोहा।

पुन्य पाप की एकता, वरनी अगम अनूप।
अब आस्रव अधिकार कछु, कहौं अध्यातमरूप॥ १

सम्यग्ज्ञान को नमस्कार। सवैया इकतीसा।

जे ते जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज वस करि राखे बल तोरिके। महा अभिमानी ऐसो आस्रव अगाध जोधा रोपि रन थंभ ठाड़ो भयो मूछ मोरिके॥ आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फोरिके। आस्रव पछार्यो रन-थंभ तोरि डार्यो ताहि, निरखि बनारसी नमत कर जोरिके॥ २

द्रव्यास्रव, भावास्रव और सम्यग्ज्ञान का लक्षण। सवैया तेईसा।

दर्वित आस्रव सो कहिए जहिं, पुग्गल जीव प्रदेस गरासै। भावित आस्रव सो कहिए जहँ राग विरोध

विमोह विकासै ॥ सम्यक पद्धति सो कहिये जहं दर्वित भावित आस्रव नासै । ज्ञानकला प्रगटै तिहि थानक अंतर बाहिर और न भासै ॥ ३

ज्ञाता निरास्रवी है । चौपाई छंद ।

जो दरवास्रव रूप न होई, जहं भावास्रव भाव न कोई । जाकी दशा ज्ञानमय लहिये, सो ज्ञातार निरास्रव कहिये ॥ ४

सम्यग्ज्ञानी निरास्रव रहता है । सवैया इकतीसा ।

जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि पूरवक, तिह परिनामनि की ममता हरतु है । मनसों अगोचर अबुद्धि पूर्वक भाव, तिन्हके विनासवे को उद्यम धरतु है । याहि भांति पर-परिनति को पतन करे, मोखको यतन करै भौजल तरतु है । ऐसे ज्ञानवन्त ते निरास्रव कहावै सदा, जिन्ह को सुजस सुविचक्षण करतु है ॥ ५

शिष्य का प्रश्न । सवैया तेइसा ।

ज्यों जग में विचरै मति मंद, सुछन्द सदा वरतै बुध तैसे । चंचल चित्त असंजित वैन, शरीर सनेह जथावत जैसे ॥ भोग संजोग परिग्रह संग्रह, मोह विलास करै जहाँ ऐसे । पूछत शिष्य आचारजसों यह, सम्यकवंत निरास्रव कैसे ॥६

शिष्य की शंका का समाधान । सवैया तेईसा ।

पूरब अवस्था जे करमबंध कीने अब, तेई उदै आइ

नाना भांति रस देत हैं। केई शुभ साता केई अशुभ असातारूप, दुहुसों न राग न विरोध समचेत हैं ॥ यथा-योग क्रिया करै फल की न इच्छा धरै, जीवन मुकति कौ विरुद गहिलेत हैं। यातें ज्ञानवंतकों न आस्रव कहत कोऊ मुद्धतासों न्यारे भये सुद्धता समेत हैं ॥७

राग द्वेष मोह और ज्ञान का लक्षण। दोहा।

जो हित भाव सुराग है, अनहितभाव विरोध।
भ्रामकभाव विमोह है, निर्मल भाव सुबोध ॥८

राग द्वेष मोह ही आस्रव है।

राग विरोध विमोह मल, एई आस्रव मूल।
एई कर्म बढ़ाइ के, करै धरम की भूल ॥९

सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव है।

जहां न रागादिक दसा, सो सम्यक परिनाम।
यातें सम्यकवंतको, कह्यो निरास्रव नाम ॥१०

निरास्रवी जीवों का आनन्द। सवैया इकतीसा।

जे केई निकट भव्य रासी जगवासी जीव, मिथ्या मत भेदि ज्ञान भाव परनिये हैं। जिन्हकी सुदृष्टि में न राग दोष मोह कहूं, विमल विलोकनि में तीनों जीति लये हैं ॥ तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोग की दशामें मिलि गये हैं। तेई बंधपद्धति विडारि परसंग डारि आपमें मगनव्है के आपरूप भये हैं ॥११

उपशम तथा क्षयोंपशम भावों की अस्थिरता। सवैया इकतीसा।

जेते जीव पंडित क्षयोपशमी उपशमी, तिन्हकी अवस्था ज्यों लुहार की संडासी है। छिन आग मांहि छिन पानी मांहि तैसे एऊ छिनमें मिथ्यात छिनु ज्ञानकला भासी है॥ जौलों ज्ञान रहै तौलों सिथिल चरन मोह, जैसे कीले नागकी सकति गति नासी है। आवत मिथ्यात तव नानारूप बंध करै, ज्यों उकीले नागकी प्रकृति परगासी है॥१२

अशुद्ध नयसे बंध और शुद्ध नय से मुक्ति है। दोहा।

यह निचोर या ग्रन्थ कौ, कहै परमरस पोख।
तजै शुद्ध नयबंध है, गहै शुद्ध नय मोख॥१३

जीव की बाह्य तथा अंतरंग अवस्था

करमके चक्रमें फिरत जगवासी जीव, ह्वै रह्यो बहिरमुख व्यापत विपमता। अंतर सुमति आई विमल बड़ाई पाई, पुद्गल सों प्रीति टूटी छूटी माया ममता॥ शुद्ध नै निवास कीन्हों अनुभो अभ्यास लीन्हों, भ्रमभाव छांडि दीनों भीनौं चित्त समता। अनादि अनंत अविकलप अचल ऐसौ, पद-अवलम्बि अवलोकै राम रमता॥१४

शुद्ध आत्मा ही सम्यग्दर्शन है। सवैया इकतीसा।

जाके परगास में न दीसे राग दोष मोह, आस्रव मिटत नहिं बंधको तरस है। तिहुंकाल जामें प्रतिबिंबित अनंत-

रूप आप हू अनंत सत्ता-नंततें सरस है ॥ भाव श्रुतज्ञान परवान जो विचारि वस्तु, अनुभौ करे न जहां वानीको परस है। अतुल अखंड अविचल अविनासी धाम, चिदानन्द नाम ऐसो सम्यक दरस है ॥१५

इति नाटक समयसार विषे आस्रव द्वार संपूर्ण।

संवर द्वार।

प्रतिज्ञा। दोहा।

आस्रवको अधिकार यह, कह्यो यथावत जेम।
अब संवर वरनन करों, सुनों भविक धरि प्रेम ॥१

ज्ञान रूप संवर को नमस्कार। सवैया इकतीसा।

आतमको अहित अध्यातमरहित ऐसो, आस्रव महातम अखंड अण्डवत है। ताको विसतार गिलिवेको परगट भयो, ब्रह्मंड को विकासी ब्रह्मंड मंडवत है ॥ जामें सब रूप जो सबमें सब रूपही में, सबनि सों अलिप्त आकाश खंडवत है। सोहै ज्ञान भानु शुद्ध संवर को भेष धरे, ताकीरुचि रेखकों हमारी दंडवत है ॥२

भेद विज्ञानका महत्व। सवैया तेईसा।

शुद्ध सुछंद अभेद अबाधित, भेद-विज्ञान सुतीछन आरा। अंतरभेद सुभाव विभाव, करे जड़ चेतनरूप दुफारा।

सो जिन्हके उरमें उपज्यो, न रुचै तिन्हको परसंग सहारा।
आतमकौ अनुभौ करि ते, हरखैं परखैं परमातम धारा ॥३

सम्यक्त्व से सम्यग्ज्ञान और आत्मस्वरूपकी प्राप्ति।

जो कबहूँ यह जीव पदारथ, औसर पाइ मिथ्यात मिटावैं। सम्यक धार प्रवाह बहै गुन, ज्ञान उदैं मुख ऊरध धावैं॥ तो अभिअंतर दवित भावित, कर्म किलेश प्रवेश न पावैं। आतम साधि अध्यातम कौ पथ, पूरण व्है पर-ब्रह्म कहावैं ॥४

सम्यग्दृष्टि की महिमा।

भेदि मिथ्यात सु वेदि महारस, भेद-विज्ञान कला जिन पाई। जो अपनी महिमा अवधारत, त्याग करें उर सौंज पराई॥ उद्धत रीति फुरी जिनके घट, होतु निरंतर ज्योति सवाई। ते मतिमान सुवर्ण समान, लगे तिनकों न शुभाशुभ काई॥ ५

भेदज्ञान संवर, निर्जरा और मोक्षका कारण है। अडिल्लछंद।

भेदज्ञान संवर-निदान निरदोष है। संवरसौं निरजरा अनुक्रम मोच्छ है॥ भेद ज्ञान शिवमूल जगतमहि मानिये। यदपि हेय है तदपि उपादेय जानिये ॥६

आत्मस्वरूप की प्राप्ति होने पर भेदज्ञान हेय है। दोहा।

भेदज्ञान तबलों भलौ, जबलों मुक्ति न होय।
परमज्योति परगट जहाँ, तहां न विकलप कोय ॥७

भेदज्ञान परम्परा मोक्ष का कारण है। चौपाई।

भेदज्ञानसंवर जिन पायो. सो चेतन शिवरूप कहायो।
भेदज्ञान जिनके घट नाहीं। ते जड़जीव बंधे घट मांही ॥८

भेदज्ञान से आत्मा उज्वल होता है। दोहा।

भेद ज्ञान साबू भयो, समरस निरमल नीर।
धोबी अंतर आतमा, धोवै निज गुन चीर ॥६

भेद विज्ञान की क्रिया के दृष्टान्त। सवैया इकतीसा।

जैसे रजसोधा रज सोधके दरब काढ़े, पावक कनक काढ़ि दाहत उपलकों। पंक के गरभमें ज्यों डारिये कुतक फल, नीर कर उज्जल नितारि डारे मलकों॥ दधि को मथैया मथि काढ़े जैसे माखनकों, राजहंस जैसे दूध पीवै त्यागि जलकों। तैसे ज्ञानवंत भेदज्ञान की सकति साधि, वेदे निज संपति उछेदे परदल कों ॥१०

मोक्ष का मूल भेद विज्ञान है। छप्पय छंद।

प्रगटि भेद विज्ञान, आपगुण परगुण जानै। परपरिनति परित्यागि, शुद्ध अनुभव थिति ठानै॥ करि अनुभव अभ्यास, सहज संवर परगासै। आस्रव द्वार निरोधि कर्म घन तिमिर विनासै॥ छय करि विभाव समभाव भजि, निरविकल्प निज पद गहै। निर्मल विशुद्ध सासुत सुथिर, परम अतींद्रिय सुख लहै ॥११

इति नाटकसमयसार का संवर द्वार संपूर्ण।

निर्जरा द्वार ।

प्रतिज्ञा । दोहा ।

वरनी संवर की दसा, जथा जुगति परवान ।
मुक्ति वितरनी निर्जरा, सुनहु भविक धरि कान ॥१

मंगलाचरण । चौपाई ।

जो संवर पद पाइ अनन्दे, जो पूरव कृत कर्म निकन्दे । जो अफंद व्है बहुरि न फंदे, सो निरजरा बनारसि बंदे ॥२

ज्ञानवैराग्य के बलसे शुभाशुभ क्रियाओंसेभी बंध नहीं होता।

महिमा सम्यक ज्ञानकी, अरु विराग बल जोइ ।
क्रिया करत फल भुंजते, करमबंध नहिं होइ ॥३

भोग भोगते हुए भी ज्ञानियोंको कर्मकालिका नहीं लगती ।

सवैया इकतीसा ।

जैसे भूप कौतुक सरूप करै नीच कर्म, कौतुकी कहावै तासों कौन कहै रंक है । जैसे विभचारिनी विचारै विभचार वाको, जारहीसों प्रेम भरतासों चित बंक है ॥ जैसे धाइ बालक चुंघाइ करै लालि पालि, जानै ताहि और को जदपि वाके अंक है । तैसे ज्ञानवंत नाना भांति करतूति ठानै, किरियाकों भिन्न मानै यातै निकलंक है ॥४

पुनः

जैसे निशिवासर कमल रहै पंकही में, पंकज कहावै

पै न वाके ढिंग पंक है। जैसे मंत्रवादी विषधरसौं गहावै गात, मंत्रकी सकति वाके विना विष डंक है॥ जैसे जीभ गहै चिकनाई रहै रूखे अंग, पानी में कनक जैसे काईसौं अटंक है। तैसे ज्ञानवंत नाना भांति करतूति ठानै, किरियाकों भिन्न मानै याते निकलंक है॥५

वैराग्यशक्ति वर्णन। सोरठा।

पूर्व उदय संबंध, विषय भोगवै समकिती।
करे न नूतन बंध, महिमा ज्ञान विरागकी॥६

ज्ञान वैराग्यसे मोक्षकी प्राप्ति है। सवैया तेईसा।

सम्यकवंत सदा उर अंतर, ज्ञान विराग उभै गुन धार। जासु प्रभाव लखै निज लछन, जीव अजीव दशा निरवारै॥ आतमको अनुभौ करि ह्वै थिर, आपु तरै अरु औरनि तारै। साधि सुदर्व लहै शिव सर्म, सुकर्म उपाधि व्यथा वमि डारै॥७

सम्यग्ज्ञान के बिना सम्पूर्ण चारित्र निस्सार है। सवैया तेईसा।

जो नर सम्यकवंत कहावत, सम्यकज्ञान कला नहिं जागी। आतमअंग अबंध विचारत, धारत संग कहै हम त्यागी। भेष धरे मुनिराज पटंतर, मोह-महानल अंतर दागी। शून्य हिये करतूति करै पर, सो सठ जीव न होइ विरागी॥ ८

भेद विज्ञान के विना चारित्र निस्सार है। सवैया तेईसा।

ग्रन्थ रचै चरचैं शुभ पन्थ, लखै जगमें व्यवहार सुपत्ता।
साधि संतोष अराधि निरंजन,देइ सुसीख न लेइ अदत्ता ॥
नंग धरंग फिरै तजि संग, छकै सरवंग सुधारस मत्ता। ए
करतूति करैं सठ पैं समुझैं न, अनातम आतम सत्ता ॥ ६
ध्यान धरैं करि इंद्रियनिग्रह,विग्रहसों न गिनैं निज नत्ता।
त्यागि विभूति विभूति मढै तन,जोग गहै भवभोग विरत्ता॥
मौन रहै लहि मंद कषाय,सहै वध बंधन होइ न तत्ता।
ए करतूति करै सठपैं, समुझैं न अनातम आतम सत्ता ॥१०

चौपाई।

जो विनु ज्ञान क्रिया अवगाहै, जो विनु क्रिया मोख पद चाहै। जो विनु मोख कहै मैं सुखिया, सो अजानु मूढ़नि में मुखिया ॥११

गुरु का उपदेश अज्ञानी जीव नहीं मानते। सवैया इकतीसा।

जगवासी जीवनिसों गुरु उपदेश कहै, तुम्हैं इहां सोवत अनन्त काल वीते हैं। जागो व्है सुचेत चित्त समता समेत सुनौ, केवल वचन जामें अक्ष-रस जीते हैं ॥ आवो मेरे निकट बताऊं मैं तुम्हारे गुन, परम सुरस भरे करमसों रीते हैं ॥ ऐसे वैन कहै गुरु तऊ ते न धरैं उर, मित्र कैसे पुत्र किधौं चित्र कैसे चीते हैं ॥ १२

जीव की शयन और जाग्रत दशा कहने की प्रतिज्ञा।

एते पर बहुरों सुगुरु, बोले वचन रसाल।
सेन दशा जागृत दशा, कहैं दुहूँ की चाल ॥१३

जीव की शयन अवस्था। सवैया इकतीसा।

काया चित्रसारी में करम परजंक भारी, माया की संवारी सेज चादर कलपना। सैन करै चेतन अचेतना नींद लिए, मोह की मरोर यहै लोचनको ढपना ॥ उदै बल जोर यहै श्वासको सबद घोर, विषै सुख कारज की दौर यहै सपना। ऐसी मूढ दसा में मगन रहै तिहूँकाल, धावै भ्रम जाल में न पावै रूप अपना ॥ १४

जीव की जाग्रत दशा। सवैया इकतीसा।

चित्र सारी न्यारी परजंक न्यारो सेज न्यारी, चादर भी न्यारी इहां झूठी मेरी थपना। अतीत अवस्था सैन निद्रा वहि कोऊ पै, न विद्यमान पलक न यामें अब छपना ॥ श्वास औ सुपन दोऊ निद्रा की अलंग बूझै, सूझै सब अङ्ग लखि आतम दरपना। त्यागी भयो चेतन अचेतनता भाव त्यागी, भाले दृष्टि खोलि के संभाले रूप अपना ॥ १५

जाग्रत दशा का फल। दोहा।

इहि विधि जे जागे पुरुष, ते शिवरूप सदीव।
जे सोवहि संसार में, ते जगवासी जीव ॥१६

आत्म द्रव्य स्तुति । दोहा ।

जो पद भौ पद भय हरे, सो पद सेउ अनूप ।
जिहिं पद परसत और पद, लगैं आपदा रूप ॥१७A.

संसार सर्वथा असत्य है । सवैया इकतीसा ।

जब जीव सोवैं तब समुझै सुपन सत्य, वहि झूठ लागै जब जागै नींद खोइके । जागे कहै यह मेरा तन मेरी सोंज,ताहू झूठ मानत मरणथिति जोइके। जाने निज मरम मरन तब सूझै झूठ, बूझै जब और अवतार रूप होइके । वाहू अवतार की दशा में फिरि यहै पेच, याहि भाँति झूठो जग देख्यो हम टोइके ॥१७

सम्यग्ज्ञानी का आचरण । सवैया इकतीसा ।

पंडित विवेक लहि एकताकी टेक गहि, दुन्दज अवस्था की अनेकता हरतु है । मतिश्रुत अवधि इत्यादि विकलप मेटि, निरविकलप ज्ञान मनमें धरतु है ॥ इंद्रिय-जनित सुख दुःखसों विमुख व्हैके, परमको रूप व्है करम निर्जरतु है । सहज समाधि साधि त्यागि परकी उपाधि, आतम अराधि परमातम करतु है ॥१८

सम्यग्ज्ञानको समुद्र की उपमा । सवैया इकतीसा ।

जाके उर अन्तर निरंतर अनंत दर्व, भाव भासि रहे पै सुभाउ न टरतु है । निर्मल सौं निर्मल सुजीवन प्रगट

जाके घटमें अघटरस कौतुक करतु है ॥ जामें मति श्रुत औधि मनपर्यै केवल सु, पंचधा तरंगनि उमंग उछरतु है। सो है ज्ञानउदधि उदार महिमा अपार, निराधार एकमें अनेकता धरतु है ॥१९

ज्ञान रहित क्रिया से मोक्ष नहीं होती। सवैया इकतीसा।

केई क्रूर कष्ट सहैं तपसों शरीर दहैं, धूम्रपान करैं अधोमुख व्हैके झूले हैं। केई महाव्रत गहैं क्रियामें मगन रहैं, वहैं मुनि भारमें पयार कैसे पूले हैं॥ इत्यादिक जीवनकों सर्वथा मुकति नांहि फिरै जगमांहि ज्यों बयारके बघूले हैं। जिनके हियेमें ज्ञान तिनहीको निरवान, करमके करतार भरम में भूले हैं ॥२०

व्यवहारलीनता का परिणाम। दोहा।

लीन भयो विवहारमें, उकति न उपजै कोइ।
दीन भयो प्रभुपद जपै, मुकति कहांसों होइ ॥२१

प्रभु सुमरो पूजो पढ़ो, करो विविध विवहार।
मोक्ष सरूपी आतमा, ज्ञानगम्य निरधार ॥२२

ज्ञान के बिना मुक्ति मार्ग नहीं जाना जाता। सवैया तेईसा।

काज बिना न करै जिय उद्यम, लाज बिना रनमांहि न जूझै। डील बिना न सधै परमारथ, सील बिना सतसौं न अरूझै॥ नेम बिना न लहै निहचै पद, प्रेम बिना रस

रीत न बूझै । ध्यान बिना न थमे मनकी गति,ज्ञान बिना शिवपन्थ न सूझै ॥२३

ज्ञान की महिमा । सवैया तेईसा ।

ज्ञान उदै जिनके घट अन्तर, ज्योति जगी मति होति न मैली । वाहिज दृष्टी मिटी जिनके हिय, आतम-ध्यान कलाविधि फैली ॥ जे जड़ चेतन भिन्न लखै सुविवेक लिये परखै गुनथैली । ते जगमें परमारथ जानि, गहै रुचि मानि अध्यातम सैली ॥२४

दोहा

वहुविधि क्रियाकलेससों, शिवपद लहै न कोइ ।
ज्ञानकला परकाशसों, सहज मोक्षपद होइ ॥२५
ज्ञान कला घट-घट वसे, योग युगति के पार ।
निज निज कला उदोत करि,मुक्त होइ संसार ॥२६

अनुभव की प्रशंसा । कुंडलिया छन्द ।

अनुभव चिंतामनिरतन,जाके हिय परगास । सो पुनीत शिवपद लहै, दहै चतुर्गति वास ॥ दहै चतुर्गतिवास, आसधरि क्रिया न मंडै । नूतन बंध निरोधि, पूर्वकृत कर्म विहंडै ॥ ताके न गनु विकार,न गनु वहु भार न गनु भव । जाके हिरदे मांहि, रतन चिंतामनि अनुभव ॥ २७

सम्यग्दर्शन की प्रशंसा । सवैया इकतीसा ।

जिनके हिएमें सत्य सूरज उदोत भयो, फैली मति किरन मिथ्यात तम नष्ट है। जिनकी सुदृष्टिमें न परचै विषमतासों, समतासों प्रीति ममतासों लष्टपुष्ट है ॥ जिनके कटाक्ष में सहज मोक्षपथ सधै, साधन निरोध जाके तनको न कष्ट है। तिनके करमकी किलोल यह है समाधि, डोले यह जोगासन बोले यह मष्ट है ॥२८

परिग्रह के विशेष भेद कथन करने की प्रतिज्ञा ।

आतमसुभाउ परभाउकी न सुद्धि ताको, जाको मन मगन परिग्रहमें रह्यो है। ऐसो अविवेक को निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इहालों समुच्चैरूप कह्यो है ॥ अब निज पर भ्रम दूरि करिवेके काज, बहुरो सुगुरु उपदेश को उमह्यो है। परिग्रह त्याग परिग्रहको विशेष अंग, कहिवेको उद्यम उदार लहलह्यो है ॥२९

सामान्य विशेष परिग्रह का निर्णय । दोहा ।

त्याग जोग परवस्तु सब, यह सामान्य विचार ।
विविधवस्तु नाना विरति, यह विशेषविस्तार ॥३०

परिग्रह में रहते हुये भी ज्ञानी जीव निष्परिग्रह है । चौपाई ।

पूरब करम उदै रस भुंजै, ज्ञान मगन ममता न प्रयुंजै ॥
उरमें उदासीनता लहिये, यों बुध परिग्रहवंत न कहिये ॥३१

परिग्रह में रहने पर भी ज्ञानी जीवों को परिग्रह रहित
कहने का कारण । सवैया इकतीसा ।

जे जे मनवंछित विलास भोगजगत् में तेते विनासीक सब राखे न रहत हैं। और जे जे भोग अभिलास चित्त परिणाम, तेते विनासीक धर्मरूप ह्वै वहत हैं ॥ एकता न दुहों मांहि ताते वांछा फुरे नाहिं ऐसे भ्रम कारज को मूरख चहत हैं । सतत रहे सचेत परसों न करे हेत याते ज्ञानवन्तको अवञ्छक कहत हैं ॥३२

परिग्रह में रहने पर भी ज्ञानी जीव निष्परिग्रह है, इस पर दृष्टान्त
सवैया इकतीसा ।

जैसे फिटकड़ी लोद हरडे की पुट विना स्वेत वस्त्र डारि, ये मजीठरङ्ग नीरमें। भीग्यो रहै चिरकाल सर्वथा न होइ लाल भेदे नहीं अन्तर सफेदी रहै चीर में। तैसे समकितवन्त राग दोष मोह विनु, रहे निशिवासर परिग्रह की भीरमें। पूरब करम हरे नूतन न बंध करे, जाचे न जगत सुख राचे न शरीर में ॥३३

सवैया इकतीसा ।

जैसे काहू देस को वसैया बलवन्त नर, जंगल में जाइ मधु-छत्ताकों गहतु है । वाकों लपटाय चहुंओर मधुमक्षिका पै, कंबलीकी ओट सो अडंकित रहतु है ॥ तैसे समकिती शिव सत्ता को सरूप साधे, उदेकी उपाधि कों समाधिसी

कहतु है । पहिरे सहजको सनाह मनमें उछाह, ठाने सुख राह उदवेग न लहतु है ॥३४॥

ज्ञानी जीव सदा अबंध है। दोहा।

ज्ञानी ज्ञान मगन रहै, रागादिक मल खोइ।
चित उदास करनी करै, करम बंध नहिं होइ ॥ ३५
मोह महातम मल हरै, धरै सुमति परकास।
मुकति पंथ परगट करै, दीपक ज्ञान विलास ॥ ३६

ज्ञानरूपी दीपक की प्रशंसा। सवैया इकतीसा।

जामें धूमको न लेस वातको न परवेस, करम पतंगनिकौ नाश करै पलमें। दसाकौ न भोग न सनेहको संजोग जामें, मोह अन्धकारकौ वियोग जाके थल में ॥ जामें न तताई नहिं राग रंगताई रंच, लहलहै समता समाधि जोग जलमें। ऐसी ज्ञानदीपकी सिखा जगी अभंग रूप, निराधार फुरी पै दुरी है पुद्गल में ॥ ३७

ज्ञान की निर्मलता पर दृष्टान्त। सवैया इकतीसा।

जैसो जो दरब तामें तैसोही सुभाउ सधै, कोउ दर्व काहूको सुभाउ न गहतु है। जैसे संख उज्जल विविध वर्ण माटी भखै, माटीसो न दीसै नित उज्जल रहतु है ॥ तैसे ज्ञानवन्त नाना भोग परिग्रह जोग, करत विलास न अज्ञानता लहतु है। ज्ञानकला दूनी होइ दुन्द-दसा सूनी

होइ, उनी होई भौं थिति बनारसी कहतु है ॥ ३८

विषय वासनाओं से विरक्त रहने का उपदेश। सवैया इकतीसा।

जोलों ज्ञान को उदोत तोलों नहीं बंध होत, वरते मिथ्यात तब नाना बंध होहि है। ऐसो भेद सुनिकै लग्यौ तू विषै भोगनिसों जोगनिसों उद्यम की रीतितें विछोहि है॥ सुनो भैया संत तू कहै मैं समकितवंत, यहु तो एकंत भगवंत कौ दिरोहि है, विषैसों विमुख होइ अनुभो दशा अरोहि, मौख सुख टोहि ऐसी तोहि मति सोहि है ॥३९

ज्ञानी जीव विषयों में निरंकुश नहीं रहते। चौपाई।

ज्ञानकला जिनके घट जागी, ते जग मांहि सहज वैरागी ॥ ज्ञानी मगन विषै सुख मांही, यहु विपरीत संभवै नाँही ॥ ४०

ज्ञान और वैराग्य एक साथ ही होते हैं। दोहा।

ज्ञान सकति वैराग्य बल, शिव साधै समकाल।
ज्यों लोचन न्यारे रहैं, निरखै दोऊ नाल ॥४१

अज्ञानी जीवों की क्रिया बंध के लिये और ज्ञानी जीवों की क्रिया निर्जरा के लिये है। चौपाई।

मूढ कर्मको कर्त्ता होवै, फल अभिलाष धरै फल जोवै।
ज्ञानी क्रिया करै फल सूनी, लगै न लेप निर्जरा दूनी ४२

ज्ञानीके अबंध और अज्ञानी के बंधपर कोटक का दृष्टान्त ।

बंधे कर्म सों मूढ़ ज्यों, पाट कीट तन पेम ।
खुलै कर्म सों समकिती, गोरखधन्धा जेम ॥४३

ज्ञानी जीव कर्मके कर्त्ता नहीं है । सवैया तेईसा ।

जे निज पूरव कर्म उदै सुख भुंजत भोग उदास रहैंगे । जो दुख में न विलाप करैं निरवैर हिए तन ताप सहैंगे । है जिन के दृढ़ आतम ज्ञान क्रिया करिके फल को न चहैंगे । ते सुविचच्छन ज्ञायक हैं तिनको कर्त्ता हम तो न कहैंगे ॥४४

ज्ञानी का विचार । सवैया एकतीसा ।

जिनकी सुदृष्टि में अनिष्ट इष्ट दोऊ सम, जिनको अचार सुविचार सुभ ध्यान है । स्वारथ को त्यागी जे लगे हैं परमारथ को, जिनके बनिज में न नफा है न ज्यान है ॥ जिनकी समुझ में शरीर ऐसो मानियतु, धान को सो छीलक कृपान को सो म्यान है । पारखी पदारथ के साखी भ्रम भारत के, तेई साधु तिनही को जथारथ ज्ञान है ॥४५

ज्ञानी की निर्भयता । सवैया एकतीसा ।

जमकीसी भ्राता दुःखदाता है असाता कर्म, ताके उदै मूरख न साहस गहतु हैं । सुरग निवासी भूमिवासी

औ पातालवासी, सवही को तन मन कांपत रहतु है ॥ उरको उजारो न्यारो देखिये सपत भयसों, डोलतु निशंक भयो आनन्द लहतु है । सहज सुवीर जाको शरीर सासतौ ऐसो, ज्ञानी जीव आरज अचारज कहतु है ॥ ४६

सप्तभय के नाम । दोहा ।

इहभव भय परलोक भय, मरन वेदना जात ।
अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥४७

सप्तभय के पृथक २ स्वरूप । सवैया इकतीसा ।

दसधा परिग्रह वियोग चिंता इह भव, दुर्गति-गमन भय परलोक, मानिये । प्राननिको हरन मरन भै कहावै सोई, रोगादिक कष्ट यह वेदना वखानिये ॥ रक्षक हमारो कोऊ नांही अनरक्षा भय, चौर भै विचार अनगुप्त मन आनिये । अनचिंत्यो अबहि अचानक कहांधों होइ,ऐसो भय अकस्मात जगत में जानिये ॥ ४८

इस भव के भय निवारण का उपाय । छप्पय छन्द ।

नख शिख मित परवान, ज्ञान अवगाह निरक्खत । आतम अंग अभंग संग,परधन इम अक्खत ॥ छिन भंगुर संसार,विभव परिवार भार जसु । जहाँ उतपति तहाँ प्रलय, जासु संयोग विरह तसु । परिग्रह प्रपंच परगट परखि, इह भव भय उपजै न चित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज,

ज्ञानरूप निरखंत नित ॥४९

परभव का भय निवारण करने का उपाय । छप्पय छन्द ।

ज्ञान चक्र मम लोक, जासु अवलोक मोख सुख । इतरलोक मम नाहिं, नाहिं जिस मांहि दोष दुख ॥ पुन्न सुगति दातार, पाप दुरगति पद दायक । दोऊ खंडित खानि, मैं अखंडित शिवनायक ॥ इह विधि विचार परलोक भय, नहिं व्यापक वरते सुखित । ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥५०

मरण का भय निवारण करने का उपाय । छप्पय छंद ।

फरस जीभ नासिका, नैन अरु श्रवन अच्छ इति । मन वच तन बल तीन, सास उस्सास आउ थित ॥ ए दस प्राण विनाश, ताहि जग मरण कहीजे । ज्ञान प्राण संयुक्त, जीव तिहु काल न छीजे ॥ यह चित करत नहिं मरण भय, नय प्रमाण जिनवर कथित । ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥५१

वेदना का भय निवारण करने का उपाय । छंद

वेदनवारो जीव जांहि वेदंत सोउ जिय । यह वेदना अभंग, सु तो मम अङ्ग नांहि थिय ॥ करम वेदना द्विविध एक सुखमय दुतिय दुख । दोऊ मोह विकार, पुद्गलाकार बहिरमुख ॥ जब यह विवेक मनमहिं धरत, तब न वेदना

भय विदित । ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ।।५२

अनरक्षा का भय निवारण करने का उपाय । छप्पय छंद ।

जो स्ववस्तु सत्ता सरूप, जगमहि त्रिकाल गत । तासु विनास न होइ, सहज निहचै प्रमाण मत ।। सो मम आतम दरव, सरवथा नहिं सहाय धर । तिहिं कारन रक्षक न होइ, भक्षक न कोइ पर ।। जब यहि प्रकार निरधार किय, तब अनरक्षा भय नसित । ज्ञानीनिसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ।।५३

चोर भय निवारण करने का उपाय । छप्पय छंद ।

परमरूप परतक्ष,जासु लक्षन चिन मण्डित । पर प्रवेश तहाँ नांहि, मांहि महि अगम अखंडित ।। सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अटूट धन । ताहि चोर किम गहै, ठौर नहिं लहै और जन ।। चितवंत एम धरि ध्यान जब, तब अगुप्तभय उपसमित । ज्ञानी निशङ्क निकलङ्क निज, ज्ञान रूप निरखंत नित ।।५४

अकस्मात भय निवारण करने का उपाय ।

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सु समृद्ध सिद्ध सम । अलख अनादि अनंत अतुल अविचल सरूप मम । चिद्-विलास परगास, वीत विकलप सुख-थानक । जहां दुविधा

नहिं कोइ, होइ तहां कछु न अचानक ॥ जब यह विचार उपजंत तब, अकस्मात भय नहिं उदित । ज्ञानी निसंक निकलङ्क निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥५५

सम्यग्दर्शनधारी को नमस्कार । छप्पय छंद ।

जो पगुन त्यागंत, शुद्ध निजगुन गहन्त ध्रुव । विमल ज्ञान अंकूर, जासु घट महि प्रकाश हुव ॥ जो पूरव कृत-कर्म, निर्जरा धार बहावत । जो नव बंध निरोध, मोख मारग मुख धावत ॥ निःशंकतादि जस अष्टगुन, अष्टकर्म अरि संहरत । सो पुरुषविचच्छण तासु पद, बनारसी वन्दन करत ।

सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगों के नाम । सोरठा ।

प्रथम निसंसै जानि, दुतिय अवांछित परिनमन ।
तृतिय अङ्ग अगिलानि, निर्मलदृष्टि चतुर्थ गुन ॥५७
पंच अकथ परदोष, थिरीकरन छट्टम सहज ।
सप्तम वच्छलपोष, अष्टम अङ्ग प्रभावना ॥५८

सम्यक्त्व के आठ अंगों का स्वरूप । सवैया इकतीसा ।

धर्ममें न संसै शुभकर्म फलकी न इच्छा, अशुभ कौं देखि न गिलानि आनै चित में । सांची दृष्टि राखै काहू प्रानीको न दोष भाखै, चंचलता भानि थिति ठानै बोध चित में ॥ प्यार निजरूपसौं उछाहकी तरंग उठै, एई आठों अंग जब जागै समकित में । ताहि समकितकौं धरै सो समकित

वत, वहै मोख पावे जो न आवै फिर इत में ॥५६

चैतन्य नट का नाटक। सवैया इकतीसा।

पूर्व बंध नासै सोतो संगीत कला प्रकाशे, नव बंध रुधि ताल तोरत उछरिके। निसंकित आदि अष्ट अङ्ग संग सखा जोरि, समता अलाप चारी करे सुख भरिके॥ निरजरा नाद गाजे ध्यान मिरदिंग बाजे, छक्यो महानंद में समाधि रीझि करिके। सत्तारंग भूमि में मुकत भयो तिहूँकाल, नाचे शुद्ध दृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके ॥६१

इति नाटक समयसार विषे निर्जरा द्वार संपूर्ण।

बन्ध द्वार।

प्रतिज्ञा। दोहा।

कहो निर्जरा की कथा, शिवपथ साधन हार।
अब कछु बंध प्रबंध को, कहूँ अल्प विस्तार ॥ १

मंगलाचरण। सवैया इकतीसा।

मोह मद पाइ जिनि संसारी विकल कीने, याहीते अजानुबाहु विरद वहतु है। ऐसो बंध वीर विकराल महाजाल सम, ज्ञान मंद करे चंद राहु ज्यों गहतु है॥ ताको बल भंजिवेकों घटमें प्रगट भयो, उद्धत उदार जाको उद्यम

महतु है । सो है समकित सूर आनंद अंकूर ताहि,
निरखि बनारसी नमो नमो कहतु है ॥ २

ज्ञान चेतना और कर्म चेतना का वर्णन । सवैया इकतीसा ।

जहां परमातम कला को परगास तहां, धरम धरा में
सत्य सूरजको धूप है । जहां शुभ अशुभ करम को गढास
तहां, मोहके विलास में महा अन्धेर कूप है । फैली फिरै
घटासी छटासी घन घटा बीच, चेतन की चेतना दुहोंधा
गुपचूप है । बुद्धिसों न गही जाय बैनसों न कही जाय,
पानी की तरंग जैसे पानी में गुडूप है ॥ ३

कर्म बंध का कारण अशुद्ध उपयोग है । सवैया इकतीसा ।

कर्म जाल वर्गनासों जग में न बंधे जीव, बंधे न
कदापि मन वच काय जोगसों । चेतन अचेतन की हिंसा
सों न बंधे जीव, बंधे न अलख पंच विषै विष रोगसों ॥
कर्मसों अबंध सिद्ध जोगसों अबंध जिन, हिंसासों अबंध
साधु ज्ञाता विषै भोगसों । इत्यादिक वस्तुके मिलापसों न
बंधे जीव, बंधे एक रागादि अशुद्ध उपजोगसों ॥ ४

सवैया इकतीसा ।

कर्म जाल वर्गनाको वास लोकाकाश माहिं, मन वच
काय को निवास गति आउ में । चेतन अचेतन की हिंसा
बसै पुद्गल में, विषै भोग वरते उदैके उरझाउ में । राग

दिक शुद्धता अशुद्धता है अलखकी,यहै उपादान हेतु वंध के वढाउ में । याहिते विचच्छन अवन्ध कह्यो तिहूँ काल, रागदोष मोह नाहीं सम्यक सुभाउ में ।। ५

यद्यपि ज्ञानी अवन्ध है तो भी पुरुपार्थ करते हैं ।

कर्मजाल-जोग हिंसा भोगसों न वंधै पैं,तथापि ज्ञाता उद्यमी वखान्यो जिन वैन में । ज्ञान-दृष्टि देतु विषै-भोग-निसों हेतु दोऊ, क्रिया एक खेत यों तौ वनै नांहि जैन में ।। उदै वल उद्यम गहै पै फलकौं न चहे, निरदै दसा न होइ हिरदय के नैनमें । आलस निरुद्यम की भूमिका मिथ्यात माहिं,जहाँ न संभारे जीव मोह नींद सैनमें ।।६

उदय की प्रवलता । दोहा ।

जब जाकौ जैसो उदै, तव सो है तिहि थान ।
सकती मरोरै जीव की, उदै महा वलवान ।। ७

उदय की पवित्रता पर दृष्टान्त । सवैया इकतीसा ।

जैसे गजराज पर्यौ कर्दम के कुण्ड वीच, उद्यम अहूटै पैं न छूटै दुख दन्दसों । जैसे लोह-कंटककी कोरसों उरभ्यो मीन, चेतन असाता लहै साता लहै संदसों ।। जैसे महाताप सिर वाहिसों गरास्यो नर, तकै निज काज उठि सकै न सुछंदसों । तैसे ज्ञानवंत सव जानै न वसाइ कछू, वंध्यो फिरै पूरव करम फल फंदसों ।। ८

मोक्षमार्ग में अज्ञानी जीव पुरुषार्थहीन और ज्ञानी पुरुषार्थी होते हैं। चौपाई।

जे जिय मोह नींद में सोवैं, ते आलसी निरुद्यमि होवैं।
दृष्टि खोलिजे जगे प्रवीना, तिन आलस तजि उद्यम कीना।९

ज्ञानी और अज्ञानी की परणतिपर दृष्टान्त।

कांच बांधै सिरसों सुमनि बांधै पायनिसों, जानैं न गंवार कैसी मनि कैसो कांच है। यों ही मूढ़ झूठ में मगन झूठहीकों दौरे, झूठा बात मानैं पैं न जानैं कहा सांच है॥ मनिको परखि जानैं जौंहरी जगत मांहि, सांचकी समुझि ज्ञान लोचनकी जांच है। जहांको जु वासी सो तो तहांको मरम जानै, जाको जैसो स्वांग, ताको तैसे रूप नांच है॥१०

जैसी क्रिया तैसा फल। दोहा।

बंध बढ़ावै अंध ह्वै, ते आलसी अजान।
मुक्ति हेतु करनी करैं, ते नर उद्यमवान॥ ११

जब तक ज्ञान है तब तक वैराग्य है। सवैया इकतीसा।

जब लगु जीव शुद्ध वस्तुको विचारै ध्यावै, तब लगु भोगसों उदासी सरवंग है। भोग में मगन तब ज्ञान की जगन नाहिं, भोग अभिलाषकी दशा मिथ्यातअंग है॥ तातैं विषै भोगमें मगन सो मिथ्याती जीव, भोगसों उदासि सो सम-किती अभंग है। ऐसे जानि भोगसों उदासि ह्वै मुकति

साधौ, यहै मन चंग तो कठोती मांहि गंग है ॥ १२

चार पुरुपार्थ । दोहा ।

धरम अरथ अरु काम शिव, पुरुपारथ चतुरंग ।
कुधी कलपना गहि रहै, सुधी गहै सरवंग ॥ १३

चार पुरुषार्थों पर ज्ञानी और अज्ञानी का विचार ।

कुलकौ आचार ताहि मूरख धरम कहै, पंडित धरम कहै वस्तु के सुभाव को । खेह को खजानो ताहि अज्ञानी अरथ कहै, ज्ञानी कहैं अरथ दरव दरसाउ को ॥ दंपति को भोग ताहि दुरबुद्धि काम कहै, सुधी काम कहै अभिलाप चित चाउको, इन्द्रलोक थान को अजान लोक कहै मोक्ष, मतिमान मोक्ष कहै बंध के अभाउ को ॥ १४

आत्मा ही में चारों पुरुपार्थ हैं । सवैया इकतीसा ।

धरम को साधन जु वस्तु को सुभाउ साधै, अरथ को साधन विलेछ दर्व पट में । यहै काम साधना जु संग्रहै निरास पद, सहज स्वरूप मोख शुद्धता प्रगट में ॥ अंतर सुदृष्टि सों निरंतर विलोक बुध, धरम अरथ काम मोक्ष निज घट में । साधन आराधन की सोंज रहै जाके संग, भूलो फिरै मूरख मिथ्यात की अलट में ॥ १५

वस्तु का सत्य स्वरूप और मूर्ख का विचार ।

तिहूँ लोक माँही तिहूँ काल सब जीवनि कों, पूरब

करम उदै आइ रस देतु है। कोउ दीर्घाउ धरै कोउ अलपाउ मरै, कोउ दुखी कोउ सुखी कोउ समचेतु है॥ याहि मैं जिवायो याहि मार्यो याहि सुखी कर्यो, दुखी कर्यो ऐसी मूढ़ आपु मानि लेतु है। यही अहंबुद्धि सौं न विनसै भरम भूल, यहै मिथ्या धरम करम बंध-हेतु है१६

सवैया इकतीसा।

जहांलौं जगत के निवासी जीव जगत में, सबै असहाय कोउ काहु कौ न धनी है। जैसी२ पूरब करम सत्ता बांधि जिन, तैसी तैसी उदै में अवस्था आइ बनी है॥ एते परि जो कोउ कहै कि मैं जिवावौं मारौं, इत्यादि अनेक विकलप घात घनी है। सो तो अहंबुद्धिसौं विकल भयो तिहूं काल, डोले निज आतम सकति तिन हनी है॥ १७

उत्तम, मध्यम, अधम और अधमाधम जीवों का स्वभाव।

उत्तम पुरुष की दसा ज्यों किसमिस दाख, बाहिज अभिंतर विरागी मृदु अंग है। मध्यम पुरुष नारियर कैसी भांति लिये, बाहिज कठिन हिय कोमल तरंग है॥ अधम पुरुष बदरीफल समान जाके, बाहिरसौं दिसै नरमाइ दिल संग है। अधमसौं अधम पुरुष पूंगीफल सम, अंतरङ्ग बाहिर कठोर सरवंग है॥ १८

उत्तम पुरुष का स्वभाव । सवैया इकतीसा ।

कीच सौ कनक जाके नीच सो नरेश पद, मीचसी मिताई गरवाई जाके गारसी । जहरसी जोग जाति कहरसी करामाति, हहरसी हौस पुद्गल छवि छारसी ॥ जालसौ जग विलास भालसो भुवनवास, काल सो कुटुम्ब काज लोक लाज लारसी । सीठ सो सुजस जानै वीठसो वखत मानै ऐसे जाकी रीति ताहि वंदत बनारसी ॥ १९

मध्यम पुरुषका स्वभाव । सवैया इकतीसा ।

जैसे कोउ सुभट सुभाव ठग मूर लाय, चेरा भयो ठगनी के घेरा में रहतु है । ठगोरि उतरि गई तब ताहि सुधि भई, पर्यो परवस नाना संकट सहतु है ॥ तैसे ही अनादि को मिथ्याती जीव जगत में, डोलै आठों जाम विसराम न गहतु है । ज्ञान-कला भासी भयो अन्तर उदासी पै तथापि उदै व्याधिसों समाधि न लहतु है ॥२०

अधम पुरुषका स्वभाव । सवैया इकतीसा ।

जैसें रंक पुरुष के भाये कानी कौड़ी धन, उलूवाके भाये जैंसे संभाई विहान हैं । कूकरके भाये ज्यों पिंडौर जिरवानी मठा, सूकरके भाये ज्यों पुरीष पकवान है ॥ वायसके भाये जैंसे नींव की निवोरी दाख, बालकके भाये दंत कथा ज्यों पुरान है । हिंसक के भाये जैंसे हिंसा में

धरम तैसे, मूरख के भाये सुभ बंध निरवान है ॥२१

अधमाधम पुरुष का स्वभाव। सवैया इकतीसा।

कुंजरकों देखि जैसे रोष करि भूंसे स्वान, रोष करै निर्धन विलोकि धनवंतकों। रैन के जगैया कों विलोकि चोर रोष करैं, मिथ्यामति रोष करैं सुनत सिद्धन्तकों॥ हंसको विलोकि जैसे काग मन रोष करे, अभिमानी रोष करैं देखत महंतकों। सुकविकों देखि ज्यों कुकवि मन रोष करैं, त्योंहि दुरजन रोष करैं देखि संतकों॥ २२

सवैया इकतीसा।

सरल कों सठ कहैं वकताको धीठ कहैं, विनै करै तासों कहै धनीको अधीन है। छमीको निबल कहैं दमीको अदत्ती कहैं, मधुर वचन बोलै तासों कहैं दीन है॥ धरमी कों दंभी निसप्रेही कों गुमानी कहैं, तिसना घटावै तासों कहैं भागहीन है। जहां साधु गुण देखै तिनकों लगावै दोष, ऐसो कछु दुर्जन को हिरदै मलीन है॥ २३

मिथ्यादृष्टि की अहंबुद्धि का वर्णन। चौपाई।

मैं करता मैं कीन्ही कैसी, अब यों करों कहो जो ऐसी। ए विपरीत भाव है जामैं, सो बरतै मिथ्यात दसा मैं २४

। दोहा।

अहंबुद्धि मिथ्या दसा, धरै सो मिथ्यावन्त।

विकल भयो संसार में,करै विलाप अनन्त ॥२५

मूढ़ मनुष्य विषयों से विरक्त नहीं होते ।

रवि के उदोत अस्त होत दिन २ प्रति, अंजुली के जीवन ज्यों जीवन घटतु है । काल के ग्रसत छिन छिन होत छीन तन, आरे के चलत मानो काठसो कटतु है ॥ एते परि मूरख न खोजे परमार्थ कों, स्वारथ के हेतु भ्रम भारत ठटतु है ; लग्यो फिरे रोगनिसों पग्यो परे लोगनिसों, विषै रस भोगनिसों नेकु न हटतु है ॥ २६

अज्ञानी जीव की मूढ़ता पर मृग जल और अन्धे का दृष्टान्त ।

जैसें मृग मत्त वृषादित्य की तपति मांहि, तृषावन्त मृषा जल कारण अटतु है । तैसे भववासी माया ही सों हित मानि मानि,ठानि ठानि भ्रम भूमि नाटक नटतु है ॥ आगे कों ढुकत धाय पीछे बछरा चवाय, जैसे दृगहीन नर जेवरी वटतु है ॥ तैसे मूढ़ चेतन सुकृत करतूति करै, रोवत हंसत फल खोवत खटतु है ॥ २७

अज्ञानी जीव बन्धन से न सुलझ सकने पर दृष्टान्त ।

लिये दृढ़ पेच फिरै लोटन कबूतर सौ,उलटौ अनादि को न कहूँ सुलटतु है । जाकौ फल दुःख ताही साता सो कहत सुख, सहत लपेटी असि-धारासी चटतु है ॥ ऐसे मूढ़जन निज संपती न लखै क्योंही,योंही मेरी मेरी निशि

वासर रटतु है। याही ममता सों परमारथ विनसि जाइ, काँजी को परस पाइ दूध ज्यों फटतु है॥ २८

अज्ञानी जीव की अहं बुद्धि पर दृष्टान्त।

रूप की न झाँक हिये करम को डांक पिये, ज्ञान दबि रह्यो मिरगांक जैसे घन में। लोचन की ढांक सो न मानै सदगुरु हांक, डोलै पराधीन मूढ़ रांक तिहूं पन में॥ टांक इक मांस की डली सी तामें तीन फांक, तीनि कोसो अंक लिखि राख्यो काहु तन में। तासों कहै नाक ताके राखिवेको करै कांक, लांकसो खरग बाँधि बांक धरै मनमें॥२९

अज्ञानी की विषयासक्तता पर दृष्टान्त। सवैया इकतीसा।

जैसे कोउ कूकर छुधित सूके हाड़ चावै, हाड़निकी कोर चिहुँ ओर चुभै मुख में। गाल तालू रसना मसूढ़नि को मांस फाटै, चाटै निज रुधिर मगन स्वाद सुख में॥ तैसे मूढ़ विषयी पुरुष रति रीत ठानै, तामें चित सानै हित मानै खेद दुख में। देखै परतछ बल हानि मल मूत खानि, गहै न गिलानि पगि रहै राग रुख में॥ ३०

जो निर्मोही हैं वह साधु हैं। अडिल्ल छंद।

सदा करमसों भिन्न, सहज चेतन कह्यो। मोह विकलता मानि मिथ्याती ह्वै रह्यो। करै विकल्प अनन्त, अहंमति धारिकै। सो मुनि जो थिर होइ, ममत्व निवारिकै॥ ३१

सवैया इकतीसा ।

असंख्यात लोक परवान जो मिथ्यात भाव, तेइ व्यवहार भाव केवली उकत है । जिन्हके मिथ्यात गयो सम्यक दरस भयो,ते नियत लीन विवहार सों मुकत है ॥ निरविकलप निरुपाधि आतमा समाधि, साधि जे सगुन मोक्ष पंथकों ढुकत है । तेई जीव परम दशा में थिर रूप ह्वै के, धरम में ढुके न करमसौं रुकत है ॥ ३२

शिष्य का प्रश्न । कवित्त छंद ।

जे जे मोह करम की परनति, बंध निदान कही तुम सव्व । संतत भिन्न शुद्ध चेतन सों, तिन्हि को मूल हेतु कहूँ अव्व ॥ कै यह सहज जीव को कौतुक, कै निमित्त है पुद्गल दव्व । सीस नवाइ शिष्य इम पूछत, कहै सुगुरु उत्तर सुनु भव्व ॥ ३३

शंका का समाधान । सवैया इकतीसा ।

जैसे नाना वरन पुरी बनाइ दीजै हेठि, उज्वल विमल मनु सूरज करांति है । उज्वलता भासै जब वस्तुको विचार कीजै, पुरीकी झलकसों वरन भांति भांति है ॥ तैसे जीव दरबकौं पुग्गल निमित्त रूप, ताकी ममता सों मोह मदिरा की भाँति है । भेद ज्ञान दृष्टिसों सुभाव साधि लीजे तहाँ, साँचि शुद्ध चेतना अवाची सुख शाँति है ॥३४

सवैया इकतीसा।

जैसे महिमंडलमें नदीको प्रवाह एक, ताहीमें अनेक भांति नीरकी ढरनि है। पाथरको जोर तहां धारकी मरोरि होति, कांकरिकी खानि तहां झागकी झरनि है॥ पौन की झकोर तहां चंचल तरंग उठे, भूमिकी निचानि तहां भौंर-की परनि है। तैसे एक आतमा अनंत रस पुद्गल, दुहूकी संयोगमें विभावकी भरनि है ॥३५

जड़ चेतन्य की पृथकता। दोहा।

चेतन लछन आतमा, जड़लछन तन जाल।
तनकी ममता त्यागिके, लीजे चेतन चाल ॥३६

आत्मा की शुद्ध परिणति। सवैया तेईसा।

जो जग की करनी सब ठानत, जो जग जानत जोवत जोई। देह प्रमान पै देहसों दूसरो, देह अचेतन चेतन सोई॥ देह धरे प्रभु देहसों भिन्न, रहे परछन्न लखे नहि कोई। लखन वेदि विचखन बूझत, अखनिसों परतख न होई ॥३७

शरीर की अवस्था। सवैया तेईसा।

देह अचेतन प्रेत दरी रज, रेत भरी मल खेत की क्यारी। व्याधिकी पोट अराधिकी ओट, उपाधिकी जोट समाधिसों न्यारी॥ रे जिय देह करै सुखहानि, इते पर तोहि लागत प्यारी। देह तो तोहि तजैगि निदान पै, तूहि

तजे क्युं न देह की यारी ॥३८

दोहा ।

सुनु प्रानी सद्गुरु कहै, देह खेह की खानि ।
धरैं सहज दुख दोप कों, करै मोक्ष की हानि ॥३९

सवैया तेईसा ।

रेत की सी गढ़ी किधों मढ़ी है मसान के सी,अन्दर अंधेरी जैसी कन्दरा है सैल की । ऊपर की चमक दमक पट भूपन की, धोखे लागे भली जैसी कली है कनैलकी ॥ औगुन की ओंडी महा भोंडी मोहकी कनौंडी, माया की मसूरति है मूरति है मैल की । ऐसी देह याहि के सनेह याकी संगति सों, व्है रही हमारी मति कोल्हू के से वैल की ॥४०

सवैया इकतीसा ।

ठौर ठौर रकत के कुंड केसनि के झुंड,हाड़नि सों भरी जैसे थरी है चुरैल की । थारे से धकाके लगे ऐसे फट जाय मानो,कागदकी पुरी किधों चादर है चैलकी ॥ सूचे भ्रम वानि ठानि मूढ़नि सों पहिचानि, करै सुख हानि अरु खानि वदफैल की । ऐसी देह याहि के सनेह याकी संगति सों,व्है रही हमारी गति कोल्हूकेसे वैलकी ॥

संसारी जीवोंकी दशा कोल्हू के वैलके समान है ।

पाटी वंधे लोचन सों संकुचे दवोचनि सों कोचनि को

सोच सो न वेदै खेद तन को। धाइवो ही धंधा अरु कंधा माहि लग्यो जोत, बार बार आर सहै कायर ह्वै मनको। भूख सहै प्यास सहै दुर्जन को त्रास सहै, थिरता न गहै न उसास लहै छिन को। पराधीन घूमै जैसो कोल्हू को कमेरो बैल,तैसो ही स्वभाव भया जगवासी जनको ॥४२

संसारी जीव की हालत । सवैया इकतीसा ।

जगत में डोलै जगवासी नर रूप धरैं, प्रेत कैसे दीप किधौं रेत कैसे थूहे हैं। दीसें पट भूषन आडंबरसौं नीके फिरि, फीके छिन मांझि सांझ अम्बर ज्यौं सूहे हैं॥ मोहके अनल दगे माया की मनी सौं पगे, डाभ की अनी सौं लगे ओस कैसे फूहे हैं। धरम की बूझ नाहिं उरझे भरम माहिं, नाचि २ मर जाइ मरी के से चूहे हैं॥ ४३

धन सम्पत्ति से मोह हटाने का उपदेश । सवैया इकतीसा ।

जासौं तू कहत यह सम्पदा हमारी सो तो, साधनि अडारी ऐसे जैसे नाक सिनकी । जासौं तू कहत हम पुन्य जोग पाई सो तो, नरक की साई है बड़ाई डेढ़ दिन की॥ घेरा मांहि पर्यो तूं विचारै सुख आंखिनि को, माखिन के चूंटत मिठाई जैसे भिनकी। एते परि होहि न उदासी जगवासी जीव, जग में असाता है न साता एक छिन की ॥४४

लौकिक जनों से मोह हटाने का उपदेश। दोहा।

यह जगवासी यह जगत, इनसों तोहि न काज।
तेरे घट में जग वसे, तामें तेरो राज ॥४५

शरीर में त्रिलोक के विलास गर्भित हैं। सवैया इकतीसा।

याही नर पिंड में विराजै त्रिभुवन थिति, याहि में त्रिविध परिणाम रूप सृष्टि है। याहि में करमकी उपाधि दुःख दावानल, याहिमें समाधि सुख वारिदकी वृष्टि है॥ यामें करतार करतूति याहि में विभूति, यामें भोग याहि में वियोग यामें घृष्टि है। याहि में विलास सब गर्भित गुपतरूप, ताहि कों प्रगट जाके अन्तर सुदृष्टि है॥ ४६

आतमविलास जानने का उपदेश। सवैया तेईसा।

रे रुचिवंत पचारि कहै गुरु, तू अपनो पद बूझत नाँही। खोज हिये निज चेतन लच्छन. है निज में निज गूझत नाहीं॥ सिद्ध सुछंद सदा अति उज्जल, माया के फंद अरूझत नाँही। तोर सरूप न दुंदकी दोहि में, तोहि में है ताहि सूझत नाँहीं॥

आत्मस्वरूप की पहिचान ज्ञान से होती है। सवैया तेईसा।

केई उदास रहैं प्रभु कारन, केई कहैं उठि जाँहि कहीं के। केई प्रनाम करैं गढ़ि मूरति, केई पहार चढ़े चढ़ छींके॥ केई कहें असमान के ऊपरि, केई कहें प्रभु हेटि जमीके।

मेरो धनी नहिं दूर दिशन्तर, मोहिमें है मोहि सूझत नीके।

दोहा

कहै सुगुरु जो समकिती, परम उदासी होइ।
सुथिर चित्त अनुभौ करै, प्रभु पद परसै सोइ॥ ४९

मन की चंचलता। सवैया इकतीसा।

छिन में प्रवीन छिन ही में मायासों मलीन, छिनक में दीन छिन मांहि जैसो शक्र है। लिये दौर धूप छिन छिन में अनंतरूप, कोलाहल ठानत मथानकोसो तक्र है॥ नट कोसो थार किधौं हार है रहटकोसो, नदी कोसो भौंर कि कुंभार कोसो चक्र है। ऐसो मन भ्रामक सुथिर आजु कैसे होइ, औरही को चंचल अनादि ही को वक्र है॥५०

मन की चंचलता पर ज्ञान का प्रभाव। सवैया इकतीसा।

धायो सदा कालपै न पायो कहूं सांचो सुख रूपसों विमुख दुख-कूपवास वसा है। धरम को घाती अधरम को संघाती महा, कुरापाती जाकी सन्निपात कीसी दसा है॥ माया को झपटि गहै कायासों लपटि रहै, भूल्यो भ्रम भीर में बहीर कोसो ससा है। ऐसो मन चंचल पताका कोसो अंचल सु, ज्ञान के जगे में निरवान पथ धसा है॥५१

मन की स्थिरता का उपाय। दोहा।

जो मन विषय कषाय में, बरतै चंचल सोइ।

जो मन ध्यान विचारसों,रुके सुअविचल होइ ।।५२

ताते विषय कषायसों, फेरि सुमन की वानि ।
शुद्धातम अनुभौ विषे, कीजे अविचल आनि ॥५३

आत्मानुभव करने का उपदेश । सवैया इकतीसा ।

अलख अमूरति अरूपी अविनासी अज, निराधार निगम निरंजन निरंध है । नाना रूप भेष धरे भेष को न लेस धरे, चेतन प्रदेस धरे चेतना को खंध है ।। मोह धरे मोही सो विराजै तोमें तोहीसो, न मोहीसो न तोही सौं न रागी निरबंध है । ऐसो चिदानन्द याही घट में निकट तेरे, ताहि तूं विचार मन और सब धंध है ।।५४

आत्मानुभव करने की विधि । सवैया इकतीसा ।

प्रथम सु दृष्टिसों सरीर रूप कीजे भिन्न, तामें और सूछम शरीर भिन्न मानिये । अष्ट कर्म भाव की उपाधि सोई कीजे भिन्न,ताहु में सुबुद्धि को विलास भिन्न जानिये ।। तामें प्रभु चेतन विराजित अखंड रूप, वहे श्रुत ज्ञान के प्रवान ठीक आनिये । वाही को विचार करि वाहिमें गमन हुजे, वाको पद साधिवेकों ऐसी विधि ठानिये ।। ५५

आत्मानुभव से कर्म बंध नहीं होता । चौपाई ।

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने,रागादिक निजरूप न माने ।
तातें ज्ञानवंत जग माँही, करम बंध को करता नाहीं ।।५६

भेद-ज्ञानी की क्रिया। सवैया इकतीसा।

ज्ञानी-भेद ज्ञानसों बिलेछि पुद्गल कर्म, आतमा के धर्मसों निरालो करि मानतो। ताको मूल कारण अशुद्ध राग भाव ताके, नासिवेको शुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतो॥ याही अनुक्रम पररूप भिन्न बंध त्यागि, आपु मांहि अपनो सुभाउ गहि आनतो। साधि शिवचाल निरबंध होत तिहूं काल केवल विलोक पाइ लोकालोक जानतो॥ ५७

भेद ज्ञानी का पराक्रम। सवैया इकतीसा।

जैसे कोउ हिंसक अजान महा बलवान, खोदि मूल विरख उखारे गहि बाहूसों। तैसे मतिमान दर्व कर्म भाव कर्म त्यागि, ह्वै रहै अतीत मति ज्ञानकी दसाहूसों॥ याहि क्रिया अनुसार मिटै मोह अन्धकार, जगै ज्योति केवल प्रधान सविताहू सों। चुकै न सकति सों लुकै न पुद्गल मांहि, धुकै मोख थलकों रुकै न फिरि काहूसों॥ ५८

इति नाटक समयसार विषे का बंध द्वार समाप्त।

मोक्ष द्वार ।

प्रतिज्ञा । दोहा ।

बंध द्वार पूरन भयो, जो दुख दोष निदान ।
अब बरनौं संक्षेप सौं, मोक्ष द्वार सुख खान ॥ १

मंगलाचरण । सवैया इकतीसा ।

भेद ज्ञान आरासौं दुफारा करे ज्ञानी जीव, आतम करम धारा भिन्न २ चरचै । अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै, करम भरम को खजानो खोलि खरिचै ॥ योंही मोख मुख धावै केवल निकट आवै, पूरन समाधि लहैं पूरनके परचै । भयो निरदौर याहि करनौ न कछु और, ऐसो विश्वनाथ ताहि बनारसी अरचै ॥ २

सम्यग्ज्ञान से आत्मा की सिद्धि होती है । सवैया इकतीसा ।

काहू एक जैनी सावधान ह्वै परम पैनी, ऐसी बुद्धि छेनी घट माँहि डारि दीनी है । पैठी नोकरम भेदि दरब करम छेदि, सुभाउ विभाव ताकी संधि सोधि लीनी है ॥ तहां मध्य पाती होइ लखी तिन्हि धारा दोइ, एक मुधामई एक सुधारस भीनी है । मुधासौं विरचि सुधासिन्धु में मगन भई, एती सब क्रिया एक समैं बीच कीनी है ॥ ३

दोहा ।

जैसी छैनी लोह की, करै एकसौं दोइ ।
जड़ चेतन की भिन्नता, त्यों सुबुद्धिसों होइ ॥ ४

सुबुद्धि का विलास । सवैया इकतीसा ।

धरति धरम फल हरति करम मल, मन वच तन बल करति समरपन । भखति असन सित चखति रसन रित, लखति अमित वित करि चित दरपन ॥ कहति मरम धुर दहति भरमपुर, गहति परमगुर उर उपसरपन । रहति जगति हित लहति भगति रति, चहति अगतिगति यह मति परपन ॥

सम्यग्ज्ञान का महत्व । सवैया इकतीसा ।

रानाकोसो बाना लीने आपा साधे थाना चीने, दाना अंगी नाना रंगी खाना जंगी जोधा है । माया बेली जेती तेती रेतेमें धारेती सेती, फंदाहीको कंदा खोदे खेतीकोसो जोधा है ॥ बाधासेती हांता लोरे राधासेती तांता जोरे, बांदीसेती नाता तोरे चांदीकोसो सोधा है । जाने जाही ताही नीके माने राही पाही पीके, ठाने बातें डाही ऐसो धारावाही बोधा है ॥ ६

ज्ञानी जीव ही चक्रवर्ती है ।

जिनके दरब मिति साधत छखंड थिति, बिनसै विभाव अरि पंकति पतन है । जिनके भगतिको विधान

एई नौ निधान, त्रिगुनके भेद मानौ चौदह रतन हैं॥ जिन्हि-के सुबुद्धि रानी चूरै महा मोह वज्र, पूरै मंगलीक जे जे मोखके जतन हैं। जिन्हके प्रमान अंग सोहै चमू चतुरंग तेई चक्रवर्ती तनु धरैं पै अतन हैं॥ ७

नव भक्ति के नाम।

श्रवन कीरतन चिंतवन, सेवन वंदन ध्यान।
लघुता समता एकता, नौधा भक्ति प्रमान॥ ८

ज्ञानी जीवों का मन्तव्य

कोई अनुभवी जीव कहै मेरे अनुभौमें, लच्छन विभेद भिन्न करमकौ जाल है; जानै आप आपुको जु आपु करि आपु विषै, उतपति नास ध्रुव धारा असराल है॥ सारे विकलप मोसौं न्यारे सरवथा मेरो, निहचै सुभाउ यह विवहार चाल है। मैं तो शुद्ध चेतन अनंत चिनमुद्रा धारी, प्रभुता हमारी एकरूप तिहुं काल है॥९

आत्मा के चेतन लक्षण का स्वरूप।

निराकार चेतना कहावै दरसन गुन, साकार चेतना शुद्ध ज्ञान गुण सार है। चेतना अद्वैत दोउ चेतना दरव मांहि, सामान विशेष सत्ता ही को विसतार है॥ कोऊ कहै चेतना चिहन नाहीं आत्मा में, चेतना के नास होत त्रिविधि विकार है। लच्छन कौ नास सत्ता नास मूल वस्तु

नास, तातें जीव दरव को चेतना आधार है ॥१०

चेतन लच्छन आतमा, आतम सत्ता मांहि।
सत्ता परिमित वस्तु है, भेद तिहूँ में नांहि ॥ ११

आत्मा नित्य है।

ज्यों कलधौत सुनारकि संगति, भूषन नांउ कहै सब कोई। कंचनता न मिटी तिहिं हेतु, वहै फिर औटि कै कंचन होई ॥ त्यों यह जीव अजीव संयोग, भयो बहुरूप भयो नहिं दोई। चेतनता न गई कबहू, तिहि कारन ब्रह्म कहावत सोई ॥१२

सुबुद्धि सखीको आत्मा स्वरूप समझाती है।

देखु सखी यह आपु बिराजत, याकि दसा सब याहिकु सोहै। एक में एक अनेक अनेक में, द्वंद लिये दुविधा महि दो है ॥ आपु संभारि लखै अपनो पद, आपु बिसारिकै आपुहि मोहै। व्यापक रूप यहै घट अंतर, ज्ञान में कौन अज्ञान में को है ॥१३

आत्मा अनुभवगम्य है।

ज्यों नट एक धरै बहु भेष, कला प्रगटै जग कौतुक देखै। आपु लखै अपनो करतूति, वहै नट भिन्न बिलोकत पेखै ॥ त्यों घट मैं नट चेतन राव, विभाउ दसा धरि रूप बिसेखै। खोलि सुदृष्टि लखै अपनो पद, दुन्द बिचार दसा

नहिं लेखै ॥१४

हेय उपदेय भावों पर उपदेश।

जाके चेतन भाव चिदातम सोइ है। और भाव जो धरे सु औरे कोइ है॥ यों चिनमंडित भाव उपादे जानते। त्याग जोग परभाव पराये मानते ॥१५

ज्ञानी जीव चाहे घरमें रहे चाहे वनमें, मोक्ष मार्ग में हैं।

जिन्हके सुमति जागी भोगसों भये विरागी, परसंग त्यागी जे पुरुष त्रिभुवनमें। रागादिक भावनिसों जिन्हकी रहनि न्यारी, कबहू मगन व्है न रहै धाम धन में॥ जे सदीव आपको विचारैं सरवंग सुद्ध, जिन्हके विकलता न व्यापै कहूँ मन में। तेई मोक्ष मारगके साधक कहावे जीव, भावै रहो मन्दिर में भावे रहो वन में ॥१६

मोक्षमार्गी जीवोंकी परिणति।

चेतन मंडित अंग अखंडित, शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो। राग विरोध विमोह दशा, समुझे भ्रम नाटक पुग्गल केरो॥ भोग संयोग वियोग व्यथा, अविलोकि कहै यह कर्मज घेरो। है जिन्हकों अनुभौ इहि भांति सदा तिन्हिकों परमारथ मेरो॥ १७

सम्यग्दृष्टि जीव साधु हैं और मिथ्यादृष्टि जीव चोर है।

जो पुमान परधन हरै, सो अपराधी अज्ञ।

जो अपनो धन विवहरै, सो धनपति धरमज्ञ ॥ १८

पर की संगति जो रचै, बंध बढ़ावै सोइ ।
जो निज सत्ता में मगन, सहज मुक्त सो होइ ॥ १९

द्रव्य और सत्ता का स्वभाव ।

उपजे विनसे थिर रहै, यह तो वस्तु बखान ।
जो मरजादा वस्तु की, सो सत्ता परवान ॥ २०

षट द्रव्य की सत्ता का स्वभाव ।

लोकालोक मान एक सत्ता है आकाश दर्व, धर्म दर्व एक सत्ता लोक परिमित है । लोक परवान एक सत्ता है अधर्म दर्व, काल के अणू असंख्य सत्ता अगनित है । पुदगल शुद्ध परवानकी अनन्त सत्ता, जीव की अनंत सत्ता न्यारी न्यारी थिति है । कोऊ सत्ता काहू सों न मिले एकमेक होइ, सबै असहाय यों अनादि ही की थिति है ।२१

छहों द्रव्य से ही जगत की उत्पत्ति है ।

एई छहों द्रव्य इनही को है जगत-जाल, तामें पांच जड़ एक चेतन सुजान है । काहू की अनन्त सत्ता काहू सों न मिलै कोइ, एक एक सत्ता में अनन्त गुन गान है । एक एक सत्ता में अनन्त परजाय फिरै, एक में अनेक इहि भांति परवान है । यहै स्यादवाद यहै संतन की मरजाद, यहै सुख पोष यहै मोख को निदान है ॥ २२

साधि दधि मन्थ में अराधि रस पन्थनि में, जहाँ तहाँ ग्रन्थनि में सत्त कौ ही सोर है । ज्ञान भानु सत्ता में सुधा निधान सत्ता ही में, सत्ता को दुरनि सांझि सत्ता मुख भोर है ।। सत्ता कौ सरूप मोख सत्ता भूले यही दोप, सत्ता के उलंघै धूम धाम चिहूँ ओर है । सत्ता की समाधि में विराजि रहे सोई साहु, सत्ता तें निकसि और गहै सोई चार है ।। २३

आतम सत्ता का अनुभव निर्विकल्प है । सवैया इकतीसा ।

जामें लोक वेद नांहि थापना उछेदि नांहि,पाप पुन्य खेद नांहि,क्रिया नाहीं करनी । जामें राग दोष नाहिं जामें बंध मोख नांहि, जामें प्रभु दास न अकास नाहीं धरनी ।। जामें कुल रीत नांहि जामें हार जीत नांहि, जामें गुरु शिप नांहि वीष नाँहि भरनी । आश्रम वरन नाँहि काहू की सरनि नांहि, ऐसी सुद्ध सत्ता की समाधि भूमि वरनी ।। २४

जो आतम सत्ता को नहीं पहचानता वह अपराधी है । दोहा ।

जाके घट समता नहीं, ममता मगन सदीव ।
रमता राम न जानई, सो अपराधी जीव ।। २५
अपराधी मिथ्यामती, निरदै हिरदै अंध ।
पर कों माने आतमा, करे करम को वंध ।। २६
झूठी करनी आचरे, झूठे सुख की आस ।

झूठी भगती हिय धरे, झूठो प्रभु को दास ॥ २७

मिथ्यात्व की विपरीत वृत्ति ।

माटी भूमी सैल की सुसंपदा बखाने निज, कर्म में अमृत जाने ज्ञान में जहर है । अपनो न रूप गहै औरही सों आपु कहै, साता सो समाधि जाके असाता कहर है ॥ कोप कौ कृपान लिये मान मद पान किये, माया की मरोर हिये लोभ की लहर है । याही भाँति चेतन अचेतनकी संगति सों, साँचसों विमुख भयो झूठ में बहर है ॥ २८

तीन काल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखंडित प्रवाह को डहर है । तासों कहै यह मेरो दिन यह मेरी राति यह मेरी घरी यह मेरोई पहर है ॥ खेहको खजानो जोरे तासों कहै मेरो गेह, जहां बसे तासों कहै मेरो ही सहर है । याही भांति चेतन अचेतन की संगतिसों, सांच सों विमुख भयो झूठ में बहर है ॥ २९

सम्यग्दृष्टि जीवोंका सद्विचार । दोहा ।

जिनके मिथ्यामति नहीं, ज्ञानकला घट माहिं ।
परचे आतम राम सों, ते अपराधी नाहिं ॥ ३०

सवैया इकतीसा ।

जिनके धरम ध्यान पावक प्रगट भयो, संसे मोह विभ्रम विरख तीन्यो डढे हैं । जिनकी चितौनि आगे उदै

स्वान भूमि भागे, लागै न करम रज ज्ञान गज चढ़े हैं ॥ जिन्हिकी समुझिकी तरंग अंग आगम में, आगम में निपुन अध्यातम में कढ़े हैं। तेई परमारथी पुनीत नर आठों जाम, राम रस गाढ़ करे यहै पाठ पढ़े हैं ॥ ३१

सवैया इकतीसा।

जिन्हकी चिहुंटी चिमटासी गुन चूनवे को, कुकथा के सुनवेकों दोउ कान मढे हैं। जिन्ह को सरल चित्त कोमल वचन बोले, सोम दृष्टि लिये डोले मोम कैसे गढ़े हैं। जिन्हके सकति जगी अलख अराधिवें कों, परम समाधि साधिवेकों मन वढ़े हैं। तेई परमारथी पुनीत नर आठों जाम, राम रस गाढ़ करे यहैं पढ़े हैं ॥ ३२

समाधि वर्णन।

राम रसिक अरु रामरस, कहन सुननको दोइ।
जब समाधि परगट भई, तब दुविधा नहिं कोइ ॥३३

शुभ क्रियाओं का स्पष्टींकरण।

नंदन बंदन थुति करन, श्रवन चिन्तवन जाप।
पढ़न पढ़ावन उपदिसन, बहुविध क्रिया कलाप ॥३४

शुद्धोपयोग में शुभोपयोग का निषेध

शुद्धातम अनुभौ जहाँ, सुभाचार तहां नांहि।
करम करम मारग विषै, शिव मारग शिव मांहि ॥ ३५

चौपाई।

इहि विध वस्तु व्यवस्था जैसी, कही जिनिंद कही मैं तैसी।
जे प्रमाद संयत मुनिराजा, तिन्हिकौं शुभाचारमौं काजा ३६
जहां प्रमाद दशा नहिं व्यापे,तहाँ अवलंब आपनो आपे।
ता कारन प्रमाद उतपाती, प्रगट मोख मारगको घाती।३७
जे प्रमाद संयुक्त गुसांई, उठहि गिरहि गिंदुक की नांई।
जे प्रमाद तजि उद्धत होही,तिन्हिको मोख निकट दृग सोही।३८
घट में है प्रमाद जब तांई, पराधीन प्रानी तब तांई।
जब प्रमादकी प्रभुता नासै, तब प्रधान अनुभौ परगासै ३९

दोहा।

ता कारन जगपन्थ इत, उत शिव मारग जोर।
परमादी जग कौं धुकै, अपरमादि शिव ओर ॥४०
जे परमादी आलसी, जिनके विकलप भूर।
होंहि सिथिल अनुभौविषै, तिन्हिकौं शिवपथ दूर ॥४१
जे अविकलपी अनुभवी, शुद्ध चेतना युक्त।
ते मुनिवर लघु काल मैं, होंहि करमसों मुक्त ॥४२
जे परमादी आलसी, ते अभिमानी जीव।
जे अविकलपी अनुभवी, ते समरसी सदीव ४३

[illegible]

जैसे पुरुष लखे पहार चढि, भूचर पुरुष ताहि लघु लागे।
भूचर पुरुष लखै ताकूं लघु, उतरि मिले दुहूंको भ्रम भागे।

तैसे अभिमानी उन्नत लगे, और जीव कों लघु पद दग्गै।
अभिमानीकों कहैं तुच्छ सब,ज्ञान जगे समता रस लग्गै।४४

अभिमानी जीवों की दशा

करम के भारी समुझै न गुन को मरम,परम अनीति अधरम रीति गहे हैं। होहि न नरम चित गरम धरमहू ते, चरम की दृष्टि सों भरम भूली रहे हैं ॥ आसन न खोले मुख वचन न बोले सिर, नाएहू न डोले मानो पाथर के चहे हैं । देखन के हाउ भाव पन्थ के बढ़ाऊ ऐसें माया के खटाऊ अभिमानी जीव कहे हैं ॥ ४५

ज्ञानी जीवों की दशा।

धीरके धरैया भवनीरके तरैया भय, भीरके हरैया बर-वीर ज्यों उमहे हैं। मारके मरैया सुविचारके करैया सुख, ढारके ढरैया गुन लौसों लहलहे हैं। रूप के रिझैया सब नैके समुझैया सब, हीके लघु भैया सबके कुबोल सहे हैं। वाम के वमैया दुःख धाम के दमैया ऐसे, राम के रमैया नर ज्ञानी जीव कहे हैं ॥

सम्यक्त्वी जीवों की महिमा। चौपाई।

जे समकिती जीव समचेती,तिन्हिकी कथा कहों तुम सेती।
जहाँ प्रमाद क्रिया नहिं कोई,निर्विकल्प अनुभौ पद सोई ४७
परिग्रहत्याग जोग थिर तीनों,करम बंध नहिं होइ नवीनो।
जहाँ न राग दोष रस मोहै,प्रगट मोख मारग मुख सोहै ४८

सर्वविशुद्धि द्वार ।

प्रतिज्ञा । दोहा ।

इति श्री नाटक ग्रंथ में, कह्यो मोक्ष अधिकार ।
अब बरनौं संक्षेपसौं, सरब विशुद्धी द्वार ॥ १

सर्व उपाधिरहित शुभ आत्मा का स्वरूप ।

करमको करता है भोगनिको भोगता है, जाकी प्रभुता में ऐसो कथन अहित है । जामें एक इंद्रियादि पंचधा कथन नांहि, सदा निरदोष बंध मोक्षसौं रहित है ॥ ज्ञान को समूह ज्ञानगम्य ते सुभाउ जाको, लोकव्यापी लोका-तीत लोक में महित है । शुद्ध बंस शुद्ध चेतना के रस अंश भर्यो, एसौ हंस परम पुनीतता सहित है ॥ २

जो निहचै निरमल सदा, आदि मध्य अरु अन्त ।
सो चिद्रूप बनारसी, जगत मांहि जयवन्त ॥ ३

वास्तव में जीव कर्मकर्त्ता भोक्ता नहीं है ।

जीव करम करता नहिं ऐसो, रस भोगता सुभाउ न जैसो ।
मिथ्यामतिसौं करता होई, गये अज्ञान अकरता सोई । ४

अज्ञान में जीव कर्म का कर्त्ता है ।

निहचे निहारत सुभाउ याहि आतमको, आतमीक धरम परम परकासना । अतीत अनागत वरतमान काल

जाकौ, केवल सरूप गुन लोकालोक भासना ॥ सोई जीव संसार अवस्था मांहि करमकौ, करतासौ दीसै लिए भरम उपासना । यहै महा मोह कौ पसार यहै मिथ्याचार, यहै भौ विकार यहै व्यवहार वासना ॥ ५

जीव कर्म का अकर्त्ता है और अभोक्ता भी है ।

जथा जीव करता न कहावै, तथा भोगता नाम न पावै ।
है भोगी मिथ्यामति मांही, गए मिथ्यात भोगता नांही ॥ ६

अज्ञानी जीव विषयों का भोक्ता है, ज्ञानी नहीं है ।

जगवासी अज्ञानी त्रिकाल परजायबुद्धी, सो तौ विषै-भोगनि कौ भोगता कहायौ है । समकिती जीव जोग भोग सौं उदासी तातैं, सहज अभोगता गरंथनि मैं गायौ है ॥ याही भांति वस्तुकी व्यवस्था अवधारै बुध, परभाउ त्यागि अपनौ सुभाउ आयौ है । निरविकलप निरुपाधि आतम अराधि, साधि जोग जुगति समाधिमैं समायौ है ॥ ७

चिनमुद्रा धारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुन, रतन भंडारी अपहारी कर्म रोग कौ । प्यारौ पंडितनि कौ हुस्यारौ मोख मारग मैं, न्यारौ पुदगलसौं उज्यारौ उपयोग कौ ॥ जानै निज पर तत्त रहै जग मैं विरत्त, गहै न ममत्त मन वच काय जोग कौ । ता कारन ग्यानी ग्यानावरनादि करम कौ, करता न होइ भोगता न होइ भोग कौ ॥ ८

निरभिलाप करनी करे, भोग अरुचि घट मांहि ।
तातें साधक सिद्ध सम, करता भुगता नांहि ॥ ६

अज्ञानी जीव कर्मका कर्त्ता भोक्ता है—इसका कारण ।

ज्यों हिय अन्ध विकल मिथ्या धर, मृषा सकल विकलप उपजावत । गहि एकन्त पक्ष आतम को, करता मानि अधोमुख धावत ॥ त्यों जिनमती दरब चारित्री कर, करनी करि करतार कहावत । वंछित मुक्ति तथापि मूढ़ मति, बिनु समकित भव पार न पावत ॥ १०

वास्तव में जीव कर्मका अकर्त्ता है इसका कारण ।

चेतन अङ्क जीव लखि लीन्हा, पुद्गल करम अचेतन चीन्हा ।
वासी एक खेत के दोऊ, यदपि तथापि मिले नहिं कोऊ ।११
निज निज भाउ क्रिया सहित, व्यापक व्यापि न कोइ ।
करता पुद्गल करम कौ, जीव कहाँ सों होइ ॥ १२

अज्ञान में जीव कर्म का कर्त्ता और ज्ञान में अकर्त्ता है ।

जीव अरु पुद्गल करम रहे एक खेत, जद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है । लच्छन सरूप गुन परजे प्रकृति भेद, दुहू में अनादिही की दुविधा ह्वै रही है । एते परि भिन्नता न भासे जीव करमकी, जौलों मिथ्या भाउ तौलों औंधी वाउ वही है । ज्ञान के उदोत होत ऐसी सूधी दृष्टि भई, जीव कर्म-पिण्ड को अकरतार सही है ॥ १३

एक वस्तु जैसी जु है, तासौं मिलै न आन ।
जीव अकर्ता करमकौ, यह अनुभौ परवान ॥ १४

अज्ञानी जीव अशुभ भावों का कर्ता होने से भाव कर्म का कर्ता है

जे दुरमती विकल अज्ञानी, जिन्हि सुरीति पररीति न जानी ।
माया मगन भरम के भरता, ते जिय भाव करमके करता ॥ १५

जे मिथ्यामति तिमिरसौं, लखैं न जीव अजीव ।
तेई भावित करम के, करता होंहि सदीव ॥ १६

जे असुद्ध परिनति धरैं, करैं अहं परवान ।
ते असुद्ध परिनाम के, करता होंहि अजान ॥ १७

इसके विषय में शिष्य का प्रश्न ।

शिष्य कहै प्रभु तुम कह्यौ, दुविध करमकौ रूप ।
दर्व कर्म पुद्गलमई, भाव कर्म चिद्रूप ॥ १८

करता दरवित करमकौ, जीव न होइ त्रिकाल ।
अब यह भावित करम तुम, कहौ कौनकौ चाल ॥ १९

करता याकौ कौन है, कौन करै फल भोग ।
कै पुद्गल कै आतमा, कै दुहु कौ संजोग ॥ २०

इस पर श्री गुरु समाधान करते हैं ।

क्रिया एक करता जुगल, यौं न जिनागम मांहि ।
अथवा करनी और की, और करै यौं नांहि ॥ २१

करै और फल भोगवै, और बनै नहि एम ।

जो करता सो भोगता, यहै यथावत जेम ॥ २२

भाव कर्म कर्तव्यता, स्वयं सिद्ध नहिं होइ ।
जो जगकी करनी करे, जगवासी जिय सोइ ॥ २३

जिय करता जिय भोगता, भाव कर्म जिय चाल ।
पुद्गल करे न भोगवे, दुविधा मिथ्या जाल ॥२४

तातें भावित करम कों, करे मिथ्याती जीव ।
सुख दुख आपद संपदा, भुंजे सहज सदीव ॥ २५

कर्म के कर्ता भोक्ता बाबत एकांत पक्ष पर विचार ।

केई मूढ़ विकल एकंत पक्ष गहैं कहैं,आतमा अकरतार पूरन परम है । तिन्हसौं जु कोऊ कहै जीव करता है तासौं, फेरि कहैं करम कौ करता करम है । ऐसे मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव, जिन्हके हिये अनादि मोह को भरम है । तिन्हको मिथ्यात दूरि करिवे कों कहैं गुरु, स्याद्वाद परवान आतम धरम है ॥ २६

स्याद्वाद में आत्मा का स्वरूप ।

चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान ।
नहिं करता नहिं भोगता, निहचै सम्यकवान ॥ २७

एकांत पक्ष खंडन करने वाले स्याद्वाद का उपदेश ।

जैसे सांख्यमति कहै अलख अकरता है, सर्वथा प्रकार करता न होइ कबही । तैसें जिनमति गुरु मुख एक पक्ष

सुनि याहि भांति मानैं सो एकंत तजो अब ही ॥ जौलौं दुरमति तौलौं करम को करता है, सुमति सदा अकरतार कह्यौ सब ही । जाके घट ज्ञायक सुभाउ जग्यो जब ही सौं सो तो जग जाल सौं निरालो भयो तब ही ॥ २८

इस विषय में बौद्ध मतवालों का विचार । दोहा ।

बौध छिनकवादी कहै, छिनु भंगुरतनु मांहि ।
प्रथम समै जो जीव है, दुतिय समै सो नांहि ॥ २९
तातें मेरे मत विषै, करै करम जो कोइ ।
सो न भोगवै सरवथा, और भोगता होइ ॥ ३०

बौद्धमत वालों का एकान्त दूर करने का दृष्टान्त ।

यह एकंत मिथ्यात पख, दूरि करनकौं काज ।
चिदविलास अविचल कथा, भाषै श्रीजिनराज ॥ ३१
बालापन काहू पुरुष, देख्यौ पुर कहुं कोइ ।
तरुन भये फिरिकै लख्यौ, कहै नगर यह सोइ ॥ ३२
जो दुहुपन में एक थौ, तो तिहि सुमिरन कीय ।
और पुरुष को अनुभव्यौ, और न जानै जीय ॥ ३३
जब यह वचन प्रगट सुन्यौ, सुन्यौ जैनमत सुद्ध ।
तब इकंतवादी पुरुष, जैन भयौ प्रतिबुद्ध ॥ ३४

बौद्ध भी कहि [illegible]

[illegible]

१ क. [illegible]

दूजे समै उपजति है । ताको छल पकरिके बोध कहै समैं समैं नवो जीव उपजे पुरातन की छति है ॥ ताते मानै करम को करता है और जीव, भोगता है और वाके हिए ऐसी मति है । परजै प्रवान को सरवथा दरव जाने, ऐसे दुरबुद्धिकों अवश्य दुरगति है ॥ ३५

दुर्बुद्धि की दुर्गति होती है । दोहा ।

दुर्बुद्धी मिथ्यामती, दुर्गति मिथ्या चाल ।
गहि एकंत दुर्बुद्धिसों, मुकति न होइ त्रिकाल ॥३६
कहै अनातम की कथा, चहै न आतम शुद्धि ।
रहै अध्यातम सों विमुख, दुराराधि दुर्बुद्धि ॥ ३७

दुर्बुद्धि की भूल पर दृष्टान्त । सवैया इकतीसा ।

कायासे विचारि प्रीति मायाहि मों हारि जीति, लिये हठ रीति जैसे हारिलकी लकरी । चूंगल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि, त्योंही पाई गाडे पै न छांडे टेकप करी । मोह की मरोरसों भरमको न छोर पावे, धावै चिहुँ ओर ज्यों वढ़ावै जाल मकरी । ऐसी दुर्बुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि, फूली फिरे ममता जंजीरनि सों जकरी ॥ ३८

दुर्बुद्धि की परिणति । सवैया इकतीसा ।

बात सुनि चौंक उठे बातहि सों भौंकि उठे, बात सों नरम होइ बातहीसों अकरी । निन्दा करे साधु की प्रशंसा

करै हिंसक की, साता मानै प्रभुता असाता मानै फकरी ॥ मोख न सुहाइ दोख देखै तहां पैठि जाइ, कालसौं डराय जैसे नाहरसौं बकरी । ऐसी दुरबुद्धि भूलि झूठ के झरोखे झूलि, फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी ॥३९

अनेकान्त की महिमा । सवैया छन्द ।

केई कहैं जीव छिनभंगुर, केई कहैं करम करतार । केई करम रहित नित जंपहि, नय अनंत नाना परकार ॥ जे एकंत गहैं ते मूरख, पंडित अनेकांत पख धार । जैसे भिन्न भिन्न मुकतागन, गुनसौं गहत कहावै हार ॥४०

दोहा ।

जथा सूत संग्रह बिना, मुक्तमाल नहिं होइ ।
तथा स्यादवादी बिना, मोख न साधै कोइ ॥ ४१
पद सुभाउ पूरब उदै, निहचै उद्यम काल ।
पच्छपात मिथ्यातपथ, सरवंगी सिव चाल ॥ ४२

[illegible]

एक जीव वस्तु के अनेक [illegible]

[illegible]

डोलत है, समुझे न धरम यों भर्म माहिं वर्गी है ॥५

जगत के पदार्थ परस्पर अव्यापक हैं।

सकल वस्तु जगमें असुहाई, वस्तु वस्तु सों मिले न काई।
जीव वस्तु जाने जग जेती, सोऊ भिन्न रहे सब सेती ॥५१

कर्म करना और फल भोगना यह जीव का निज स्वरूप नहीं है।

करम करै फल भोगवै, जीव अज्ञानी कोइ।
यह कथनी व्यवहार की, वस्तु स्वरूप न होइ ॥ ५२

ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता।

ज्ञेयाकार ज्ञान की परिनति, पै वह ज्ञान ज्ञेय नहिं होइ। ज्ञेय रूप षट दरव भिन्न पद, ज्ञान रूप आतम पद सोइ॥ जाने भेद भाउ सु विचछन गुन लछन सम्यक दृग जोइ। मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखै नहिं कोइ ॥ ५३

ज्ञेय और ज्ञान के सम्बन्ध में अज्ञानियो का हेतु।

निराकार जो ब्रह्म कहावे, सो साकार नाम क्यों पावे।
ज्ञेयाकार ज्ञान जब तांई, पूरन ब्रह्म नांहि तब तांई ॥५४

इस विषय में अज्ञानियों का संशोधन।

ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने, नाश करन का उद्दिम ठाने।
वस्तु स्वभाव मिटे नहिं क्योंहीं,ताते खेद करे सठ योंही ५५

मूढ़ मरम जाने नहीं, गहे इकांत कुपक्ष।
स्यादवाद सरवंग नै, माने दक्ष प्रतक्ष ॥५६

स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा।

शुद्ध दरब अनुभौ करै, शुद्ध दृष्टि घट मांहि।
ताते समकितवन्त नर, सहज उछेदक नांहि ॥५७

ज्ञानज्ञेय से अव्यापक है इस पर दृष्टान्त।

जैसे चन्दकिरन प्रकटि भूमि सेत करै, भूमिसी न होति सदा जोति सी रहति है। तैसे ज्ञान सकति प्रकासै हेय उपादेय ज्ञेयाकार दीसे पै न ज्ञेयकों गहति है॥ शुद्ध वस्तु शुद्ध परजाय रूप परिनवै, सत्ता परवान मांहि ढाहे न ढहति है। सो तो और रूप कबहों न होइ सरवथा, निहचे अनादि जिनवानी यों कहति है॥५८

आतम पदार्थ का यथार्थ स्वरूप।

राग विरोध उदै तबलों जबलों, यह जीव मृषा मग धावे। ज्ञान जग्यो जब चेतन को तब कर्म दशा पररूप कहावे। कर्म विलेछि करै अनुभौ तहं मोह मिथ्यात प्रवेश न पावे। मोह गये उपजै सुख केवल सिद्ध भयो जगमांहि न आवे ॥५९

परमात्मपद की [illegible]।

जीव करम संयोग, सहज मिथ्यातरूप [illegible]

परिनति प्रभाव, जाने न आप पर ॥ तम मिथ्यात मिटि गयो भयो समकित उदोत शशि। राग दोष कछु वस्तु नाहिं, छिनु माँहि गये नसि ॥ अनुभौ अभ्यासि सुख राशि रमि, भयो निपुन तारन तरन। पूरन प्रकाश निहचलि निरखि, बनारसी वंदत चरन ॥६०

अज्ञानियों के विचार में राग द्वेष का कारण।

कोऊ मूरख यों कहै, राग दोष परिनाम।
पुग्गल की जोरावरी, वरते आतमराम ॥६१
ज्योंज्यों पुद्गल बल करे, धरि धरि कर्मज भेष।
राग दोषको परिनमन, त्यों त्यों होइ विशेष ॥६२

अज्ञानियों को सत्य मार्ग का उपदेश।

इहविधि जो विपरीत पख, गहै सदहै कोइ।
सो नर राग विरोध सों, कबहूं भिन्न न होइ ॥६३
सुगुरु कहै जग में रहै, पुग्गल संग सदीव।
सहज शुद्ध परिनमनको, औसर लहे न जीव ॥६४
ताते चित भावन विषें, समरथ चेतन राउ।
राग विरोध मिथ्यातमें, सम्यक में सिव भाउ ॥६५

ज्ञान का माहात्म्य।

ज्यों दीपक रजनी समैं, चिहुदिसि करे उदोत।
प्रगटे घट पट रूप में, घट पट रूप न होत ॥६६

ज्यों सु ज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तु को मर्म ।
ज्ञेयाकृति परिनति विषै, तजे न आतम धर्म ॥६७

ज्ञान धर्म अविचल सदा, गहे विकार न कोइ ।
राग विरोध विमोहमय, कबहूँ भूलि न होइ ॥६८

ऐसी महिमा ज्ञान की, निहचै है घट मांहि ।
मूरख मिथ्यादृष्टिसों, सहज विलोके नांहि ॥६९

अज्ञानी जीव पर-द्रव्य में ही लीन रहता है ।

परसुभाव में मगन ह्वै, ठाने राग विरोध ।
धरै परिग्रह धारना, करे न आतम सोध ॥७०

अज्ञानी को कुमति और ज्ञानी को सुमति उपजती है ।

मूरख के घट दुरमति भासी, पंडित हिये सुमति परगासी ।
दुरमति कुबजा करम कमावे, सुमति राधिका राम रमावे ॥७१

कुबजा कारी कूबरी, करे जगत में खेद ।
अलख अराधे राधिका, जाने निज पर भेद ॥७२

दुर्मति और कुब्जा की समानता ।

कुटिल कुरूप अङ्ग लगी है पराये संग, अपनो प्रवान करि आपुहि विकाई है । गहे गति अन्ध कीसी सकति कमंध कीसी, बंधको बढ़ाउ करे धंधही में धाई है । रांड कीसी रीति लिए मांडकीसी मतवारी, सांड ज्यों सुछंद डोले भांडकीसी जाई है । घर को न जाने भेद करे पराधीन

खेद, यातैं दुर्बुद्धि दासी कुबजा कहाई है ॥७३

सुबुद्धि से राधिका की तुलना।

रूपकी रसीली भ्रम कुलफ की कीली सील, सुधा के समुद्र झीली सीली सुखदाई है। प्राची ज्ञान भान की अजाची है निदानकी, सुराची निरवाची ठौर सांची ठकुराई है॥ धाम की खबरदार राम की रमनहार, राधारस पंथनि के ग्रंथनि में गाई है। संतनि की मानी निरवानी नूरकी निसानी, यातैं सद्बुद्धि रानी राधिका कहाई है ॥७४

कुमति सुमति का कृत्य।

वह कुबजा वह राधिका, दोऊ गति मतिवान।
वह अधिकारिनि करमकी, यह विवेककी खान ॥७५

द्रव्यकर्म भावकर्म और विवेक का निर्णय।

दरव करम पुद्गल दसा, भाव कर्म मति वक्र।
जो सुज्ञान को परिनमन, सो विवेक गुरुचक्र ॥७६

कर्म के उदय पर चोपर का दृष्टान्त।

जैसैं नर खिलार चौपरिको, लाभ विचार करे चित चाउ।
धरैं संभारि सारि बुध बलसों, पासा जो कुछ परे सु दाउ॥
तैसैं जगत जीव स्वारथ को, करि उद्यम चितवे उपाउ।
लिख्यो ललाट होइ सोई फल, कर्मचक्रको यही सुभाउ॥

विवेक चक्र के स्वभाव पर दृष्टान्त।

जैसे नर खिलार सतरंज को, समुझे सब सतरंज की

घात। चले चाल निरखै दोऊ दल, मोहरा गिनै विचारै मात। तैसे साधु निपुन शिव पथ में, लच्छन लखै तजै उतपात। साधै गुन चिंतवै अभै पद, यह सुविवेक गुनचक्र की बात ॥७८

कुमति कुवजा और सुमति राधिका के कृत्य।

सतरंज खेलै राधिका, कुवजा खेलै सार।
याके निस दिन जीतवौ, वाके निस दिन हार ॥७९

जाके उर कुवजा बसै, सोई अलख अजान।
जाकै हिरदै राधिका, सो बुध सम्यकवान ॥८०

जहां शुद्ध ज्ञान वहां चारित्र है।

जहाँशुद्ध ज्ञानकी कलाउद्योत दीसै तहां, शुद्धता प्रवान शुद्ध चारित्र को अंस है। ता कारन ज्ञानी सब जानै ज्ञेय वस्तु मर्म, वैराग विलास धर्म वाको सरवंस है॥ राग दोष मोह की दसासो भिन्न रहै याते, सर्वथा त्रिकाल कर्म जालको विध्वंस है। निरुपाधि आतम समाधि में विराजै ताते, कहिये प्रगट पूरन परमहंस है ॥८१

ज्ञायक भाव जहां तहां, शुद्ध चरनकी चाल।
ताते ज्ञान विराग मिलि, शिव साधै समकाल ॥८२

ज्ञान चारित्र पर पंगु अंध का दृष्टान्त

यथा अन्धके कंध परि, चढ़ै पंगु नर कोइ।

वाके दृग वाके चरण, होंहि पथिक मिलि दोइ ॥८३

जहाँ ज्ञान क्रिरिया मिले, तहां मोक्ष मग सोइ ।
वह जाने पद को मरम, वह पदमें थिर होइ ॥८४

ज्ञान और क्रिया की परिणति ।

ज्ञान जीव की सजगता, करम जीव को भूल ।
ज्ञान मोक्ष अंकूर है, करम जगत को मूल ॥८५

ज्ञान चेतना के जगे, प्रगटै केवल राम ।
कर्म चेतनामें वसै, कर्म बंध परिनाम ॥८६

कर्म और ज्ञान का भिन्न २ प्रभाव ।

जबलग ज्ञान चेतना भारी, तबलग जीव विकल संसारी ।
जब घट ज्ञान चेतना जागी, तब समकिती सहज वैरागी ॥८७

सिद्ध समान रूप निज जाने, पर संजोग भाव पर माने ।
शुद्धातम अनुभौ अभ्यासे, त्रिविधकरम की ममता नासे ८८

ज्ञान की आलोचना । दोहा ।

ज्ञानवंत अपनी कथा, कहै आपसों आप ।
मैं मिथ्यात दशाविषे, कीने बहुविधि पाप ॥८९

हिरदे हमारे महामोहकी विकलताही, ताते हम करुना न कीनी जीव घात की । आप पाप कीने औरनकों उपदेश दीने, हुती अनुमोदना हमारे याही बातकी ॥ मन वच कायमें मगन व्है कमाए कर्म, धाए भ्रम जालमें कहाए हम

पातकी। ज्ञान के उदे भए हमारी दशा ऐसी भई, जैसी भानु भासत अवस्था होत प्रात की ॥९०

ज्ञान का उदय होने पर अज्ञान दशा हट जाती है।

ज्ञान भान भासत प्रवान ज्ञानवान कहै, करुनानिधान अमलान मेरो रूप है। कालसों अतीत कर्म चालसों अजीत जोग, जालसों अजीत जाकी महिमा अनूप है॥ मोह-कौ विलास यह जगतको वास मैं तो, जगतसों शून्य पाप पुन्य अंधकूप है॥ पाप किन कियो कौन करै करि है सु कौन, क्रिया को विचार सुपनेकी दौर धूप है॥९१

कर्म प्रपंच मिथ्या है। दोहा।

मैं यों कीनौ यों करौं, अब यह मेरो काम।
मन वच कायामें बसे, ए मिथ्या परिनाम ॥९२

मन वच काया करम फल, करम दशा जड़ अंग।
दरवित पुद्गल पिंडमय, भावित भरम तरंग ॥९३

तातैं आतम धरमसौं, करम सुभाव अपूठ।
कौन करावे को करे, कोसल है सब झूठ ॥९४

मोक्षमार्ग में क्रिया का निषेध।

करनी हितहरनी सदा, मुकति वितरनी नांहि।
गनी बंधपद्धति विषै, सनी महादुख मांहि ॥९५

क्रिया की निन्दा ।

करनी की धरनी में महामोह राजा बसै, करनी अज्ञानभाव राकसकी पुरी है । करनी करम काया पुद्गल की प्रति छाया, करनी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है । करनी के जालमें उरझि रह्यो चिदानंद, करनी की ओट ज्ञान भानु दुति दुरीहै । आचारज कहैं करनीसों विवहारी जीव, करनी सदीव निहचै सरूप बुरी है ॥९६

ज्ञानियों का विचार । चौपाई ।

मृषा मोहकी परिनति फैली, तातै करम चेतना मैली ।
ज्ञान होत हम समुझी एती, जीव सदीव भिन्न परसेती ॥९७

दोहा ।

जीव अनादि सरूप मम, करमरहित निरुपाधि ।
अविनाशी अशरन सदा, सुखमय सिद्धसमाधि ॥९८

चौपाई ।

मैं त्रिकाल करणीसों न्यारा, चिद्विलास पद जग उजियारा ।
रागविरोध मोह मम नाँही, मेरो अवलंबन मुझ माँही ॥९९

सम्यकवन्त कहे अपने गुन, मैं नित राग विरोध सों रीतो । मैं करतूति करों निरवंछक, मोहि विषै रस लागत तीतो ॥ शुद्धसुचेतनको अनुभौ करि, मैं जग मोह महातम जीतो । मोख समीप भयो अब मोकों, काल अनंत इह

विधि बीतो ॥१००॥

दोहा।

कहै विचक्षन मैं सदा, ग्यो ज्ञानरस राचि।
सुद्धातम अनुभूतिसौं, खलित न होहुं कदाचि॥१०१॥
पूर्व करम विषतरु भये, उदै भोग फल फूल।
मैं इनको नहिं भोगता, सहज होहु निरमूल॥१०२॥

वैराग्य की महिमा।

जो पूरव कृत कर्मफल, रुचिसौं भुंजै नांहि।
मगन रहै आठो पहर, शुद्धातम पद मांहि॥१०३॥
सो बुध कर्म दसा रहित, पावै मोक्ष तुरंत।
भुंजे परम समाधि सुख, आगम काल अनंत॥१०४॥

ज्ञानी की उन्नति का क्रम।

जो पूरबकृतकर्म, विरस विषफल नहिं भुंजै। जोग जुगति कारज करत, ममता न प्रयुंजै॥ राग विरोध निरोध संग, विकलप सब छंडै। शुद्धातम अनुभौ अभ्यासि, शिव नाटक मंडै॥ जो ज्ञानवन्त इह मग चलत, पूरन ह्वै केवल लहै। सो परम अतींद्रिय सुख विषै, मगनरूप संतत रहै॥१०५॥

शुद्ध आत्मद्रव्य की नमस्कार।

निरभै निराकुल निगम वेद निरभेद, जाके परगास में जगत माइयतु है। रूप रस गन्ध फास पुद्गल को

विलास, तासों उदवास जाको यश गाइयतु है ॥ विग्रहसों विरत परिग्रहसें न्यारो सदा, जामें जोग निग्रहको चिन्ह पाइयतु है। सो है ज्ञान परवान चेतन निधान ताहि, अविनाशी ईश जानि सीस नाइयतु है ॥१०७

शुद्ध आत्म द्रव्य।

जैसो निरभेदरूप निहचै अतीत हुतो, तैसो निरभेद अब भेद कौन कहैगो। दीसै कर्म रहित सहित सुख समाधान, पायो निजथान फिर बाहिर न बहैगो ॥ कबहूं कदाचि अपनो सुभाव त्यागकरि, रागरस रांचि कै न पर वस्तु गहैगो। अमलान ज्ञान विद्यमान परगट भयो, याही भांति आगम अनन्त काल रहैगो ॥१०८

जब हीतें चेतन विभाउसों उलटि आपु, समौ पाइ अपनो सुभाउ गहि लीनौ है। तबहीते जो जो लेन जोग सो सो सब लीनो, जो जो त्याग जोग सो सो सब छांडि दीनौ है ॥ लेवेकों न रही ठौर त्यागिवेकों नांहि और, वाकी कहा उबर्यो जु कारज नवीनो है। संग त्यागि अंग त्यागि वचन तरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध कीनौ है ॥१०९

मुक्ति का मूल कारण द्रव्य लिंग नहीं है।

शुद्ध ज्ञानके देह नहिं, मुद्रा भेष न कोइ।

तातैं कारण मोख को, दरव लिंग नहिं होइ ॥ ११०

दरव लिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विज्ञान ।
अष्टमहारिधि अष्टसिधि, एऊ होहिं न ज्ञान ॥ १११

आत्मा के सिवाय अन्यत्र ज्ञान नहीं है ।

भेष में न ज्ञान नहिं ज्ञान गुरु वर्त्तन में, मंत्र जंत्र तंत्र में न ज्ञान की कहानी है । ग्रंथ में न ज्ञान नहिं ज्ञान कवि चातुरी में, वातनिमें ज्ञान नहिं ज्ञान कहा बानी है ॥ तातें भेष गुरुता कवित्त ग्रन्थ मंत्र बात, इनतें अतीत ज्ञान चेतना निशानी है । ज्ञान ही में ज्ञान नहीं ज्ञान कहीं और ठौर, कहुं जाके घट ज्ञान सोई ज्ञानकी निदानी है ॥ ११२

ज्ञान के बिना वेषधारी विषयके भिखारी हैं ।

भेष धरि लोगनि कों बंचै सो धरम ठग, गुरु सो कहावे गुरुवाई जाहि चहिये । मंत्र तंत्र साधक कहावे गुनी जादूगर, पण्डित कहावे पण्डिताई जामें लहिये ॥ कवित्त की कला में प्रवीन सो कहावे कवि, बात कहि जाने सो पवारगीर कहिये । ए तो सब विषै के भिखारी मायाधारी जीव, इन्हिकों विलोकि के दयाल रूप रहिये ॥ ११३

अनुभव की योग्यता ।

जो दयालता भाव सो, प्रगट ज्ञान को अंग ।
पै तथापि अनुभव दशा, वरतै विगत तरंग ॥ ११४

दरशन ज्ञान चरण दशा, करै एक जो कोइ ।
थिर ह्वै साधै मोख मग, सुधी अनुभवी सोइ ॥११५

आतमअनुभव का परिणाम । सवैया इकतीसा ।

जोई दग ज्ञान चरणातम में बैठि ठौर, भयौ निरदौर पर वस्तुकौं न परसै । शुद्धता विचारै ध्यावै शुद्धता में केलि करै, शुद्धता में थिर ह्वै अमृतधारा बरसै ॥ त्यागी तन कष्ट ह्वै सपष्ट अष्ट करम कौ, करे थान भ्रष्ट नष्ट करे और करसे । सोतौ विकलप विजई अलप काल माँहि, त्यागि भौ विधान निरवान पद दरसै ॥ ११६

आतम अनुभव करनेका उपदेश । चौपाई ।

गुन परजै में दृष्टि न दीजै, निरविकलप अनुभौ रस पीजै ।
आप समाइ आपमें लीजै, तनपौ मेटि अपनपौ कीजै ॥११७

दोहा ।

तजि विभाव हूजे मगन, सुद्धातम पद माँहि ।
एक मोख मारग यहै, और दूसरो नाँहि ॥ ११८

आतमअनुभवके विना वाह्यचारित्र होनेपर भी जीव अव्रती है ।

कोई मिथ्यादृष्टि जीव धरे जिनमुद्रा भेप, क्रिया में मगन रहे कहै हम जती हैं । अतुल अखंड मल रहित सदा उदोत, ऐसे ज्ञान भाव सौं विमुख मूढ़मती हैं ॥ आगम संभाले दोप टाले विवहार भाले, पाले व्रत यद्यपि तथापि

अविरती हैं। आपुकों कहावे मोख-मारग के अधिकारी, मोख सों सदीव रुष्ट दुष्ट दुरबारी हैं ॥११९

दोहा।

जे विवहारी मूढ़ नर, परजै बुद्धी जीव ।
तिनके बाहिज क्रियाहिं पै, है अवलम्ब सदीव ॥१२०

चौपाई।

जैसे मुगध धान पहिचाने, तुष तंदुल को भेद न जाने।
तैसे मूढ़मती व्यवहारी, लखे न बंध मोख विधि न्यारी ॥१२१

दोहा।

कुमती बाहिज दृष्टिसों, बाहिज क्रिया करंत।
माने मोख परंपरा, मन में हरष धरन्त ॥१२२
शुद्धातम अनुभौ दशा, कहैं समकिती कोइ।
सो सुनिके तासों कहै, यह शिवपंथ न होइ ॥१२३

अज्ञानी और ज्ञानियो की परिनति मे भेद। [illegible]

जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर, मुनि-मुद्रा धरि किरिया प्रवानहि। ते हिय-अन्ध बंधके करता, परमतत्त को भेद न जानहि॥ जिन्ह के हिये सुमति की कनिका, बाहिज क्रिया भेष परमानहि। ते समकिती मोख मारग मुख, करि प्रस्थान भवस्थिति मानहि ॥१२४

समयसार का सार। सवैया इकतीसा

आचारिज कहैं जिन वचन को विस्तार, अगम अपार

है कहेंगे हम कितनो। बहुत बोलबे सों न मकसूद चुप्प भली, बोलिये सु वचन प्रयोजन है जितनो ॥ नाना रूप जलप सों नाना विकलप उठे, ताते जेतो कारिज कथन भलौ तितनो। शुद्ध परमातम कौ अनुभौ अभ्यास कीजे, यहै मोखपंथ परमारथ है इतनो ॥ १२५

दोहा।

शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दौर।
मुकति पंथ साधन यहै, वाग जाल सब और ॥१२६

अनुभव योग्य शुद्ध आत्मा का स्वरूप।

जगत चक्षु आनन्दमय, ज्ञान चेतना भास।
निर्विकल्प साश्वत सुथिर, कीजे अनुभवौ तास ।१२७
अचल अखंडित ज्ञानमय, पूरन वीत ममत्व।
ज्ञानगम्य बाधा रहित, सो है आतम तत्व ॥१२८

दोहा।

सर्वविसुद्धी द्वार यह, कह्यो प्रगट शिवपंथ।
कुन्दकुन्द मुनिराज कृत, पूरन भयो गरंथ ॥१२९

ग्रन्थ कर्ता का नाम और ग्रन्थ की महिमा।

कुन्दकुन्द मुनिराज प्रवीना, तिन्ह यह ग्रंथ इहांलों कीना।
गाथाबद्ध सुप्राकृत बानी, गुरु परंपरा रीति बखानी ॥१३०
भयो ग्रन्थ जगमें विख्याता, सुनत महासुख पावहि ज्ञाता।
जे नवरस जगमांहि बखाने, ते सब समयसार रस साने१३१

दोहा।

प्रगट रूप संसार में, नव रस नाटक होइ।
नव रस गर्भित ज्ञान में, विरला जानै कोइ॥ १३२

नवरसों के नाम। कवित्त।

प्रथम सिंगार वीर दूजौ रस, तीजौ रस करुना सुखदायक। हास्य चतुर्थ रुद्र रस पंचम, छट्ठम रस बीभच्छ विभायक॥ सप्तम भय अट्ठम रस अद्भुत, नवमो शांत रसनि को नायक। ए नव रस एई नव नाटक जो जहं मगन सोइ तिहि लायक॥ १३३

नवरसों के लौकिक स्थान।

सोभा में सिंगार बसै वीर पुरुषारथ में, कोमल [illegible] में करुना रस बखानिये। आनन्द में हास्य [illegible] में विराजे रुद्र, बीभत्स तहां जहां गिलानि मन [illegible]॥ चिन्ता में भयानक अथाहता में अद्भुत, माया की [illegible] तामें शान्त रस मानिये। [illegible] नव रस [illegible], भाव रूप, इनिको बिलेछण सुदृष्टि जागे [illegible]॥ [illegible]

नवरसों के पारमार्थिक [illegible]।

गुन विचार सिंगार, वीर उद्यम [illegible], करुना सम रसरीति, हास हिरदै उछाह सुख॥ [illegible] दल मलन, रुद्र वरते तिहि थानक। [illegible]

दुन्द मुख दशा भयानक ॥ अद्भुत अनंत बल चिंतवन, शांत सहज वैराग्य ध्रुव । नव रस विलास परगास तव, जव सुवोध घट प्रगट हुव ॥ १३५

चौपाई ।

जव सुवोध घट में परगासे, तव रस विरस विषमता नासे ।
नवरस लखे एक रसमांही, तातें विरस भाव मिटि जांही १३६

दोहा ।

सव रस गर्भित मूल रस, नाटक नाम गरन्थ ।
जाके सुनत प्रवान जिय समुझे पन्थ कुपन्थ ॥ १३७

चौपाई

वरते ग्रन्थ जगत हित काजा, प्रगटे अमृतचन्द मुनिराजा ।
तव तिन्ह ग्रन्थ जान अति नीका, रची वनाइ संस्कृतटीका ॥

दोहा ।

सर्व विशुद्धी द्वार लों, आये करत वखान ।
तव आचारज भक्तिसों, करे ग्रन्थ गुन गान ॥ १३८

प्रश्नोत्तर कथन । सवैया इकतीसा ।

कोऊ शिष्य कहै स्वामी राग द्वेष परिनाम, ताको मूल प्रेरक कहहु तुम्ह कौन है । पुग्गल करम जोग किधों इन्द्रिनी कौ भोग, किधौ परिजन किधों धन किधों भौन है ॥ गुरु कहै छहौ दर्व अपने अपने रूप, सवनिको सदा

असहाई परिनौन है। कोऊ दर्व काहूकौं न प्रेरक कदापि तातें, राग द्वेष मोह मृषा मदिरा अचौन है ॥

इति नाटकसमयसार विषे का सर्वविशुद्धि द्वार समाप्त।

स्याद्वाद द्वार।

स्वामी अमृतचन्द्र की प्रतिज्ञा।

अद्भुत ग्रन्थ अध्यातम वानी, समुझे कोऊ विरला ग्यानी।
यामें स्याद्वाद अधिकारा, ताकौ जो कीजै विसतारा ॥ १
तो गरन्थ अति शोभा पावे, वह मंदिर यह कलश कहावे।
तब चित अमृत वचन गढ़ि खोले, अमृतचंद आचारज बोले ॥ २

कुन्दकुन्द नाटक विषै, कह्यो दरव अधिकार।
स्यादवादनैं साधि में, कहौं अवस्था द्वार ॥ ३
कहौं मुकति पद की कथा, कहौं मुकति कौ पंथ।
जैसे घृत कारज जहाँ, तहाँ कारन दधि मंथ ॥ ४

चौपाई।

अमृतचन्द बोले मृदु वानी, स्यादवाद की सुनौ कहानी।
कोऊ कहै जीव जग मांही, कोऊ कहै जीव है नांही ॥ ५

दोहा।

एक रूप कोऊ कहै, कोऊ अगनित अंग।
छिन भंगुर कोऊ कहै, कोऊ कहै अभंग ॥ ६
नय अनन्त इहि विधि कही, मिलै न काहू कोइ।
जो सब नय साधन करै, स्यादवाद है सोइ ॥ ७

स्याद्वाद संसार सागर से तारने वाला है।

स्यादवाद अधिकार अब, कहो जैन को मूल।
जाके जाने जगत जन, लहैं जगत जल कूल॥ ८

नयसमूहपर शिष्यकी शंका और गुरुका समाधान। सवैया।

शिष्य कहै स्वामी जीव स्वाधीनकि पराधीन, जीव एक है किधौं अनेक मानि लीजिये। जीव है सदीव किधौं नांहि है जगत मांहि, जीव अविनस्वर कि नस्वर कहीजिये॥ सत गुरु कहै जीव है सदीव निजाधीन, एक अविनस्वर दरव दृष्टि दीजिये। जीव पराधीन छिन भंगुर अनेक रूप, नांही जहाँ तहाँ परजै प्रमान कीजिए॥ ९

पदार्थ स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तिरूप और परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है। सवैया इकतीसा।

दर्व खेत काल भाव चारों भेद वस्तु ही में, अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानिये। परके चतुष्क वस्तु नास्ति नियत अङ्ग, ताको भेद दर्व परजाइ मध्य जानिये॥ दरव तो वस्तु खेत सत्ता भूमि काल चाल, सुभाव सहज मूल सकति वखानिये। याही भांति पर विकलप बुद्धि कलपना, विवहार दृष्टि अंश भेद परवानिये॥ ११

स्याद्वाद के सप्तभंग। दोहा।

है नाहीं नाहीं सु है, है है नाहीं नाहिं।
यह सरवंगी नयधनी, सब माने सब माहिं॥१२

'एकान्त वादियोंके चौदह नय भेद । सवैया इकतीसा ।

ज्ञानको कारण ज्ञेय आतमा त्रिलोकमय, ज्ञेयसौं अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छांही है । जौलों ज्ञेय तौलों ज्ञान सर्व दर्वमें विज्ञान, ज्ञेयक्षेत्र मान ज्ञान जीव वस्तु नांही है ॥ देह नसे जीव नसे देह उपजत लसे, आतमा अचेतन है सत्ता अंस मांही है । जीव छिनभंगुर अज्ञायक सहजरूपी ज्ञान, ऐसी ऐसी एकांत अवस्था मूढ पांही है ॥१८॥

प्रथम पक्ष का स्पष्टीकरण और खण्डन । सवैया इकतीसा ।

कोऊमूढ कहै जैसे प्रथम सवारि भीति, पाछै ताके ऊपरि सुचित्र आछो लेखिये । तैसे मूल कारन प्रगट घट पट जैसो, तैसो तहां ज्ञान रूप कारज विसेखिये ॥ ज्ञानी कहे जैसी वस्तु तैसोही सुभाव ताको, तातै ज्ञान ज्ञेय भिन्नभिन्न पद पेखिये । कारन कारज दोऊ एक ही मैं निहचे पै तेरो मत सांचो विवहार दृष्टि देखिये ॥१९॥

द्वितीय पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोऊ मिथ्यामती लोकालोक व्यापी ज्ञान मानि, समझै त्रिलोक पिंड आतम दरब है । याहीतें सुछंद भयौ डोलै मुख सौं न बोले, कहै या जगतमें हमारोई सरब है ॥ तासौं ज्ञाता कहै जीव जगत सौं भिन्न पै, जगत सौं विकासी तोहि याहीते गरब है । जो वस्तु सो वस्तु पररूप सौं निराली

सदा, निहचे प्रमान स्यादवाद में गरव है ॥१४

तृतीय पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन। सवैया इकतीसा।

कोऊपशु ज्ञानकी अनन्त विचित्रताई देखे, ज्ञेयको आकार नाना रूप विसतर्यो है। ताहीको विचारि कहै ज्ञानकी अनेक सत्ता, गहिके एकन्त पक्ष लोकनि सों लर्यो है॥ ताको भ्रम भंजिवे कों ज्ञानवन्त कहै ज्ञान, अगम अगाध निरावाध रस भर्यो है। ज्ञायक सुभाइ परजाइ सों अनेक भयो, जद्यपि तथापि एकतासों नहिं टर्यो है ॥१५

चतुर्थ पक्षका स्पष्टीकरण और खंडन। सवैया इकतीसा।

कोऊ कुधी कहै ज्ञानमांहि ज्ञेय को अकार, प्रतिभासि रह्यौ है कलंक ताहि धोइए। जब ध्यान जलसों पखारिकै धवल कीजे, तब निराकार शुद्ध ज्ञानमई होइए॥ तासों स्यादवादी कहै ज्ञानको सुभाव यहै, ज्ञेय को आकार वस्तु मांहि कहाँ खोइए। जैसे नानारूप प्रतिबिंबकी झलक दीसे, जदपि तथापि आरसी विमल जोइए॥१६

पंचमपक्षका स्पष्टीकरण और खंडन।

कोऊ ज्ञेय कहै ज्ञेयाकार ज्ञान परिनाम, जोलों विद्यमान तौलों ज्ञान परगट है। ज्ञेय के विनाश होत ज्ञान को विनाश होइ, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यात की अलट है॥ तासों समकितवंत कहै अनुभौ कहानि, परजै प्रवान ज्ञान

नानाकार नट है । निरविकलप अविनस्वर दरब रूप, ग्यान ज्ञेय वस्तु सौं अव्यापक अघट है ॥१७

छठे पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोऊ मन्द कहै धर्म अधर्म आकास काल, पुद्गल जीव सब मेरो रूप जगमें । जानै न मरम निज मानै आपा पर वस्तु, बांधै दृढ़ करम धरम खोवै जग में । समकिती जीव सुद्ध अनुभौ अभ्यासै तातैं, पर कौ ममत्व त्याग करै पग पग में । अपने सुभाव में मगन रहै आठौं जाम, धारावाही पथिक कहावै मोखमग में ॥१८

सप्तम पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोऊ सठ कहै जेतौ ज्ञेयरूप परवांन, तेतौ ग्यान तातें कहौं अधिक न और है । तिहूं काल पर क्षेत्र व्यापी परनयो मानै, आपा न पिछानै ऐसी मिथ्या दृग दौर है । जैनमती कहै जीव सत्ता परवान ज्ञान, ज्ञेय सौं अव्यापक जगत सिरमौर है । ज्ञान की प्रभा में प्रतिबिंबित विविध ज्ञेय, जदपि तथापि थिति न्यारी न्यारी ठौर है ॥१९

अष्टम पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोऊ शून्यवादी कहै ज्ञेय के विनास होत, ज्ञान का विनाश होइ कहौ कैसे जीजिये । तातें जीवितव्यता की थिरता निमित्त सब, ज्ञेयाकार परिनामनि को नास कीजिये

सत्यवादी कहै भैया हूजे नाहीं खेद खिन्न,ज्ञेयसों विरचि ज्ञान भिन्न मानि लीजिये । ज्ञानकी शकतिसाधि अनुभौ दशा अराधि, करम को त्याग के परम रस पीजिये ॥२०

नवम पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोऊ क्रूर कहै काया जीव दोऊ एक पिंड, जब देह नसैगी तब ही जीव मरैगो । छाया को सो छल किधौं माया को सो परपंच, काया में समाइ फिर काया को न धरैगो ॥ सुधी कहै देह सों अव्यापक सदीव जीव,समै पाइ परको ममत्व परिहरैगो । अपने सुभाव आइ धारना धरामें धाइ,आपमें मगन ह्वैके आपा शुद्ध करैगो ॥२१

दोहा

ज्यों तन कंचुक त्यागसों, विनसे नांहि भुजंग ।
त्यों शरीर के नाशतें, अलख अखंडित अंग ॥ २२

दशम पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोऊ दुरबुद्धि कहै पहिले न हुतो जीव, देह उपजत अब उपज्यो है आइके । जोलों देह तोलों देहधारी फिर देह नसे, रहैगो अलख ज्योति ज्योति में समायके ॥ सद बुद्धि कहै जीव अनादि को देहधारी, जब ज्ञान होइगो कबहुं काल पाइके । तब ही सों पर तजि अपनो सरूप भजि, पावैगो परम पद करम नसाइके ॥२३

ग्यारहवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोउ पच्छपाती जीव कहैं ज्ञेयके आकार, परिनयौ ज्ञान तातैं चेतना असत है। ज्ञेयके नसत चेतना कौ नास ता कारन, आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है ॥ पंडित कहत ज्ञान सहज अखंडित है, ज्ञेयकौ आकार धरे ज्ञेय सौं विरत है। चेतना को नाश होत सत्ता को विनाश होय, याते ज्ञानचेतना प्रवान जीवतत्त है ॥२४

बारहवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोउ महामूरख कहत एक पिंडमांहि, जहांलौं अचित चित अंग लहलहे है। जोगरूप भोगरूप नानाकार ज्ञेय रूप, जेतेभेद कर्मके तेते जीव कहे है ॥ मतिमान कहै एक पिंड मांहि एक जीव, ताहि के अनन्त भाव अंस फैलि रहे है। पुग्गलसौं भिन्न कर्म जोग सौं अखिन्न सदा, उपजै विनसे थिरता सुभाव गहे है ॥२५

तेरहवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोउ एक छिनवादी कहै एक पिंड मांहि, एक जीव उपजत एक विनसतु है। जाही समै अंतर नवीन उतपति होय, ताही समै प्रथम पुरातन बसतु है ॥ सरवंग वादी कहै जैसे जलवस्तु एक, सोई जलविविध तरंगनि लसतु है। तैसे एक आतम दरव गुन परजैसौं, अनेकरूपी पै एकरूप दरसतु है

चौदहवे पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोऊ बाल,बुद्धि कहै ज्ञायक सकति जोलों, तोलों ज्ञान अशुद्ध जगत मध्य जानिये । ज्ञायक सकति काल पाइ मिटि जाइ जब,तब अविरोध बोध विमल बखानिये ॥ परम प्रवीन कहै ऐसी तो न बने बात, जैसे विन परगास सूरज न मानियें । तैसें विन ज्ञायक सकति न कहावे ज्ञान, यह तो न परोच्छ परतच्छ परवानिये ॥२७

स्याद्वाद की प्रशंसा । दोहा ।

इहविधि आतम ज्ञान हित, स्यादवाद परवान ।
जाके वचन विचारसों, मूरख होइ सुजान ॥२८

स्यादवाद आतम दशा, ता कारन बलवान ।
शिव साधक बाधा रहित,अखै अखंडित आन ॥२९

इति नाटकसमयसार विषे का स्याद्वाद द्वार समाप्त

साध्य साधक द्वार।

प्रतिज्ञा दोहा।

स्यादवाद अधिकार यह, कह्यौ अलप विस्तार।
अमृतचंद मुनिवर कहै, साधक साध्य दुवार ॥१॥

जोई जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरलघु, अभोगी अमूरतिक परदेशवंत है। उतपतिरूप नासरूप अविचल रूप, रतनत्रयादि गुण भेदसौं अनंत है। सोई जीव दरब प्रमान सदा एकरूप, ऐसौ शुद्ध निहचै सुभाव विरतंत है। स्याद्वाद मांहि साधि पद अधिकार कह्यौ, अब आगे कहिवेकौं साधक सिद्धंत है ॥२॥

जीव की साध्य साधक अवस्थाओं का वर्णन। दोहा।

साध्य शुद्ध केवल दसा, अथवा सिद्ध महंत।
साधक अविरत आदि बुध, छीन मोह परजंत ॥३॥

साधक अवस्था का स्वरूप। सवैया इकतीसा।

जाकौ अधो अपूरव अनिवृति करनकौ, भयौ लाभ हूई गुरु वचनकी बोहनी। जाकै अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अनादि मिथ्यात मिश्र समकित मोहनी। सातौं परकिति खपी किंवा उपसमी जाकै, जगी उर मांहि समकित कला सोहनी। सोई मोख साधक कहायौ ताकै सरवंग, प्रगटी सकति गुनथानक आरोहनी ॥४॥

सोरठा ।

जाको मुकति समीप, भई भवस्थिति घट गई ।
ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुकता वचन ॥५

सद्गुरु को मेघ की उपमा । दोहा ।

ज्यों वरषे वरषा समै, मेघ अखंडित धार ।
त्यों सद्गुरु वाणी खिरें, जगत जीव हितकार ॥ ६

धनसम्पति से मोह हटाने का उपदेश । सवैया तेईसा ।

चेतनजी तुम जागि विलोकहु,लाग रहे कहा माया के ताँई । आए कहींसों कहां तुम जाउगे, माया रहेगी जहाँ की तहांई ॥ माया तुहारी न जाति न पांति न, वंस की वेल न अंस की झांई । दासी किए विन लातनि मारत, ऐसी अनीति न कीजे गुंसाई ॥७

दोहा ।

माया छाया एक है, घटे बढ़े छिन माहि ।
इन की संगति जे लगे,तिनहिं कहूँ सुख नांहि ॥८

कुटुम्बियों आदि से मोह हटाने का उपदेश ।

लोगनिसों कछु नातो न तेरो,न तोसों कछुइ लोगनि कौ नातो । ए तो रहे रमि स्वारथ के रस, तू परमारथ के रस मातो ॥ ए तन सों तन में तिन से जड़, चेतन तू तनसों नित हांतो । होहु सुखी अपनो वल फेरिकें, तोर के राग विरोध कौ तांतो ॥६

इन्द्रादि उच्चपद की चाह अज्ञानता है।

जे दुरबुद्धी जीव, ते उतंग पदवी चहैं।
जे समरसी सदीव, तिन्हकौं कछू न चाहिये॥१०॥

समताभाव मात्र ही में सुख है।

हांसी में विषाद बसै विद्या में विवाद बसै, काया में मरन गुरु-वर्त्तन में हीनता। सुचि में गिलानि बसै प्रापति में हानि बसै, जै में हारि सुन्दर दशा में छबि-छीनता॥ रोग बसै भोग में संयोग में वियोग बसै, गुन में गरब बसै सेवा मांहि दीनता। और जग रीति जेती गर्भित असाता सेती, साता की सहेली है अकेली उदासीनता॥११॥

जिस उन्नतिकी फिर अवनति है वह उन्नति नहीं है।

जिहि उतंगचढ़ि फिर पतन, नहि उतंग वह [illegible]।
जिहि सुखअन्तर दुख बसै, सो सुख है [illegible]॥१२॥

जो विलसै सुख संपदा, गये [illegible] दुख होइ।
जो धरती बहु तृनवती, जरै अगनिसौं सोइ॥१३॥

श्रीगुरु के उपदेश में ज्ञानी और [illegible]

सबद मांहि सतगुरु कहै, प्रगट रूप [illegible]।
सुनत विचच्छन सरदहै, [illegible]॥१४॥

ऊपर के दोहे का [illegible]

जैसे काहू नगर के वासी द्वै पुरुष भूले, [illegible]

सुष्ट एक दुष्ट उरको। दोउ फिरें पुर के समीप परे उवट में, काहू और पथिक से पूछो पन्थ पुर को॥ सौंनो कहै तुम्हारो नगर है तुम्हारे ढिग, मारग दिखावे समुझावे खोज पुर को। एते पर सुष्ट पहिचाने पै न माने दुष्ट हिरदे प्रवान तैसे उपदेश गुरु को॥ १५

सवैया इकतीसा।

जैसे काहू जंगल में पावसको समें पाइ, अपने सुभाव महामेघ वरषतु है। आमल कषाय कटु तीक्षन मधुर खार, तैसो रस बाढ़े जहां जैसो दरखतु है॥ तैसें ज्ञानवंत नर ज्ञानको बखान करे, रस को उमाहू है न काहू परवतु है। वहै धुनि सुनि कोउ गहै कोउ रहै सोइ, काहू कै विषाद होइ कोउ हरषतु है॥१६

दोहा।

गुरु उपदेश कहा करे, दुराराध्य संसार।
वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार॥१७

पांच प्रकार के जीव।

डूंघा प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रोचक सुद्ध।
ऊंघा दुरबुद्धी विकल, घूंघा घोर अवुद्ध॥१८

डूंघा जीव का लक्षण।

जाकी परम दशा विषै, करम कलंक न होइ।

डूंघा अगम अगाध पद, वचन अगोचर सोइ ॥१९

चूंघा जीव का लक्षण।

जे उदास ह्वै जगत सों, गहै परम रस प्रेम।
सो चूंघा गुरु के वचन, चूंघै बालक जेम ॥२०

सूंघा जीव का लक्षण।

जो सुवचन रुचि सों सुनै, हिए दुष्टता नांहि।
परमारथ समुझै नहीं, सो सूंघा जगमांहि ॥२१

ऊंघा जीव का लक्षण।

जाको विकथा हित लगै, आगम अंग अनिष्ट।
सो ऊंघा विषयी विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट ॥२२

घूंघा जीव का लक्षण।

जाके वचन श्रवण नहिं, नहिं मन सुरति विराम।
जड़ता सों जड़वत भयो, घूंघा ताको नाम ॥२३

पांच प्रकार के जीवों का विशेष वर्णन। (चौपाई)

डूंघा सिद्ध कहै सब कोऊ, सूंघा ऊंघा मूरख दोऊ।
घूंघा घोरविकल संसारी, चूंघा जीव मोख अधिकारी ॥२४

चूंघा जीव का वर्णन। (दोहा)

चूंघा साधक मोख को, करै दोष दुख नास।
लहै पोख संतोष सों, बरनों लच्छन तास ॥२५
कृपा प्रसम संवेग दम, अस्ति भाव वैराग।
ए लच्छन जाके हिये, सप्त व्यसन को त्याग ॥२६

सप्त व्यसन के नाम । चौपाई ।

जूवा आमिष मदिरा दारी, आखेटक चोरी पर नारी।
एई सातव्यसन दुखदाई,दुरितमूल दुर्गतिके भाई ॥२७॥

व्यसनों के द्रव्य और भाव भेद ।

दर्वित ये सातों व्यसन, दुराचार दुखधाम ।
भावित अन्तर कल्पना, मृषा मोह परिणाम ॥२८॥

सप्त भाव व्यसनों का स्वरूप। सवैया इकतीसा ।

अशुभमें हारि शुभ जीति यह दूत कर्म,देहकी मगन-ताई यहै माँस भखिवो । मोह की गहलसों अजान यहै सुरापान,कुमति की रीति गनिकाकों रस चखिवो ॥ निरदे व्है प्राणघात करिवो यहहै शिकार, परनारी संग परबुद्धि को परखिवो । प्यारसों पराई सोंज गहिवेकी चाह चोरी, येई सातों व्यसन विडारैं ब्रह्म लखिवो ॥२९॥

साधक जीवका पुरुषार्थ। दोहा ।

विसन भाव जामें नहीं, पौरुष अगम अपार ।
किये प्रकट घटसिंधु मथि, चौदह रतन उदार ॥३०॥

चौदह भाव रत्न । सवैया इकतीसा ।

लक्ष्मी सुबुद्धि अनुभूति कौउस्तुभ मणि, वैराग कलप वृक्ष शंख सुवचन है । ऐरावत उद्यम प्रतीति रंभा उदै विष, कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद घन है ॥ ध्यान चाप

भ्रम रीति मदिरा विवेक वैद्य, शुद्धभाव चन्द्रमा तुरंगरूप मन है। चौदह रतन ये प्रकट होइ जहां तहां, ज्ञान के उदोत घट सिन्धु को मथन है ॥३१॥

चौदह रत्नों में कौन हेय और कौन उपादेय है। दोहा।

किये अवस्था में प्रकट, चौदह रतन रसाल।
कछु त्यागे कछु संग्रहै, विधि निषेध की चाल ॥३२॥
रमा शंख विष धनु सुरा, वैद्य धेनु हय हेय।
मणि रंभा गज कल्पतरु, सुधा सोम आदेय ॥३३॥
इह विधि जो परभाव विष, वमै रमै निजरूप।
सो साधक शिवपंथ को, चिद्विवेक चिद्रूप ॥३४॥

मोक्ष मार्गके साधक जीवोंकी अवस्था। कवित्त।

ज्ञान दृष्टि जिन्हके घट अन्तर, निरखै दरब सुगुन परजाइ। जिन्हके सहजरूप दिन दिन प्रति, स्याद्वाद साधन अधिकाइ। जे केवलिप्रणीत मारग मुख, चित्त चरन राखैं ठहराइ। ते प्रवीन करि खीन मोह मल, अविचल होइ परमपद पाइ ॥३५॥

शुद्ध अनुभवसे मोक्ष और मिथ्यात्वसे संसार होता है। सवैया इकतीसा।

चाकसो फिरत जाको संसार निकट आयो, पायो जिन सम्यक मिथ्यात नाश करिके। निरदुंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिन, कीनी मोखकारन अवस्था ध्यान धरिकै।

सोई शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयो, गयो ताको करम भरम रोग गरिके । मिथ्यामति अपनो सरूप न पिछाने तातें, डोले जग जाल में अनन्त काल भरिके ॥३६

आतम अनुभव का परिणाम ।

जे जीव दरवरूप तथा परजायरूप, दोऊ नै प्रमाण वस्तु शुद्धता गहत है । जे अशुद्ध भावनिके त्यागी भये सरवथा, विषै सों विमुख ह्वै विरागता वहत हैं ॥ जे जे ग्राह्यभाव त्यागभाव दोउ भावन कों, अनुभौ अभ्यासविषै एकता करतु है । तेई ज्ञान क्रिया के आराधक सहज मोख मारग के साधक अबाधक महतु हैं ॥३७

ज्ञान क्रिया का स्वरूप । दोहा ।

विनसि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोख ।
ता परिणतिकों बुध कहैं, ज्ञान क्रिया सो मोख ॥३८

सम्यक्त्व से क्रमशः ज्ञान की पूर्णता होती हैं ।

जगी शुद्ध समकित कला, बगी मोक्षमग जोइ ।
वहे करम चूरन करै, क्रम क्रम पूरन होइ ॥३९
जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम ।
जैसे जो दीपक धरे, सो उजियारा धाम ॥४०

सम्यक्त्वकी महिमा ।

जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयो, भयो पर-

भास सुद्ध समकित भान कौ । जाकी मोह निद्रा घटी ममता पलक फटी, जान्यौ निज मरम अवाची भगवान कौ ॥ जाको ज्ञान तेज वग्यो उद्यम उदार जग्यो, लग्यो सुख पोख समरस सुधा पान को । ताही सुविचछन कौ संसार निकट आयो, पायो तिन मारग सुगम निरवान कौ ॥८१॥

सम्यक्त्व ज्ञान की महिमा ।

जाके हिरदे में स्याद्वाद साधना करत, सुद्ध आतमा कौ अनुभव प्रगट भयौ है । जाके संकलप विकलप के विकार मिटि, सदा काल एकीभाव रस परिनयौ है ॥ जिनि बंध विधि परिहार मोख अंगीकार, ऐसौ सुविचार पक्ष सोउ छाँडि दयो है । जाको ज्ञान महिमा उदोत दिन दिन प्रति सोई भवसागर उलंघ पार गयौ है ॥ ८२ ॥

अनुभव में नय पक्ष नहीं है ।

अस्तिरूप नासति अनेक एक थिर रूप, अथिर इत्यादि नाना रूप जीव कहिये । दीसै एक नैकी [illegible] न अपर दूजी, नैकौं न दिखाइ वाद विवाद में रहिये ॥ थिरता न होइ विकलप की तरंगनि में, चंचलता बढ़ै अनुभौ दशा न लहिये । तातें जीव अचल अबाधित अखंड एक ऐसा पद साधि के समाधि सुख गहिये ॥ [illegible]

आत्मा द्रव्य क्षेत्र काल भाव से [illegible]

जैसे एक पाकौ आम्र फल ताके चार अंस [illegible]

गुठली छिलक जब मानिये । यों तो न बनें पै ऐसें बनें जैसे वहै फल, रूप रस गंध फास अखंड प्रवानिये ॥ तैसें एक जीव कौ दरव क्षेत्र काल भाव, अंश भेद करि भिन्न भिन्न न बखानिये । दर्वरूप क्षेत्र रूप काल रूप भाव रूप, चारों रूप अलख अखंड सत्ता मानिये ॥ ४४

ज्ञान और ज्ञेय का स्वरूप ।

कोऊ ज्ञानवान कहे ज्ञान तो हमारो रूप, ज्ञेय षट दर्व सो हमारो रूप नाँहीं है । एकनैं प्रवान ऐसें दूजी अब कहों जैसे, सरस्वती अक्षर अरथ एक ठांही है ॥ तैसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम ज्ञेयरूप सकति अनंत मुझ पाही है । ता कारण वचन के भेद भेद कहै कोऊ, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय को विलास सत्ता माँही है ॥ ४५

स्वपर प्रकासक सकति हमारी, तातें वचन भेद भ्रम भारी । ज्ञेय दशा द्विविधा परगासी, निजरूपा पररूपा भासी ॥४६

दोहा ।

निज रूपा आतम सकति, पर रूपा परवस्तु ।
जिन लख लीनो पेच यह, तिनि लखलियो समस्त ॥४७

स्याद्वाद में जीव का स्वरूप ।

करम अवस्था में अशुद्धसों विलोकियत, करम कलंकसों रहित शुद्ध अंग है । उभे नैं प्रमान समकाल शुद्धाशुद्धरूप,

जग मांही जगमगी है। ज्ञायक प्रभा में नाना ज्ञेय की अवस्था धरि,अनेक भई पै एकता के रस पगी है॥ याही भांति रहेगी अनन्त काल परजंत, अनन्त शकति फोरि अनंत सौं लगी है। नरदेह देवल में केवल सरूप सुद्ध,ऐसी ज्ञान ज्योति की सिखा समाधि जगी है ॥५१

अमृत चन्द्रकला के तीन अर्थ। सवैया इकतीसा।

अक्षर अरथ में मगन रहै सदा काल, महासुख देवा जैसी सेवा काम गविकी। अमल अबाधित अलख गुन गावना है, पावनां परमसुद्ध भावना है भविकी॥ मिथ्यात तिमिर अपहारा वर्द्धमान धारा,जैसी उभै जाम लौं किरन दीपे रवि की। ऐसी है अमृतचन्द्र कला त्रिधा रूप धरै, अनुभौ दशा गरंथ टीका बुद्धि कवि की ॥५२

दोहा।

नाम साध्य साधक कह्यो, द्वार द्वादसम ठीक।
समयसार नाटक सकल, पूरन भयो सटीक॥ ५३

ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकार की आलोचना। निषेध।

अब कवि निज पूरव दशा, कहै आपसों आप।
सहज हरष मनमें धरै, करै न पश्चाताप॥ ५४

सवैया इकतीसा।

जो मैं आपा छांडि दीनों पररूप गहि लीनो,कीनों न

बसेरौ तहाँ जहाँ मेरो थल है। भोगनिको भोगि व्है करम को कर्ता भयो,हिरदे हमारे राग द्वेष मोह मल है॥ ऐसी विपरीति चाल भई जो अतीत काल, सो तो मेरी क्रिया की ममत्व कौ फल है। ज्ञान दृष्टि भासी भयो क्रिया सों उदासी वह,मिथ्या मोह निद्रा में सुपन कोसो छल है ॥५५

दोहा।

अमृतचन्द मुनिराज कृत, पूरन भयो गिरन्थ।
समयसार नाटक प्रगट, पंचमगति को पंथ ॥ ५६

इति समयसार नाटक ग्रन्थ अमृतचन्द आचार्य कृत सम्पूर्ण

चतुर्दश गुणस्थानाधिकार

मंगलाचरण। दोहा।

जिनप्रतिमा जिनसारखी, नमे बनारसि ताहि।
जाके भगति प्रभाव सों, कीनो ग्रंथ निबाहि ॥१

जिन प्रतिबिम्ब का माहात्म्य।

जाके मुख दरश सों भगत के नैननि कों, थिरता की बानी बढ़ै चंचलता विनसी। मुद्रा देखि केवली की मुद्रा याद आवे जहाँ, जाके आगे इन्द्रकी विभूति दीसे तिनसी जाको जस जपत प्रकाश जगे हिरदे में,सोई शुद्ध मति होइ

हुती जो मलिन सी। कहत बनारसी सुमहिमा प्रकट जाकी सोहै जिनकी छवि सुविद्यमान जिनसी ॥ २

जिन मूर्ति पूजकों की प्रशंसा।

जाके उर अन्तर सुदृष्टि की लहरि लसी, विनसी मिथ्यात मोह निद्रा की ममारखी। सैली जिनशासन की फैली जाके घट भयो, गरब को त्यागि पट दर्ब को पारखी। आगम के अच्छर पड़े हैं जाके श्रवण में, हिरदै भंडार में समानी वाणी आरखी। कहत बनारसी अलप भव थिति जाकी, सोई जिन प्रतिमा प्रमानै जिन सारखी ॥३

चौपाई।

जिन प्रतिमा जन दोप निकन्दे, सीस नमाइ बनारसि वन्दे।
फिरि मनमाँहि विचारे ऐसा, नाटक ग्रंथ परमपद जैसा ॥४
परम तत्व परचै इस मांही, गुण थानककी रचना नांही।
यामें गुणथानक रस आवे, सो गरन्थ अति शोभा पावे ।५

दोहा।

यह विचारि संक्षेपसों, गुणथानक रस चोज।
वरनन करे बनारसी, कारण शिवपथ खोज ॥ ६
नियत एक विवहार सों, जीव चतुर्दश भेद।
रंग जोग बहुविधि भयो, ज्यूं पट सहज सुफेद ॥७

चौदह गुण स्थानों के नाम।

प्रथम मिथ्यात दूजो सासादन तीजो मिश्र, चतुर्थ

अव्रत पंचमो व्रत रंच है । छट्टो परमत्त नाम सातमों अपरमत्त, आठमो अपूरवकरण सुख संच है ॥ नौमो अनिवृत्ति भाव दशमो सूक्षम लोभ, एकादशमों सु उपशांत मोह वंच है । द्वादशमों चीण मोह तेरहों संयोगी जिन, चौदहों अजोगी जाकी थिति अंक पंच है ॥ ८

मिथ्यात्व गुणस्थान का वर्णन ।

वरने सब गुन थान के, नाम चतुर्दश सार ।
अब वरनों मिथ्यात के, भेद पंच परकार ॥ ९

मिथ्यात्व गुणस्थान में पांच मिथ्यात्व का उदय है ।

प्रथम एकांत नाम मिथ्यात अभिग्रहीत, दूजो विपरीत अभिनिवेसिक गोत है । तीजो विनै मिथ्यात अनाभिग्रह नाम जाको, चौथो संशै जहां चित भौंरको सो पोत है ॥ पंचमो अज्ञान अनाभोगिक गहल रूप, जाके उदय चेतन अचेतनसो होत है । येई पांचों मिथ्यात जीव कों जगमें भ्रमावे, इन्हके विनास समकित को उदोत है । १०

एकान्त मिथ्यात्व का स्वरूप । दोहा ।

जो एकांत नय पक्ष गहि, छकै कहावे दक्ष ।
सो एकंतवादी पुरुष, मृषावंत परतक्ष ॥ ११

विपरीत मिथ्यात्व का स्वरूप ।

ग्रंथ उकति पथ उथपि जो, थापै कुमत स्वकीउ ।
सुजस हेतु गुरुता गहै, सो विपरीती जीउ ॥ १२

विनय मिथ्यात्व का स्वरूप।

देव कुदेव सुगुरु कुगुरु, गिने समान जु कोइ।
नमें भगतिसों सबनिको, विनय मिथ्याती सोइ ॥१३

संशय मिथ्यात्व का स्वरूप।

जो नाना विकलप गहे, रहे हिए हैरान।
थिर व्है तत्व न सद्दहैं, सो जिय संशयवान ॥१४

अज्ञान मिथ्यात्व का स्वरूप।

जाको तन दुख दहलसों, सुरति होत नहिं रंच।
गहलरूप वरते सदा, सो अज्ञान तिरयंच ॥ १५

मिथ्यात्व के दो भेद।

पंच भेद मिथ्यात के, कहे जिनागम जोइ।
सादि अनादि स्वरूप अब, कहों अवस्था दोइ ॥ १६

सादि मिथ्यात्व का स्वरूप।

जो मिथ्यादल उपसमें, ग्रन्थ भेद बुध होइ।
फिर आवे मिथ्यात्व में, सादि मिथ्याती सोइ ॥१७

अनादि मिथ्यात्व का स्वरूप।

जिन गरंथि भेदी नहीं, ममता मगन सदीव।
सो अनादि मिथ्यामती, विकल बहिर्मुख जीव ॥१८

सासादन गुण स्थान का वर्णन करने की प्रतिज्ञा।

कह्यो प्रथम गुण थान यह, मिथ्यामत अभिधान।

करूं अलप बरनन अबैं, सासादन गुण थान ॥१९

सासादन गुणस्थान का स्वरूप।

जैसैं कोऊ क्षुधित पुरुप खाइ खीर खांड, वौन करे पीछे को लगार स्वाद पावे है । तैसे चढि चौथे पांचए कै छट्ठे गुन थान, काहु उपसमी को कपाय उदै आवे है ॥ ताही समै तहाँ सों गिरें प्रधानदशात्यागि, मिथ्यात अवस्था को अधोमुख ह्वै धावे है । बीच एक समै वा छ आवली प्रवांन रहै, सोई सासादन गुनथानक कहावे है ॥ २०

तीसरा गुणस्थान कहने की प्रतिज्ञा।

सासादन गुन थान यह, भयो समापत बीय ।
मिश्रनाम गुन थान अब, वरनन करूँ तृतीय ॥ २१

तृतीय गुणस्थान का स्वरूप।

उपसमी समकिती कै तौ सादि मिथ्यामती, दुहुनिकौं मिश्रित मिथ्यात आइ गहै है । अनंतानुबंधी चौकरीकौ उदै नाँही जामें मिथ्यात समै प्रकृति मिथ्यात न रहै है ॥ जहाँ सद्दहन सत्यासत्य रूप समकाल, ज्ञान भाव मिथ्याभाव मिश्र धारा बहै है । जाकी थिति अंतर मुहूरत उभय रूप, ऐसौ मिश्र गुणथान आचारज कहै है ॥२२

चौथे गुणस्थानका वर्णन करने की प्रतिज्ञा

मिश्र दशा पूरण भई, कही यथामति भाखि ।

अब चतुर्थ गुणस्थान विधि, कहौं जिनागम साखि ॥२३

चौथे गुणस्थान का वर्णन । सवैया इकतीसा ।

केई जीव समकित पाइ अर्ध पुद्गल, परावर्त काल तांई चोखे होइ चितके । केई एक अंतर मुहूरत में गंठि भेदि, मारग उलंघि सुख वेदे मोख वित के ॥ तातें अंतर मुहूरत सों अर्द्ध पुद्गल लों, जेते समै होहिं तेते भेद समकित के । जाही समै जाको जब समकित होइ सोई, तब ही सों गुन गहे दोष दहे इतके ॥ २४

दोहा ।

अथ अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करन करे जो कोइ ।
मिथ्या गंठि विदारि गुण, प्रगटे समकित सोइ ॥२५

सम्यक्त्व के आठ विवरण ।

समकित उतपति चिन्ह गुन, भूषन दोष विनास ।
अतीचार जुत अष्ट विधि, वरनौं विवरण तास ॥२६

सम्यक्त्व का स्वरूप । चौपाई ।

सत्य प्रतीति अवस्था जाकी, दिनदिन रीति गहै समताकी ।
छिन छिन करे सत्यको साको, समकित नाम कहावे ताको २७

सम्यक्त्व की उत्पत्ति ।

कै तौ सहज सुभाउकै, उपदेशे गुरु कोइ ।
चहुँ गति सैनी जीवको, सम्यक्दर्शन होइ ॥ २८

सम्यक्त्वके चिन्ह।

आपा परचे निज विषें, उपजे नहिं संदेह।
सहज प्रपंचरहित दशा, समकित लक्षण एह ॥२९

सम्यक्त्व के आठ गुण।

करुना वच्छल सुजनता, आतम निंदा पाठ।
समता भगति विरागता, धरम राग गुन आठ ॥३०

सम्यक्त्व के पांच भूषण।

चित प्रभावना भावजुत, हेय उपादेय वानि।
धीरज हरष प्रवीनता, भूषन पंच बखानि ॥३१

सम्यग्दर्शन पच्चीस दोषवर्जित होता है।

अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष।
तीन मूढता संजुगत, दोष पचीसों एष ॥३२

आठ महामद के नाम।

जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार।
इनको गरब जु कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार ॥३३

आठ मलों के नाम।

आशंका अस्थिरता वांछा, ममता दृष्टि दशा दुरगंछा।
वत्सलरहित दोष पर भाषे, चित प्रभावनामांहि न राखे ॥३४

छह अनायतन।

कुगुरु कुदेव कुधर्म-धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म।

इनकी करे सराहना, यह पडायतन कर्म ॥३५

तीन मूढ़ता के नाम और पचीस दोष ।

देवमूढ़ गुरु मूढ़ता, धर्ममूढ़ता पोष ।
आठ आठ षट तीन मिलि, ए पचीस सब दोष ॥३६

पांच कारणों से सम्यक्त्व का विनाश होता है ।

ज्ञान गर्व मति मंदता, निठुर वचन उद्गार ।
रुद्रभाव आलस दसा, नास पंच परकार ॥ ३७

सम्यग्दर्शन के पांच अतिचार ।

लोक हास भय भोग रुचि, अग्र सोच थिति चेव ।
मिथ्या आगम की भगति, मृषा दरसनी सेव ॥ ३८

चौपाई ।

अतीचार ए पंच प्रकारा, समल करहिं समकित की धारा ।
दूषन भूषन गति अनुसरनी, दसा आठ समकितकी वरनी ३९

मोहनीय कर्मकी सात प्रकृतियों के नाम ।

प्रकृति सात अब मोह की, कहूँ जिनागम जोह ।
जिनको उदै निवारिके, सम्यकदरशन होइ ॥४०

मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के नाम । सवैया इकतीसा ।

चारित मोहकी चारि मिथ्यात की तीन तामें, प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी । बीजी महामान रस भीजी मायामई तीजी, चौथी महालोभ दसा परिग्रह पोहनी ॥

पांचई मिथ्यातमति छट्ठी मिश्रपरिनति, सातई समै प्रकृति समकित मोहनी। एई षट विग वनितासी एक कुतियासी, सातों मोह प्रकृति कहावैं सत्ता रोहनी ॥४१

सम्यक्त्वों के नाम। छप्पय।

सात प्रकृति उपसमहि, जासु सो उपसम मंडित। सात प्रकृति छय करन-हार छायिकी अखंडित॥ सात मांहि कछु खिपहिं, कछुक उपसम करि रक्खे। सो छय उपसम वंत, मिश्र समकित रस चक्खे। षट प्रकृति उपशमै वा खपै,अथवा छय उपसम करे। सातईं प्रकृति जाके उदय, सो वेदक समकित धरे॥४२

सम्यक्त्व के नव भेदों का वर्णन।

छय उपसम वरते त्रिविधि, वेदक चार प्रकार।
छायक उपसम जुगलयुत,नौधा समकित धार॥४३

क्षयोपशम सम्यक्त्व के तीन भेदो का वर्णन।

चारि खिपहि त्रय उपसमहि,पन छय उपसम दोइ।
छै षट उपसम एक यों,छय उपसम त्रिक होइ॥४४

वेदक सम्यक्त्व के चार भेद।

जहां चारि प्रकृती खिपहिं, द्वै उपसम इक वेद।
छय उपसम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद॥४५
पंच खिपै इक उपसमै, इक वेदै जिहि ठौर।

सो छय-उपसम वेदकी, दशा दुतिय यह और ॥४६

छय पट वेदं एक जो, छायक वेदक सोइ ।

पट उपसम इक प्रकृति विद, उपसमवेदक होइ ॥४७

क्षायिक व उपशमसम्यक्त्वका स्वरूप न कहनेका कारण ।

उपसम छायक की दशा, पूरव पट पद मांहि ।

कही प्रकट अब पुनरुकति, कारन वरनी नांहि ॥४८

नव प्रकार के सम्यक्त्वों का विवरण ।

छय उपसम वेदक खिपक, उपसम समकित चारि ।

तीन चारि इक इक मिलत, सब नव भेद विचारि ॥४९

प्रतिज्ञा । सोरठा ।

अब निहचे विवहार, अरु सामान्य विशेषविधि ।

कहों चारि परकार, रचना समकित भूमिकी ॥५०

सम्यक्त्व के चार प्रकार ।

मिथ्यामति गंठि भेदि जगी निरमल ज्योति, जोगसों अतीत सोतो निहचे प्रमानिये । वहै दुन्द दसासों कहावे जोग मुद्रा धरे, मति श्रुत ज्ञान भेद विवहार मानिये ॥ चेतना चिहन पहिचान आपा पर वेदे, पौरुष अलप ताते समान वखानिये । करे भेदाभेदको विचार विसताररूप, हेयगेय उपादेयसों विशेष जानिये ॥५१

चतुर्थ गुणस्थान के वर्णन का उपसंहार ।

थिति सागर तेतीस, अन्तरमूहूरत एक वा ।

अविरत समकित रीति, यह चतुर्थ गुन थान इति ॥५२

पंचम गुणस्थान।

अब वरनूं इकईस गुण, अरु बावीस अभक्ष।
जिनके संग्रह त्यागसों, सोभै श्रावक पक्ष ॥ ५३

श्रावक के २१ गुण।

लज्जावन्त दयावन्त प्रसन्त प्रतीतवन्त, पर दोष को ढकैया परउपकारी है। सौमदृष्टि गुणग्राही गरिष्ट सबको इष्ट, शिष्ट-पक्षी मिष्टवादी दीरघ विचारी है ॥ विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, न दीन न अभिमानी मध्य विव-हारी है। सहजै विनीत पाप क्रिया सों अतीत ऐसो, श्रावक पुनीत इकवीस गुण धारी है ॥ ५४

बाईस अभक्ष्य।

ओरा घोर वरा निशि भोजन, बहुबीजा बैंगन सन्धान।
पीपर वर ऊमर कठूंवर, पाकर जो फल होइ अजान॥
कन्दमूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरा पान।
फल अति तुच्छ, तुसार चलित रस, जिनमत ए बाईस अखान ॥ ५५

प्रतिमा दोहा।

अब पंचम गुणथानकी, रचना वरनूं अल्प।
जामें एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प ॥५६

ग्यारह प्रतिमाओं के नाम ।

दर्शन विशुद्धकारी बारह विरतधारी, सामायक-
चारी पर्व प्रोषध विधि वहै । सचित्त को परिहारी दिवा
अपरस नारी, आठों जाम ब्रह्मचारी निरारम्भी व्है रहै ॥
पाप परिग्रह छंडे पाप की न शिक्षा मंडे, कोऊ याके
निमित्त करे सो वस्तु न गहै । ऐते देशव्रत के धरैया सम-
किती जीव, ग्यारह प्रतिमा तिन्हें भगवन्त जी कहै ॥५७

प्रतिमा का स्वरूप ।

संयम अंश जग्यो जहाँ, भोग अरुचि परिणाम ।
उदय प्रतिज्ञा को भयो, प्रतिमा ताको नाम ॥ ५८

दर्शन प्रतिमा का स्वरूप ।

आठ मूलगुण संग्रहै, कुविसन क्रिया न कोइ ।
दर्शन गुन निर्मल करे, दर्शन प्रतिमा सोइ ॥ ५९

व्रत प्रतिमा का स्वरूप ।

पंच अणुव्रत आदरे, तीन गुणव्रत पाल ।
शिक्षाव्रत चारों धरे, यह व्रत प्रतिमा चाल ॥ ६०

सामायिक प्रतिमा का स्वरूप

दर्व भाव विधि संजुगत, हिये प्रतिज्ञा टेक ।
तजि ममता समता ग्रहै, अंतर मुहूरत एक ॥ ६१
जो अरि मित्र समान विचारै, आरत रौद्र कुध्यान निवारै ।

संयम सहित भावना भावे, सो सामायिकवंत कहावे ॥ ६२

चौथ प्रतिमा का स्वरूप ।

सामायिक की सी दशा, चार पहर लौं होइ ।
अथवा आठ पहर रहे, प्रोषध प्रतिमा सोइ ॥ ६३

पांचवीं प्रतिमा का स्वरूप ।

जो सचित्त भोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर ।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर ॥ ६४

छठी प्रतिमा का स्वरूप ।

जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पाले, तिथि आये निशि दिवस संभाले ।
गहि नौवाडि करैं व्रत रक्षा, सो षट प्रतिमा साधक अक्षा ॥ ६५

सातवीं प्रतिमा का स्वरूप ।

जो नववाडि सहित विधि साधे, निशिदिन ब्रह्मचर्य आराधे ।
सो सप्तम प्रतिमा धर ज्ञाता, शीलशिरोमनि जगत विख्याता ॥

नव वाड़ि के नाम ।

तिय थल वास प्रेम रुचि निरखन, दे परोक्ष भाखें मधु बैन । पूरब भोग केलि रस-चिन्तन, गुरु आहार लेत चित चैन । करि सुचि तन शृंगार बनावत, तिय परजंक मध्य सुख सैन । मनमथ कथा उदर भरि भोजन, ये नव वाडि जान मत जैन ॥ ६७

आठवीं प्रतिमा का स्वरूप ।

जो विवेक विधि आदरे, करे न पापारंभ ।

सो अष्टम प्रतिमा धनी, कुगति जिंलै रनथंभ ॥६८

नवमी प्रतिमा का स्वरूप ।

जो दशधा परिग्रह कौं त्यागी, सुख संतोष सहित वैरागी ।

समरस संचित किंचितग्राही सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही ६९

दसमी प्रतिमा का स्वरूप ।

पर कौं पापारंभ को, जो न देइ उपदेश ।

जो दशमी प्रतिमा सहित, श्रावक विगत कलेश ॥७०

ग्यारवी प्रतिमा का स्वरूप ।

जो सुछंद वरतै तजि डेरा, मठ मंडप महिं करै बसेरा ।

उचित आहार उदंड विहारी, सो एकादश प्रतिमाधारी७१

प्रतिमाओं के सम्बन्ध में मुख्य उल्लेख ।

एकादश प्रतिमा दशा, कही देशव्रत माहिं ।

वही अनुक्रम मूलसौं, गहौ सु छूटे नाहिं ॥ ७२

प्रतिमाओं की अपेक्षा श्रावकों के भेद ।

षट प्रतिमा ताँई जघन, मध्यम नव पर्यन्त ।

उत्तम दशमी ग्यारमी, इति प्रतिमा विरतंत ॥ ७३

पांचवें गुण स्थान का काल ।

एक कोटि पूरब गिनि लीजे, तामें आठ वरप घट कीजे ।

यह उत्कृष्ट काल थिति जाकी, अन्तर मुहूर्त्त जघन्य दशाकी ७४

एक पूर्व का प्रमाण ।

सत्तर लाख किरोड़ मित, छप्पन सहस किरोड़ ।

ऐते बरस मिलाइ कें, पूरब संख्या जोड़ ॥ ७५

अन्तर्मुहूर्त का मान। दोहा।

अंतर्मुहूरत द्वै घरी, कछुक घाटि उतकिष्ट।
एक समय एकावली, अंतरमुहूर्त कनिष्ट ॥७६

छठे गुणस्थान का वर्णन। प्रतिज्ञा। दोहा।

यह पंचम गुनथानकी, रचना कही विचित्र।
अब छट्ठे गुनथान की, दसा कहूं सुन मित्र ॥७७

छठे गुणस्थानका स्वरूप।

पंच प्रमाद दशा धरै, अट्ठाइस गुनवान।
थविरकल्पि जिनकल्पिजुत, है प्रमत्त गुनथान ॥७८

पांच प्रमादो के नाम। दोहा।

धर्मराग विकथा वचन, निद्रा विषय कषाय।
पंच प्रमाद दशा सहित, परमादी मुनिराय ॥७९

साधु के अट्ठाईस मूल गुण। सवैया इकतीसा।

पंच महाव्रत पालै पंच समिति संभालै, पञ्च इंद्री जीति भयौ भोगी चित चैनकौ। पट आवश्यक क्रिया दर्वित भावित साधै, प्रासुक धरामैं एक आसन है सैनकौ॥ मंजन न करै केश लुंचै तन वस्त्र मुंचै, त्यागै दंतवन पै सुगंध स्वास वैन कौ। ठाड़ौ कर से अहार लघुभुंजी एक बार, अट्ठाइस मूलगुनधारी जती जैनकौ ॥८०

पंच अणुव्रत और पंच महाव्रत का स्वरूप।

हिंसा मृपा अदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज।
किंचित त्यागी अनुव्रती, सब त्यागी मुनिराज ॥८१

पंच समितिका स्वरूप। दोहा।

चलैं निरखि भाखैं उचित,भखैं अदोष अहार।
लेइ निरखि डारैं निरखि, समिति पंच परकार ॥८२

छय आवश्यक। दोहा।

समता वंदन थुति करन, पडिकौनो सज्झाव।
काउसग्ग मुद्रा धरन, षडावसिक ये भाव ॥८३

स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधुओंका स्वरूप। सवैया इकतीसा

थविरकलपि जिनकलपि दुविध मुनि, दोऊ वनवासी दोऊ नगन रहतु हैं। दोऊ अठाईस मूलगुनके धरैया दोऊ, सरव त्यागी व्है विरागता गहतु हैं ॥ थविरकलपि ते जिन कै शिष्य साखा होइ,बैठिकैं सभामें धर्मदेसना कहतु हैं। एकाकी सहज जिनकलपि तपस्वी घोर, उदै की मरोरसौं परिसह सहतु हैं ॥८४

वेदनीय कर्म जनित ग्यारह परिपह। सवैया इकतीसा।

ग्रीषम में धूपथित सीत में अकंप चित,भूखैं धरैं धीर प्यासै नीर न चहतु हैं। डंसमसकादिसों न डरैं भूमि सैन करैं, वध बंध विथामें अडोल ह्वै रहतु है ॥ चर्या दुख

भरैं तिन फाससौं न थर हरैं, मल दुरगंधकी गिलानि न गहतु हैं। रोगनिकौ न करैं इलाज ऐसो मुनिराज, वेदनी के उदैं ये परीसह सहतु हैं ॥ ८५

चारित्रमोहजनित सात परीषह। कुण्डलिया।

ऐते संकट मुनि सहै, चारित मोह उदोत।
लज्जा संकुच दुख धरैं, नगन दिगंबर होत ॥
नगन दिगम्बर होत, श्रोत रति स्वाद न सेवें।
तिय सनमुख दृग रोकि, मान अपमान न वेवैं ॥
थिर ह्वै निरभै रहैं, सहैं कुवचन जग जेते।
भिच्छुकपद संग्रहैं, लहैं मुनि संकट ऐते ॥८६

ज्ञानावरणीय जनित दो परीषह। दोहा।

अलप ज्ञान लघुता लखैं, मति उतकरष विलोइ।
ज्ञानावरन उदोत मुनि, सहैं परीसह दोइ ॥ ८७

दर्शनमोहनीय जनित और अन्तराय जनित परीषह। दोहा।

है सम्रदरसन दुरदसा, दरसन मोह उदोत।
रोके उमग अलाभ की, अन्तराय के होत ॥८८

बाईस परीषहों का वर्णन। सवैया इकतीसा।

एकादश वेदनीकी, चारितमोहकी [illegible]
की दोइ, एक अंतरायकी। दर्सनमोहकी [illegible]
बाधा सबै कोइ मनसाकी वेर बाकी वेर [illegible]

को अलप काहूको बहुत उनीस तांई,एक ही समय में उदै आवै असहायकी। चर्या थित सज्जामांहि एक सीत उष्ण-मांहि, एक दोइ होइ तीनि नांही समुदायकी ॥८९

स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधु की तुलना। दोहा।

नाना विधि संकट दसा, सहि साधै शिवपन्थ।
थविरकल्पि जिनकल्पि धर, दोऊ सम निगरंथ ॥९०
जो मुनि संगतिमें रहै, थविरकल्पि सो जान।
एकाकी जाकी दशा, सो जिनकल्पि बखान ॥ ९१

चौपाई।

थविरकलपिधर कछुक सरागी, जिनकल्पी महान वैरागी।
इति प्रमत्तगुनथानक धरनी, पूरन भई जथारथ वरनी ॥९२

सप्तम गुणस्थान का वर्णन। चौपाई।

अब वरनो सत्तम विसरामा, अप्रमत्त गुनथानक नामा।
जहां प्रमाद क्रिया विधि नासे.धर्मध्यान थिरता परगासे ९३

दोहा।

प्रथम करन चारित्र को, जासु अन्त पद होइ।
जहाँ अहार विहार नहिं, अप्रमत्त है सोइ ॥ ९४

अष्टम गुणस्थान का वर्णन। चौपाई।

अब वरनों अष्टम गुनथाना, नाम अपूरवकरन बखाना।
कछुक मोह उपशमकरि राखे,अथवा किंचित क्षयकरिनाखे९५
जे परिनाम भये नहिं कबही, तिन्हको उदय देखिये जबही।
तब अष्टम गुनथानक होई, चारित करन दूसरो सोई ॥ ९६

नवमे गुणस्थान का वर्णन ।

अब अनिवृत्तिकरन सुन भाई, जहाँ भाव थिरता अधिकाई ।
पूरव भाव चलाचल जेते, सहज अडोल भये सब तेते ॥९७

जहाँ न भाव उलटि अधि आवे, सो नवमो गुनथान कहावे ।
चारितमोह जहाँ बहु छीजा, सो है चरन करन पद तीजा ९८

दशवें गुणस्थान का वर्णन ।

कहों दशमगुनथान दुसाखा, जहँ सूक्ष्म शिवकी अभिलाषा ।
सूक्ष्मलोभ दशा जहाँ लहिये, सूक्ष्मसंपराय सो कहिये ॥९९

ग्यारहवें गुणस्थान का वर्णन ।

अब उपशांत मोह गुनथाना, कहों तासु प्रभुता परवाना ।
जहां मोह उपशमैं न भासे, यथाख्यात चारित परगासे १००

जाहि फरस के जीव गिर, परैं करैं गुन रद ।
सो एकादसमी दसा, उपशम की सरहद ॥ १०१

बारहवें गुणस्थान का वर्णन ।

केवलज्ञान निकट जहँ आवे, तहां जीव सब मोह खिपावे ।
प्रगटे यथाख्यात परधाना, सो द्वादसम छीन गुनथाना १०२

उपशम श्रेणी की अपेक्षा गुणस्थानों का काल । दोहा ।

षट सत्तम अष्टम नवम, दश एकादश थान ।
अन्तरमुहूरत एक वा, एक समै थित जान ॥ १०३

क्षपक श्रेणी में गुणस्थानों का काल । दोहा ।

छपक श्रेणि आठैं नवैं, दस अर वलि थान ।

थिति उत्कृष्ट जघन्य भी, अन्तमुहूरत काल ॥१०४

तेरहवें गुणस्थान का वर्णन। दोहा।

छीन मोह पूरन भयो, करि चूरन चित चाल।
अब सजोग गुनथान की, बरनों दशा रसाल ॥१०५

तेरहवें गुणस्थान का स्वरूप। सवैया इकतीसा।

जाकी दुःखदाता घाती चौकरी विनस गई, चौकरी अघाती जरी जेवरी समान है। प्रगट भयो अनन्त दंसन अनंत ज्ञान, वीरज अनंत सुख सत्ता समाधान है॥ जामें आउ नाम गोत वेदनी प्रकृति अस्सी, एक्यासी चौरासी वा पचासी परवान है। सो है जिनकेवली जगवासी भगवान, ताकी जो अवस्था सो सजोगी गुनथान है ॥१०६

केवलज्ञानी की मुद्रा और स्थिति। सवैया इकतीसा।

जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा, अन्यथा सु काउसग्ग मुद्रा थिरपाल है। खेत सपरस कर्म प्रकृति के उदे आए, विना डग भरे अन्तरिच्छ जाकी चाल है॥ जाकी थिति पूरब करोड़ि आठ वर्ष घाट, अन्तरमुहूरत जघन्य जग-जाल है। सो है देव अठारह दूषन-रहित ताकौं, वनारसी कहे मेरी वंदना त्रिकाल है॥ १०७

केवली भगवान को अठारह दोष नहीं होते। कुण्डलिया।

दूषन अट्ठारह रहित, सो केवलि संजोग। जनम मरण

जाके नहीं,नहिं निद्रा भय रोग ।। नहिं निद्रा भय रोग, सोग विसमय न मोहमति । जरा खेद परस्वेद, नांहि मद वैर विषै रति ।। चिंता नाहिं सनेह,नाहिं जहं प्यास न भूख न । थिर समाधि सुख सहित,रहित अट्ठारह दूषन ।१०८

केवलज्ञानी प्रभु के परमौदारिक शरीर का अतिशय । कुंडलिया ।

वानी जहाँ निरक्षरी, सप्त धातु मल नांहि । केस रोम नख नहिं बढ़े, परम उदारिक मांहि । परम उदारिक मांहि जांहि इन्द्रिय विकार नसि, जथाख्यात चारित प्रधान थिर सुकल ध्यान ससि । लोकालोक प्रकास, करन केवल रजधानी, सो तेरम गुनथान,जहाँ अतिशयमय वानी ।।१०९

चौदहवें गुणस्थान का वर्णन । दोहा ।

यह सयोग गुनथान की, रचना कही अनूप ।
अब अयोगकेवल दशा, कहूँ जथारथ रूप ।। ११०

चौदहवें गुणस्थान का स्वरूप । सवैया इकतीसा ।

जहाँ काहू जीव कौं असाता उदै साता नांहि, काहू कौं असाता नांहि साता उदै पाइये । मन वच काय सौं अतीत भयो जहाँ जीव, जाकौ जस गीत जग जीत रूप गाइये ।। जामें कर्म प्रकृति की सत्ता जोगी जिन कीसी, अंत काल द्वै समै में सकल खिपाइये । जाकी थिति पंच-लघु अक्षर प्रमान सोई, चौदहों अयोगी गुन थान ठ-

राइये ॥ १११

वंध का मूल आस्रव और मोक्ष का मूल संवर है। दोहा।

चौदह गुनथानक दशा, जगवासी जिय भूल।
आस्रव संवर भाव द्वै, बंध मोक्ष के मूल ॥ ११२

संवर को नमस्कार। चौपाई।

आस्रव संवर परनति जौलों, जगत निवासी चेतना तौलों।
आस्रव संवरविधि विवहारा, दोऊ भवपथ शिवपथधारा।११३
आस्रवरूप बंध उतपाता, संवर ज्ञान मोक्ष पद दाता।
जा संवरसों आस्रव छीजे, ताकों नमस्कार अब कीजे११४

ग्रन्थ के अन्त में संवर स्वरूप ज्ञान को नमस्कार।

जगत के प्रानी जीत व्है रह्यो गुमानी ऐसो आस्रव असुर दुःखदानी महाभीम है। ताको परताप खंडिवे कों प्रगट भयो, धर्म को धरया कर्म रोगको हकीम हैं॥ जाके परभाव आगे भागे परभाव सब, नागर नवल सुख सागर की सीम हैं। संवर को रूप धरे साधे शिवराह ऐसौ, ज्ञानी पातसाह ताकों मेरी तसलीम हैं॥ ११५

इति गुणस्थानाधिकार समाप्त।

ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति

चौपाई।

भयौ ग्रन्थ संपूरन भाषा, बरनी गुनथानक की साखा।
बरनन और कहाँलों कहिये, जथासकति कहि चुपव्है रहिये १
लहिए ओर न ग्रंथ उदधिका, ज्योंज्यों कहिये त्योंत्योंअधिका
तातैं नाटक अगम अपारा, अलप कवीसुर की मतिधारा ॥२

दोहा।

समयसार नाटक अकथ, कवि की मतिलघु होइ।
तातैं कहत बनारसी, पूरन कथै न कोइ ॥ ३

ग्रन्थ महिमा। सवैया इकतीसा।

जैसे कोऊ एकाकी सुभट पराक्रम करि, जीतै किहि भांति चक्री कटक सों लरनो। जैसे कोऊ परवीन तारू भुज भारु नर, तैरे कैसे स्वयंभू रमन सिंधु तरनो। जैसे कोऊ उद्दिमी उछाह मनमांहि धरे, करे कैसे कारज विधाता कै सौ करनो। तैसे तुच्छ मति मोरी तामैं कविकला थोरी, नाटक अपार में कहांलों याहि वरनो ॥ ४

जीव नट की महिमा। सवैया इकतीसा।

जैसे वट वृक्ष एक तामें फल हैं अनेक, फल फल बहु बीज, बीज बीज वट है। वट मांहि फल, फल मांहि बीज तामें वट, कीजे जो विचार तो अनंतता अघट है। तैसे एक सत्ता में अनंत गुण परजाय, पर्जै में अनंत नृत्य तामें

ऽनंत ठट है। ठट में अनंत कला कला में अनंत रूप, रूप में अनंत सत्ता ऐसो जीव नट है ॥ ५

दोहा।

ब्रह्म ज्ञान आकाश में, उडे सुमति खग होइ।
यथासकति उद्दिम करे, पार न पावे कोइ ॥ ६
चौपाई।

ब्रह्म ज्ञान नभ अंत न पावे, सुमति परोच्छ कहालों धावे।
जिहिविधि समयसार जिनिकीनो, तिनके नाम कहों अब तीनों

अथ कवियों के नाम। सवैया इकतीसा।

कुन्दकुन्दाचारज प्रथम गाथाबद्ध करि, समैसार नाटक विचारि नाम दयो है। ताही की परम्परा अमृतचन्द भये तिन, संसकृत कलस सम्हारि सुख लयो है॥ प्रगट्यो बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब, किये हैं कवित्त हिये बोध बीज वयो है। शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव, नाटक अनादि यों अनादि ही को भयो है ॥ ८

कवि लक्षण। चौपाई।

अब कछु कहूं यथारथ वानी, सुकवि कुकविकी कथा कहानी
प्रथमहिं सुकवि कहावे सोई, परमारथ रस वरने जोई ॥९
कलपित बात हिये नहिं आने, गुरु परंपरा रीति वखाने।
सत्यारथ सैली नहिं छंडे, मृषावादसों प्रीति न मंडे ॥१०

दोहा ।

छंद शब्द अक्षर अरथ, कहे सिद्धांत प्रवान ।
जो इहि विधि रचना रचे,सो है सुकवि सुजान ॥१२

कुकवि लक्षण । चौपाई ।

अब सुन कुकवि कहों है जैसा,अपराधी हिय अंध अनैसा ।
मृषाभाव रस वरनै हितसों, नई उकति उपजावे चितसों ॥
ख्याति लाभ पूजा मन आनैं, परमारथ-पद भेद न जानैं ।
वानी जीव एक करि बूझै,जाको चित जड़ ग्रन्थ न सूझै ।१३
वानी लीन भयो जग डोले, वानी ममता त्यागि न बोले ।
है अनादि वानी जग मांही,कुकवि बात यह समुझे नांही ।१४

वाणी व्याख्या । सवैया इकतीसा ।

जैसे काहू देस में सलिल धारा कारंज की, नदी सों निकसि फिरि नदी में समानी है । नगर में ठौर ठौर फैलि रही चहुँ ओर, जाके ढिग बहै सोई कहै मेरो पानी है । त्योंही घट सदन सदन में अनादि ब्रह्म बदन बदन में अनादि ही की वानी है । करम कलोल सों उसास की बयारि बाज, तासों कहै मेरी धुनि ऐसो मूढ़ प्रानी है ॥१५

दोहा ।

ऐसे मूढ़ कुकवि कुधी, गहै मृषा मग दौर ।
रहै मगन अभिमान में, कहै और की और ॥१६

वस्तु सरूप लखै नहीं, बाहिज दृष्टि प्रवान ।
मृषा विलास विलोकि कें, करे मृषा गुन गान ॥१७

मृषा गुण गान कथन । सवैया इकतीसा ।

मांस की गरंथि कुच कंचन-कलस कहैं, कहैं मुख चन्द जो सलेषमा को घरु है । हाड़के दसन आहि हीरा मोती कहैं ताहि, मांस के अधर ओंठ कहैं बिंब फरु है ॥ हाड़ दंड भुजा कहैं कौलनाल कामधुजा,हाड़ ही के थंभा जंघा कहैं रंभा तरु है । यों ही झूठी जुगत बनावें औ कहावें कवि एते पर कहैं हमें सारदा को बरु है ॥ १८

चौपाई ।

मिथ्यावंत कुकवि जे प्रानी,मिथ्या तिनकी भाषित वानी ।
मिथ्यामती सुकवि जो होई,वचन प्रवांन करे सब कोई ॥१९

दोहा ।

वचन प्रवान करै सुकवि, पुरुष हिये परवान ।
दोऊ अंग प्रधान जो, सो है सहज सुजान ॥२०

समयसार नाटक की व्यवस्था । चौपई ।

अब यह बात कहूँ है जैसे, नाटक भाषा भयो सु ऐसे ।
कुंदकुंदमुनि मूल उधरता, अमृतचन्द्र टीका के करता ॥२१

चौपाई ।

समैसार नाटक सुखदानी, टीका सहित संस्कृत वानी ।

पंडित पढ़ै सुदिढ़मति बूझै, अलपमतीको अरथ न सूझै ॥ २२

पांडे राजमल्ल जिनधर्मी, समैसार नाटक के मर्मी ।
तिन गिरंथ की टीका कीनी, बालबोध सुगम कर दीनी ॥ २३

इहिविधि बोध बचनिका फैली, समैं पाय अध्यातम सैली ।
प्रगटी जग मांही जिनवानी, घर २ नाटक कथा बखानी ॥ २४

नगर आगरे मांहि विख्याता, कारन पाइ भए बहु ज्ञाता ।
पंचपुरुष अति निपुन प्रवीने, निसिदिन ज्ञानकथा रसभीने ॥ २५

दोहा ।

रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम ।
तृतिय भगोतीदास नर, कौंरपाल गुनधाम ॥ २६

धर्मदास ये पंचजन, मिलि बैठें इक ठौर ।
परमारथ चरचा करैं, इनके कथा न और ॥ २७

कबहूँ नाटक रस सुनैं, कबहूँ और सिद्धंत ।
कबहूँ बिङ्ग बनाइकै, कहैं बोध बिरतंत ॥ २८

चित कौंरा करि धरमधर, सुमति भगौतीदास ।
चतुरभाव थिरता भए, रूपचंद परगास ॥ २९

चौपाई ।

जहां तहां जिनवानी फैली, लखै न सो जाकी मति मैली ।
जाकै सहज बोध उतपाता, सो ततकाल लखै यह बाता ॥ ३०

दोहा।

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।
मति-मदिरा के पानसों, मतवाला समुझै न ॥ ३१

चौपाई।

बहुत बड़ाई कहांलों कीजे, कारिज रूप बात कहि लीजे।
नगर आगरे मांहि विख्याता, बानारसी नाम लघु ज्ञाता ३२
तामें कवितकला चतुराई, कृपा करें यह पांचों भाई।
पंच प्रपंचरहित हिय खोले, ते बानारसीसों हंसि बोले। ३३
नाटक समयसार हित जीका, सुगम रूप राजमली टीका।
कवित्तबद्ध रचना जो होई, भाषा ग्रन्थ पढ़ै सब कोई ॥३४
तब बानारसी मनमहिं आनी, कीजै तौ प्रगटै जिनवानी।
पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी, कवित्तबद्ध की रचना कीनी ॥३५
सोरहसौ तिरानवे बीते, आसौ मास सित पच्छ बितीते।
तिथि तेरस रविवार प्रवीना, ता दिन ग्रन्थ समापत कीना ३६

दोहा।

सुख-निधान सक बंध नर, साहिब साह किरान।
सहस-साह सिर मुकुट-मनि, साहजहां सुलतान ॥३७
जाके राज सुचैनसों, कीनों आगम सार।
ईति भीति व्यापी नहीं, यह उनकौ उपगार ॥ ३८

ग्रन्थ के सब पद्यों की संख्या। सवैया इकतीसा।

तीनसै दसोत्तर सोरठा दोहा छंद दोउ, युगलसै पैंता-

सैंतीस इकतीसा आने हैं। छयासी चौपाई, सैंतीस तेईसे सवैये, बीस छप्पै अठारह कवित्त बखाने हैं॥ सात पुनि ही अडिल्ल, चारि कुंडलिए, मिलि सकल सातसैं सत्ता-इस ठीक ठानैं हैं। बत्तीस अच्छर के सिलोक कीने तेते, ग्रंथ-संख्या सत्रह सैं सात अधिकाने हैं॥३९

दोहा।

समयसार आतम दरव, नाटक भाव अनन्त।
सोहै आगम नाम में, परमारथ विरतंत॥ ४०

ईडर के भंडार की प्रति का अंतिम अंश।

दोहा।

समयसार नाटक अकथ, अनुभव-रस-भंडार।
याको रस जो जानहीं, सो पावै भव पार॥ १

चौपाई।

अनुभौ-रस के रसियानैं, तीन प्रकार एकत्र बखानैं।
समयसार कलसा अति नीका, राजमल्ली सुगम यह टीका॥ २
ताके अनुक्रम भाषा कीनी, बनारसी ज्ञाता रस लीनी।
ऐसा ग्रन्थ अपूरव पाया, तासैं सब का मनहिं सुहाया॥ ३

॥ समाप्त ॥

श्री भगवान् पार्श्वनाथ जी की स्तुति

तुमसे लागी लगन, लेलो अपनी शरण, पारस प्यारा ।
मेटो मेटो जी संकट हमारा ॥ टेक

निश दिन तुम को जपूं, पर से नेहा तजूं ।
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा ॥ मेटो मेटो०

विश्वसेन के राजदुलारे, वामादेवी के सुत प्राण प्यारे ।
सबसे नेहा तोड़ा जग से मुँह को मोड़ा, संयमधारा । मेटो०

इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये ।
आशा पूरो सदा दुःख नहीं पावे कदा, सेवक थारा ॥ मेटो०

जगके दुःखकी तो परवाह नहीं है, स्वर्ग-सुखकी भी चाह नहीं है
मेटो आवागमन, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा ॥ मेटो०

लाखों बार तुम्हें शीश नवाऊं, जगके नाथ तुम्हें कैसे पाऊं ।
'पंकज' व्याकुल भया, दर्शन बिन ये जिया, लागे खारा ॥ मे०

❀ स्वाध्याय आत्म कल्याण का साधन है ।

❀ स्वाध्याय परम तप है ।

❀ स्वाध्याय से श्रद्धा, श्रद्धा से ज्ञान और ज्ञान से चरित्र में निर्मलता आती है ।

—स्वाध्याय नियम पूर्वक कीजिये—
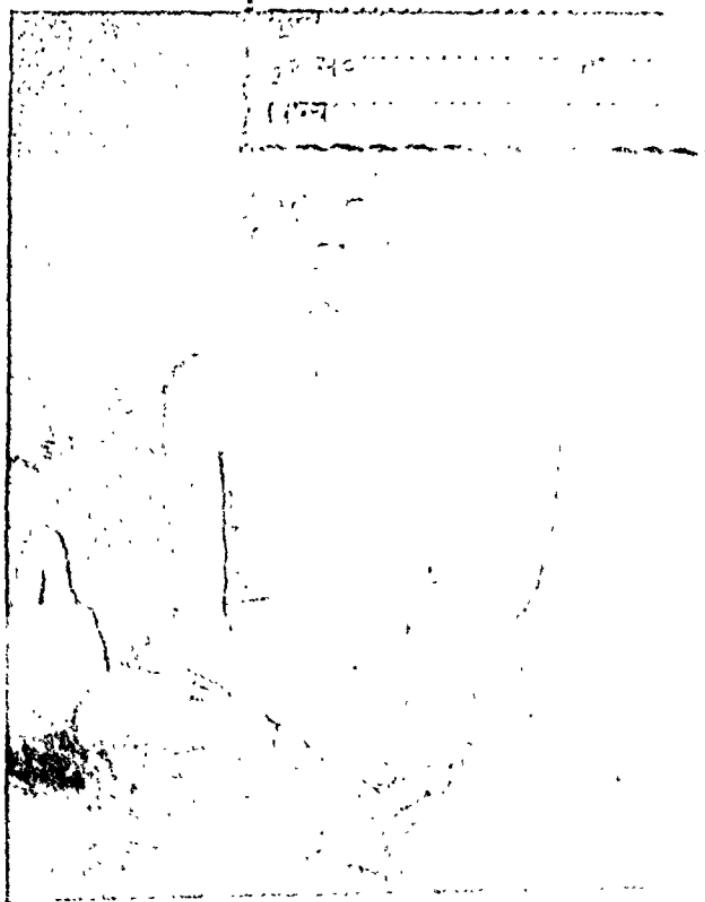
स्व० पं० बनारसीदास विरचित

समयसार नाटक

स्व० श्री बुद्धिलाल श्रावक कृत भाषा टीका

हिन्दी टीकाकारकी ओरसे मंगलाचरण । दोहा ।

निज स्वरूप कौ परम रस, जामैं भरौ अपार ।
वन्दौं परमानन्द मय, समयसार अविकार ॥ १

कुन्दकुन्द मुनि-चन्दवर, अमृतचन्द्र मुनि-इंद ।
आतमरसी बानारसी, वंदौं पद अरविंद ॥ २

(१) जो संसार में कर्म के भ्रमरूप अंधकार को दूर करने के लिये सूर्य के समान हैं, जिनके चरणमें सांपका चिन्ह है, जो मोक्ष का मार्ग दिखाने वाले हैं, जिनके दर्शन करने से भव्य जीवों के नेत्रोंसे आनंदके आंसू बह निकलते हैं और अनेक [illegible] प्रसन्न हो जाते हैं, जिन्होंने कामदेवको युद्धमें हरा दिया है, जो उत्कृष्ट जैन धर्मके हितकारी हैं, जिनका स्मरण करनेसे भक्तजनों के सब डर दूर भागते हैं, जिनका शरीर पानी से भरे हुए मेघ के समान नीला है, जिनका मुकुट सात फण का है, जो कमठ के जीव को असुर पर्याय में परास्त करनेवाले हैं, ऐसे पार्श्वनाथ जिनराज को (पंडित) बनारसीदासजी नमस्कार करते हैं ।

(२) जो सम्पूर्ण दुष्ट कर्मोंको नष्ट करनेवाले हैं, [illegible] के समक्ष मेरुके समान हैं अर्थात् कमठ के जीवकी सताई हुई कि

आंधीके उपसर्गसे जो नहीं हिलने वाले हैं, निर्विकार सिद्ध पद में रमण करते हैं, संसारी जीवों रूप कमलों को प्रफुल्लित करने के लिये सूर्यके समान हैं, मिथ्यामतरूपी मेघोंको उड़ा देने के लिये प्रचण्ड वायु रूप हैं, जिनका शरीर पानीसे भरे हुए मेघ के समान नीलवर्ण है, जो जीवोंको समता देने वाले हैं, अशुभ कर्मोंकी धूल धोनेके लिये मेघके समान संपूर्ण जीवोंके द्वारा वन्दनीय हैं, जन्म मरणका भय हरनेवाले हैं, जिन्होंने मृत्युको जीता है, जो नरकगति से बचानेवाले हैं, जो बड़े और गम्भीर संसार सागरसे तारनेवाले हैं, अत्यन्त बलवान कामदेवके वनको जलानेके लिये जलती अग्नि के समान हैं, जो जीवों को बिलकुल निडर बनाने वाले हैं, उन (पार्श्वनाथ भगवान) की जय हो ! जय हो !!

(३) जिनकी वाणी हृदयमें धारण करके सांपका जोड़ा क्षणभरमें धरणेन्द्र पद्मावती हुआ, जिनके नाम के प्रताप से जगत में पत्थर भी पारसके नामसे प्रसिद्ध है जो लोहे को सोना बना देता है, जिनकी जन्मभूमिके नामके प्रभाव से हमने अपना आत्मस्वरूप देखा है—मानों सूर्यकी ज्योति ही प्रगट हुई है, वे अनुभव रसका स्वाद देनेवाले पार्श्वनाथ जिनराज अपनी प्यारी चितवनसे हमें शान्ति देवें।

(४) जो नित्य और निर्विकार हैं, उत्कृष्ट सुख के स्थान है, साहजिक शान्ति से सर्वांग सुन्दर हैं, निर्दोष है, पूर्ण ज्ञानी हैं, विरोधरहित हैं, अनादि अनंत हैं, वे लोकके शिखामणि सिद्ध भगवान सदा जयवंत होवें।

(५) जो ज्ञानके प्रकाशक हैं, साहजिक आत्मसुखके समुद्र हैं, सम्यक्त्वादि गुणरत्नोंकी खानि हैं, वैराग्य रससे परिपूर्ण हैं, किसी का आश्रय नहीं चाहते, मृत्युसे नहीं डरते, इन्द्रिय विषयोंसे विरक्त होकर चारित्र पालन करते हैं, जिनसे धर्मकी शोभा है, जो

मिथ्यात्वका नाश करनेवाले हैं, जो कर्मों के साथ अत्यन्त शान्ति-पूर्वक लड़ते हैं. ऐसे साधु महात्मा जो पृथ्वी तलपर शोभायमान हैं उनके दर्शन करके पं० बनारसीदासजी नमस्कार करते हैं।

(६) जिनके हृदयमें निजपरका विवेक प्रगट हुआ है, जिनका चित्त चन्दनके समान शीतल है अर्थात् कषायोंका आताप नहीं है, और निजपर विवेक होने से जो मोक्ष मार्ग में मौज करते हैं, जो संसारमें अरहंत देवके लघु पुत्र हैं अर्थात् थोड़े ही कालमें अरहंत पद प्राप्त करनेवाले हैं, जिन्हें मिथ्यादर्शनको नष्ट करनेवाला निर्मल सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ है, उन सम्यग्दृष्टी जीवों की आनन्दमय अवस्था को निश्चय करके पं० बनारसीदासजी हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं।

(७) जिन्हें निज आत्मा का सच्चा ज्ञान है और [illegible] सच्चा प्रेम है, जो हृदय के सच्चे हैं और सत्य वचन बोलते हैं [illegible] सच्चे जैनी हैं, किसीसे भी जिनका विरोध नहीं है, [illegible] अहं बुद्धि नहीं है, जो आत्मस्वरूप के खोजक हैं, न [illegible] न महाव्रती हैं, जिन्हें सदैव अपने ही हृदयमें [illegible] आत्मशक्तिकी रिद्धि और आत्म गुणों की [illegible] जो अंतरङ्ग लक्ष्मीसे अजाचि लक्षपति अर्थात् [illegible] राजके सेवक हैं, संसारसे उदासीन रहते हैं [illegible] सदा आनंदरूप रहते हैं, इन गुणोंके धारक [illegible]

(८) जिसके हृदय में गणधर जैसा निज पर [illegible] हुआ है, जो आत्मानुभवसे आनन्दित [illegible] करता है, सच्चे स्वाधीन सुखको [illegible] गुणोंको अविचल [illegible] करता है, [illegible] को आपहीमें धारण करता है, जो [illegible] अजीव का पृथक्करण [illegible]

जो आत्मबल बढ़ानेमें उद्योग करता है और ज्ञानका प्रकाश करता है, वही सम्यग्दृष्टी संसार समुद्र से पार होता है।

(९) जो वस्तु स्वभाव से अनभिज्ञ है, जिसका कथन मिथ्यात्वमय है और एकान्तका पक्ष लेकर जगह जगह लड़ाई करता है, अपने मिथ्याज्ञानके अहंकारमें भूलकर भरतीपर पांव नहीं टिकाता और चित्तमें उपद्रव ही सोचता है, कर्मके झकोरोंसे संसारमें डांवाडोल हुआ फिरता है अर्थात् विश्राम नहीं पाता सो ऐसी दशा हो रही है जैसे बघरूड़ेमें पत्ता उड़ता फिरता है, जो हृदयमें (क्रोधसे) तप्त रहता है, (लोभ से) मलिन रहता है, (माया से) कुटिल है, (मान से) वड़े कुबोल बोलता है, ऐसा आत्मघाती और महापापी मिथ्यात्वी होता है।

(१०) मैं सिद्ध भगवान को और मोक्षमार्ग (रत्नत्रय) को नमस्कार करता हूं, जिनके प्रसाद से देश भाषा में नाटक समयसार ग्रन्थ रचता हूँ।

(११) मेरा स्वरूप सदैव चैतन्यरूप उपमा रहित और निराकार सिद्ध सदृश है। परन्तु मोहके महा अंधकारका सम्बन्ध होनेसे अंधा बन रहा था। अब मुझे ज्ञानकी ज्योति प्रगट हुई है इसलिये नाटक समयसार ग्रन्थ को कहता हूँ, जिसके प्रसादसे मोक्षमार्ग की सिद्धि होती है और जल्दी संसार का निवास अर्थात् जन्म मरण छूट जाता है।

(१२) जिस प्रकार कोई मूर्ख अपने बाहुबलसे बड़ा भारी समुद्र तैरनेका प्रयत्न करे, अथवा कोई बानवूट पहाड़ के वृक्ष में लगे हुए फलको तोड़ने के लिये जल्दी से उछले, जिस प्रकार कोई बालक पानीमें पड़े हुए चन्द्रबिम्बको हाथसे पकड़ता है, उसी प्रकार मुझ मन्द बुद्धिने नाटक समयसार (महाकार्य) प्रारंभ किया है विद्वान लो ग हंसी करेंगे और कहेंगे कि कोई पागल होगा।

शान्ति मिलती है तथा आत्मीक रस का आस्वादन करने से जो आनन्द मिलता है उसीको अनुभव कहते हैं।

(१८) अनुभव चिन्तामणि रत्न है, शान्ति रस का कुआ है, मुक्ति का मार्ग है और मुक्ति स्वरूप है।

(१९) अनुभवके रसको जगतके ज्ञानी लोग रसायन कहते हैं, अनुभव का अभ्यास एक तीर्थभूमि है, अनुभवकी भूमि सकल पदार्थोंको उपजानेवाली है, अनुभव नर्कसे निकालकर स्वर्ग मोक्षमें ले जाता है, इसका आनंद कामधेनु और चित्रावेलिके समान है, इसका स्वाद पंचामृत भोजनके समान है। यह कर्मोंको क्षय करता है और परम पदसे प्रेम जोड़ता है, इसके समान अन्य कोई धर्म नहीं है।

(२०) चैतन्यरूप है, अनंत गुण अनंत पर्याय और अनंत शक्ति सहित है, अमूर्तीक है, अखंडित है, सर्व व्यापी है। यह जीव द्रव्यका स्वरूप कहा है।

(२१) पुद्गल द्रव्य परमाणु रूप, आकाश के प्रदेश के बराबर, चौपड़ के पाशे के आकार का स्पर्श, रस, गंध, वर्णवन्त है।

(२२) जिस प्रकार मछली की गमन क्रिया में पानी सहायक होता है, उसी प्रकार जीव पुद्गलकी गतिमें सहकारी धर्म द्रव्य है।

(२३) जिस प्रकार ग्रीष्म काल में पथिक छाया का निमित्त पाकर बैठते हैं उसी प्रकार अधम द्रव्य जीव पुद्गल की स्थिति में निमित्त कारण है।

(२४) जिसके पेट में सदैव सम्पूर्ण पदार्थ निवास करते हैं, जो सम्पूर्ण द्रव्यों को पात्र के समान आधारभूत है, वही आकाश द्रव्य है।

(२५) जो वस्तु का नाश न करके सम्पूर्ण पदार्थों की नवीन हालतों के प्रगट होने और पूर्व पर्यायों के लय होने में निमित्त

कारण है. ऐसा वर्तना लक्षण का धारक काल द्रव्य है।

(२६) वीतराग भाव में लीन होना, ऊर्ध्वगमन, [illegible] स्वभाव, साहजिक सुख का सम्भोग, सुख दुःख का स्वाद और चैतन्यता ये सब जीव के निज गुण हैं।

(२७) तन, मन, वचन, अचेतनता, एक दूसरे से [illegible], हलका और भारीपन तथा अपने स्वभाव में तल्लीनता ये सब अजीव की परिणति हैं।

(२८) जो शुभ भावों से बंधता है, स्वर्गादि के [illegible] है और लौकिक सुख का देने वाला है वह पुण्य पदार्थ है।

(२९) जो अशुभ भावों से बँधता है तथा अपने आप [illegible] में गिरता है और संसारमें दुखका देनेवाला है, वह पाप पदार्थ है।

(३०) कर्म के उदय में योगों की जो [illegible] वह नवीन कर्मोको खींचती है उसे आस्रव पदार्थ [illegible]।

(३१) जो ज्ञान दर्शन उपयोग को प्राप्त करके योगों की [illegible] से विरक्त होता है और आस्रवको रोक देता है वह संवर पदार्थ है।

(३२ जो पूर्वस्थित कर्म अपनी स्थिति पूर्ण [illegible] तत्पर होता है उसे निर्जरा पदार्थ जानो।

(३३) जो नवीन कर्म पुराने कर्मों से [illegible] बँध जाता है और कर्म शक्ति की परम्परा [illegible] पदार्थ है।

(३४) जो कर्म अपनी स्थिति पूर्ण [illegible] लेता है और आत्मगुणोंको निर्मल [illegible]

(३५) भाव. पदार्थ [illegible] द्रविण, आदि सब वस्तु के नाम हैं।

(३६) परमपुरुष, परमेश्वर, परमज्योति [illegible] प्रधान, अनादि, अनंत, अव्यक्त, [illegible]

मुकंद, अमलान, निराबाध, निगम, निरंजन, निर्विकार, निराकार संसारशिरोमणि, सुज्ञान, सर्वदर्शी सर्वज्ञ, सिद्ध, स्वामी, शिव, घनी, नाथ ईश, जगदीश, भगवान।

(३७) चिदानंद, चेतन, अलक्ष, जीव, समयसार, बुद्धरूप, अबुद्ध, अशुद्ध, उपयोगी चिद्रूप, स्वयंभू, चिनमूर्ति, धर्मवंत, प्राण-वंत, प्राणी, जंतु, भूत, भवभोगी, गुणधारी कलाधारी, भेषधारी, विद्याधारी, अंगधारी, संगधारी, योगधारी, योगी, चिन्मय, अखंड, हंस, अक्षर, आत्माराम, कर्मकर्ता, परम-वियोगी ये सब जीवद्रव्यके नाम हैं।

(३८) खं, विहाय, अंबर, गगन, अंतरिच्छ, जगधाम, व्योम, वियत, नभ, मेघपथ ये आकाशके नाम हैं।

(३९) यम, कृतांत, अंतक, त्रिदश, आवर्ती, मृत्युस्थान, प्राण-हरण, आदित्यतनय ये कालके नाम हैं।

(४०) पुण्य, सुकृत, ऊर्ध्ववदन, अकररोग, शुभकर्म, सुखदायक संसारफल, भाग्य, बहिर्मुख, धर्म ये पुन्यके नाम हैं।

(४१) पाप, अधोमुख, एन, अघ कंप, रोग, दुखधाम, कलिल, कलुष, किल्विष और दुरित ये अशुभ कर्मके नाम हैं।

(४२) सिद्धक्षेत्र, त्रिभुवन मुकुट, शिवथल, अविचलस्थान, मोक्ष, मुक्ति, वैकुंठ, शिव, पंचमगति, निर्वाण ये मोक्षके नाम हैं।

(४३) प्रज्ञा, धिषणा, सेमुषी, धी, मेधा, मति, बुद्धि, सुरती, मनीषा, चेतना, आशय, अंश और विशुद्धि ये बुद्धि के नाम हैं।

(४४) निपुण, विचक्षण, विबुध, बुद्ध, विद्याधर, विद्वान्, पटु प्रवीण, पंडित, चतुर, सुधी, सुजन, मतिमान्।

(४५) कलावंत, कोविद, कुशल, सुमन, दक्ष, धीमंत, ज्ञाता, सज्जन, ब्रह्मवित्, तज्ञ, गुणीजन, संत ये विद्वान् पुरुषके नाम हैं।

(४६) मुनि, महंत, तापस, तपी, भिक्षुक, चारित्रधाम, यती,

पदार्थ हैं उनके गुणों के ज्ञाता घटपट को जानने वाले हैं, वे सिद्ध भगवान मोक्षरूप हैं, मोक्षपुरी के निवासी हैं, उन्हें मोक्षगामी जीव ज्ञानदृष्टि से देखकर नमस्कार करते हैं।

(३) अनंत गुणों के धारक केवलज्ञानी भगवान यद्यपि सयोगी हैं तथापि योगों से पृथक हैं। उनके हृदय रूप द्रह से नदी रूप जिनवाणी निकलकर शास्त्र रूप समुद्र में प्रवेश कर गई है, इससे सिद्धान्त में इसे सत्य स्वरूप और अनंत नयात्मक कहा है। इसे जैन धर्म के मर्मी सम्यग्दृष्टी जीव पहचानते हैं, मूर्ख मिथ्यादृष्टी लोग नहीं समझते। ऐसी जिनवाणी जगत में सदा जयवंत होवे।

(४) मैं निश्चयनय से सदाकाल शुद्ध चैतन्य मूर्ति हूं परन्तु पर परणति के समागम से अज्ञान दशा प्राप्त हुई है। मोह कर्म का पर निमित्त पाकर आत्मा पर पदार्थों में अनुराग करता है, इसमे धतूरेका रस पीकर नाचनेवाले मनुष्य जैसी दशा हो रही है। पं० वनारसीदासजी कहते हैं कि अव समयसारका वर्णन करने से मुझे परम विशुद्धता प्राप्त होवे और विना प्रयत्न ही मिथ्यात्वकी उलझन अपने आप मिट जावे।

(५) निश्चयनय में पदार्थ एक रूप है और व्यवहारमें अनेक रूप है। इस नय विरोधमें संसार भूल रहा है, सो इस विवादको नष्ट करनेवाला जिनागम है जिसमें स्याद्वादका शुभ चिन्ह है। जिस जीवको दर्शन मोहनीय उदय नहीं होता उसके हृदयमें स्वतः स्वभाव यह प्रमाणिक जिनागम प्रवेश करता है और उसे तत्काल ही नित्य, अनादि और अनंत प्रकाशवान मोक्षपद प्राप्त होता है।

(६) जैसे कोई मनुष्य पहाड़ पर से फिसल पड़े और कोई हितकारी वनकर उसकी भुजा मजबूती से पकड़ लेवे उसी प्रकार ज्ञानियोंको जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं हुआ है तब तक व्यवहार का अवलम्ब है, यद्यपि यह बात सत्य है तो भी निश्चय नय चैतन्यको

सिद्ध करता है तथा जीवको परसे भिन्न दर्शाता है और व्यवहार नय तो जीव को परके आश्रित करता है।

भावार्थ—यद्यपि चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक व्यवहार का ही अवलम्बन है, परन्तु व्यवहार नय की अपेक्षा निश्चय नय उपादेय है, क्योंकि उससे पदार्थ का असली स्वरूप जाना जाता है और व्यवहार नय अभूतार्थ होने से परमार्थ में प्रयोजनभूत नहीं है।

(७) शुद्ध निश्चय नय से चिदानंद अकेला ही है और अपने गुण पर्यायों में परिणमन करता है। व्यवहारनय से [illegible] का पिण्ड वा पांच द्रव्य नव तत्त्व में [illegible] । [illegible] द्रव्य और नव तत्त्वों से चेतियता चेतन निराला है, ऐसा श्रद्धान करना और इसके सिवाय अन्य भांति श्रद्धान नहीं करना [illegible] सम्यक्दर्शन है; और सम्यक्दर्शन ही आत्मा का स्वरूप है। [illegible] बनारसीदासजी कहते हैं कि वह सम्यक्दर्शन [illegible] स्वरूप मेरे हृदय में प्रगट होवे।

(८) जैसे कि घास, काठ, बांस वा जंगल [illegible] आदि अग्नि में जलते हैं, उनकी आकृति पर [illegible] अनेक रूप दिखती हैं, परन्तु यदि [illegible] डाली जावे तो सब अग्नि [illegible] हार नय से नव तत्त्वों में शुद्ध, अशुद्ध, [illegible] रहा है, परन्तु जब उसकी [illegible] तब वह (शुद्धनयसे) [illegible]

(९) जिस प्रकार सुवर्ण [illegible] अनेक रूप होता है, परन्तु [illegible] रहता है तथा सर्राफ कसौटी पर [illegible] और उसकी चमक के अनुसार [illegible]

अरूपी महा दिप्तवान जीव अनादिकालसे पुद्गलके समागममें नव तत्त्वरूप दिखता है, परन्तु अनुमान प्रमाण से सब हालतों में ज्ञानस्वरूप एक आतमराम के सिवाय और दूसरा कुछ नहीं है।

(१०) जिस प्रकार सूर्य के उदयमें भूमंडल पर धूप फैल जाती है और अंधकार का लोप हो जाता है उसी प्रकार जब तक शुद्ध आत्मा का अनुभव रहता है तब तक कोई विकल्प वा नय आदि का पक्ष नहीं रहता। वहां नय विचार का लेश नहीं है, प्रमाण की पहुंच नहीं है और निक्षेपों का समुदाय नष्ट हो जाता है। पूर्व की दशा में जो जो बातें सहायक थीं वेही अनुभव की दशा में वाधक होती हैं और राग द्वेष तो वाधक है ही।

(११) जीव, आदि अवस्था निगोदसे लगाकर अंत अवस्था सिद्ध पर्याय पर्यन्त अपने परिपूर्ण स्वभावसे संयुक्त है और परद्रव्योंके संयोगकी कल्पनासे रहित है, सदैव एक चैतन्य रसमें सम्पन्न है ऐसा शुद्धनयकी अपेक्षा जिनवाणीमें कहा है।

(१२) भव्य जीवोंको श्रीगुरु उपदेश करते हैं कि शीघ्र ही मोहका वन्धन तोड़ दो, अपना सम्यक्त्व गुण ग्रहण करो और शुद्ध अनुभवमें मस्त हो जाओ। पुद्गल द्रव्य और रागादि भावोंसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। ये स्पष्ट अचेतन हैं और तुम अरूपी चैतन्य हो तथा पानीसे भिन्न तेलके समान उनसे न्यारे हो।

(१३) कोई विद्वान मनुष्य शरीररूपी घर को देखे और भेद ज्ञानकी दृष्टिसे शरीररूपी घरमें वसनेवाली आतम वस्तुका विचार करे तो पहिले भूत, वर्तमान, भविष्यत तीनों काल में मोहसे अनुरंजित और कर्मबन्ध में क्रीडा करते हुए आत्माका निश्चय करे, इसके पश्चात् मोहके वन्धनको नष्ट करे और मोही स्वभाव को छोड़कर आतमध्यानमें अनुभवका प्रकाश करे, तथा कर्म कलंक की कीचड़ से रहित अचल, अवाधित, सास्वत अपने आतमदेव को

प्रत्यक्ष देखे ।

(१४) शुद्ध नयके विषयभूत आत्माको अनुभव ही ज्ञान संपदा है, आत्मा और ज्ञानमें नामभेद है वस्तुभेद नहीं है। आत्मा गुणी हैं ज्ञान गुण है सो गुण और गुणी को पहिचान कर जब कोई आत्म-ध्यान करता है तब उसकी रागादि अशुद्ध दशा नष्ट होकर शुद्ध अवस्था प्राप्त होती है।

(१५) जीव पदार्थ सदैव अपने ही आधार रहता है और अपने ही धारा प्रवाह गुण पर्यायों में परिणमन करता है, बाह्य और अभ्यन्तर एकसा प्रकाशवान रहता है कभी कम नहीं होता, वह संसारके विकारोंसे पृथक् है, उसमें चैतन्य रस ऐसा ठसाठस भर रहा है, जैसे कि नमक की डली खारेपन से भरपूर रहती है। ऐसा परिपूर्ण स्वरूप, अत्यन्त निर्विकार, चिदानन्द आत्मा मोहके अत्यन्त क्षयसे मुझे प्रगट होवे ।

(१६) सम्पूर्ण कर्म समुदायसे रहित और [illegible] सहित सिद्ध पद साध्य है और मन, वचन, काय के योगों [illegible] शुद्धोपयोग रूप अवस्था साधक है। उसमें [illegible] परोक्ष है. ये दोनों अवस्थाएं एक जीवकी हैं ऐसा जो [illegible] है वही मोक्षका अभिलाषी स्थिर-चित्त होता है।

(१७) व्यवहार नयसे आत्मा दर्शन, ज्ञान, [illegible] रूप है, यह व्यवहार नय निश्चयकी अपेक्षा [illegible] नयसे आत्मा एक चैतन्य रस सम्पन्न [illegible] है। ये दोनों निश्चय और व्यवहार नय [illegible] में प्रमाण हैं ऐसी एक ही समयमें [illegible] जिनराजने कही है और गणधर स्वामी [illegible]

(१८) आत्म द्रव्य एक रूप है, उसको दर्शन, [illegible] तीन भेदरूप कहना सो व्यवहार नय है — [illegible]

(१९) यद्यपि व्यवहारनय की अपेक्षा आत्मा अनेक गुण और पर्यायवन्त है तो भी निश्चय नय से देखा जावे तो एक, शुद्ध, निरंजन ही है।

(२०) आत्माको एक रूप श्रद्धान करना वा एक रूप ही जानना चाहिये, तथा एकमें ही विश्राम लेना चाहिये, निर्मल समलका विकल्प न करना चाहिये। इसीमें सर्वसिद्धि है, दूसरा उपाय नहीं है।

(२१) आत्मा अनंत ज्ञान रूप लक्षणसे लक्षित है, उसके ज्ञान की निर्मल प्रकाशवान ज्योति जग रही है, यद्यपि वह व्यवहार नयसे तीन रूप है तो भी निश्चय नय से एक ही रूप है, उसका किसी भी युक्तिसे सदा ध्यान करने को मेरा चित्त उत्साहित हुआ है, इसीसे मोक्ष प्राप्त होती है और कोई दूसरा तरीका कार्य सिद्ध होनेका नहीं है! नहीं है!! नहीं है!!! इसमें कोई सन्देह नहीं है बिलकुल सच है।

२२) अपने आप अपना स्वरूप सम्हालनेसे अथवा श्रीगुरु के मुखारविंद द्वारा उपदेश सुननेसे जिनको भेदविज्ञान जाग्रत हुआ है अर्थात् स्वपर विवेक की ज्ञान शक्ति प्रगट हुई है, उन महात्माओं को जीवनमुक्त अवस्था प्राप्त हो जाती है। उनके निर्मल दर्पणवत् स्वच्छ आत्मा में अनंत भाव झलकते हैं परन्तु उनसे कुछ विकार नहीं होता। वे सदा आनद में मस्त रहते हैं।

(२३) इस समय भव्य जीवों का अनादि काल से लगा हुआ और कर्म मलसे मिला हुआ मोह नष्ट हो जावे। इसके नष्ट हो जानेसे हृदयमें महाप्रकाश करनेवाला, संशय समूहको मिटानेवाला, दृढ़ श्रद्धानकी रुचि-स्वरूप भेदविज्ञान प्रगट होता है। इससे स्वरूप में विश्राम और अनुभव का आनंद मिलता है तथा शरीरादि पुद्गल पदार्थोंमें कभी अहंबुद्धि नहीं रहती। यह क्रिया

उन्हें संसारसे ऐसे पृथक् बना देती है जिस प्रकार अग्नि स्वर्णको किट्टिकासे भिन्न कर देती है।

(२४) पं० बनारसीदासजी कहते है —हे भाई भव्य! मेरा उपदेश सुनो कि किसी प्रयत्नसे और कैसे ही बनकर ऐसा काम करो जिससे मात्र अंतर्मुहूर्त के लिये मिथ्यात्व का उदय न हो ज्ञानका अंश जाग्रत हो और आत्मस्वरूप की पहिचान होवे। यावज्जीव उसहीका विचार, उसहीका ध्यान, उसही की मौजसे परमरसका पान करो और रागद्वेषमय संसारका भटकना छोड़-कर तथा मोह का नाश करके सिद्धपद प्राप्त करो।

(२५) जिसके शरीरकी आभासे दशों दिशाएं पवित्र होती है, जिसके तेज के आगे सब तेजवान लज्जित होते हैं, [illegible] देखकर महारूपवान हार मानते हैं, जिसके शरीरकी [illegible] सुगन्ध छिप जाती हैं, जिसकी दिव्यवाणी सुननेसे [illegible] होता है, जिसके शरीरमें अनेक शुभ लक्षण हैं [illegible] कर भगवान हैं। उनके ये गुण व्यवहार नयसे [illegible] से देखो तो शुद्ध आत्मा के गुणों से [illegible]

(२६) जिनके बालक, तरुण और वृद्धता नहीं [illegible] जन्म भर अत्यन्त सुन्दर रूप और [illegible] शरीर में स्वतः स्वभाव ही अनेक शुभ [illegible] तथा शरीर अत्यन्त उज्ज्वल है, [illegible] झोकों से रहित समुद्र के समान [illegible] संसारमें जयवन्त होवें, जिनकी [illegible] से प्राप्त होती है।

(२७) यह (ऊपर कहा हुआ) [illegible] दर्शन इससे निराला है, क्योंकि [illegible] यता चेतनमें है।

(२८) जिस नगर में बड़े बड़े ऊंचे किले हैं जिनके कंगूरे ऐसे शोभायमान होते हैं मानों स्वर्गलोक निगल जानेके लिये दांत ही फैलाये हैं. उस नगरके चारों ओर सघन बगीचे इस प्रकार सुशोभित होते हैं मानो मध्यलोक ही घेर रक्खा है और उस नगरकी ऐसी बड़ी गहरी खाइयां हैं मानो उन्होंने नीचा मुंह करके पाताल लोकका जल पी लिया है, परन्तु उस नगर से राजा भिन्न ही है उसी प्रकार शरर से आत्मा भिन्न है ।

(२९) जिन्हें ऐसा ज्ञान जाग्रत हुआ है कि जिसमें दर्पणके समान लोक अलोकके भाव प्रतिबिंबित होते हैं, जिन्हें केवलदर्शन प्रगट हुआ है. जिनका अंतराय कर्म नष्ट हुआ है. जिन्हें महामोह कर्मके नष्ट होनेसे परम साधु वा महा संन्यासी अवस्था प्राप्त हुई है, जो स्वाभाविक योगोंको धारण किये हैं तोभी योगोंसे विरक्त हैं, जिन्हें मात्र पचासी प्रकृतियां जरी जेवरी की भस्म के समान लगी हुई हैं, ऐसे तीर्थंकर देव देहरूप देवालयमें स्पष्ट चैतन्य मूर्ति शोभायमान होते हैं, उन्हें पं० बनारसीदासजी नमस्कार करते हैं।

(३०) व्यवहार नयमें शरीर और आत्मा की ऐक्यता है, परन्तु निश्चय नयमें दोनों जुदे जुदे हैं । व्यवहार नयमें शरीर की स्तुति जीवकी स्तुति गिनी जाती है परन्तु निश्चय नयकी दृष्टिसे वह स्तुति मिथ्या है । निश्चय नयमें जो जिनराज है वही जीव है और जो जीव है वही जिनराज है, यह नय शरीर और आत्मा को एक नहीं मानता, इस कारण निश्चय नय से शरीर की स्तुति जिनराजकी स्तुति नहीं हो सकती ।

(३१) जिस प्रकार बहुत समय से पृथ्वी के अंदर गड़े हुए बहुतसे धन को उखाड़कर कोई बाहिर रख देवे तो नेत्रवानों को

देती है, उसी प्रकार ज्ञानका समुद्र आत्मा जो मिथ्यात्वके पर्देमें ढँक रहा था सो प्रगट हुआ जो त्रैलोक्यका नायक होगा। श्रीगुरु कहते हैं कि हे जगवासी जीवो! ऐसा उपदेश सुनकर मोहके जग-जालसे निकलकर अपनी शुद्धता सम्हालना चाहिये।

प्रथम अधिकार का सार

आत्म पदार्थ शुद्ध, बुद्ध, निर्विकल्प, देहातीत, निराकार, विज्ञानघन आनंदकंद, परमदेव, सिद्ध सदृश है। जैसा वह अनादि है वैसा अनंत भी है अर्थात् न उत्पन्न हुआ है और न कभी नष्ट भी होगा। यद्यपि वह अपने स्वरूपसे स्वच्छ है परन्तु संसारी दशामें जबसे वह है तभी से अर्थात् अनादिकाल से शरीरसे संबद्ध है और कमकालिमा से मलिन है। जिस प्रकार कि सोना खानकी दशामें कर्दम स हत रहता है परन्तु भट्टी में पकाने से शुद्ध सोना अलग हो जाता है और किट्टिमा पृथक् हो जाती है उसी प्रकार सम्यक् तप मुख्यतया शुक्लध्यान की अग्नि के द्वारा जीवात्मा शुद्ध हो जाता है और कर्म कालिमा पृथक् हो जाती है। जिस प्रकार जोहरी लोग कर्दम मिले हुए सोने को परखकर सोने के दाम देते लेते हैं उसी प्रकार ज्ञानी लोग अनित्य और मल भरे शरीर में पूर्णज्ञान और पूर्ण आनंदमय परमात्मा का अनुभव करते हैं।

जब कपड़े पर मैल जम जाता है तब मलिन कहाता है, लोग उससे ग्लानि करते हैं और निरुपयोगी बतलाते हैं, परंतु विवेक दृष्टिसे विचारा जावे तो कपड़ा अपने स्वरूपसे स्वच्छ है साबुन पानीका निमित्त चाहिये। बस! मैल सहित वस्त्रके समान कर्दम सहित आत्माको मलिन कहना व्यवहार नय का विषय है, और मैल से निराले स्वच्छ वस्त्र के समान आत्माको कर्मकालिमा से

विकल्प चित्त में अनेक तरंगें उत्पन्न करते हैं, इससे चित्त को विश्राम नहीं मिल सकता इसलिये कहना होगा कि नय ये [illegible] अनुभव में बाधक हैं परन्तु पदार्थ का यथार्थ स्वरूप जानने और स्वभाव विभाव के परखने में सहायक अवश्य हैं। इसलिये नय, निक्षेप और प्रमाणसे अथवा जैसे बने तैसे आत्मस्वरूप की पहिचान करके सदैव उसके विचार तथा चिन्तवनमें लगे रहना चाहिये।

अजीव द्वार

(१) यह पहिला अधिकार जीवतत्त्वका समझाकर कहा, अब अजीवतत्त्वका अधिकार कहते है, हे विद्वानों ! उसे मन लगाकर सुनो।

(२) गणधर स्वामी जैसा दृढ़ श्रद्धान उत्पन्न करके, अनादि कालसे लगे हुए अंतरंगका मिथ्यात्व नष्ट किया और भेदज्ञान की दृष्टि से ज्ञान की शक्ति सिद्ध करके जीव अजीवका निर्णय किया, पश्चात् अनुभवका अभ्यास करके कर्मो को नष्ट किया तथा हृदय मे हर्षित होकर अपनी उत्कृष्टताको सम्हाला, जिससे अंतराय कर्म नष्ट हुआ और शुद्ध आत्मा का प्रकाश अर्थात् पूर्णज्ञान का आनंद प्रगट हुआ। उसको मेरा नमस्कार है।

(३) हे भाई संसारी जीव ! तू संसार से विरक्त होकर एक छह महिनेके लिये मेरा सिखापन मान, और एकान्त स्थान में बैठ कर राग द्वेषकी तरङ्गें छोड़के चित्त को एकाग्र कर, तेरे हृदयरूप सरोवरमें तू ही कमल बन और तू ही भौंरा बनकर अपने स्वभाव की सुगंध ले। जो तू यह सोचे कि इससे कुछ नहीं मिलेगा, सो नियम से स्वरूपकी प्राप्ति होगी, आत्मसिद्धि का यही उपाय है।

(४) जीव द्रव्य, चैतन्य मूर्ति और अनंत गुण सम्पन्न है,

मूर्तीक और अमूर्तीक दो भेद हैं, जीव भी अमूर्तीक है इस-लिए अमूर्तीक वस्तुका ध्यान करना व्यर्थ है। आत्मा स्वयं सिद्ध, स्थिर चैतन्यस्वभावी, ज्ञानामृत स्वरूप है इस संसार में जिन्हें परिपूर्ण अमृतरसका स्वाद लेनेकी अभिलाषा है वे ऐसे ही आत्मा का अनुभव करते हैं।

(१२) जीव चैतन्य है, अजीव जड़ है, इस प्रकार लक्षण भेद से दोनों प्रकारके पदार्थ पृथक् पृथक् हैं। विद्वान लोग सम्यग्दर्शन के प्रकाश से उन्हें जुदे जुदे देखते और निश्चय करते हैं, परन्तु संसार में जो मनुष्य अनादि काल से दुर्निवार मोह की तीक्ष्ण मदिरा से उन्मत्त हो रहे हैं वे जीव और जड़ को एक ही कहते हैं, उनकी यह कुटेव टालनेसे भी नहीं टलती है।

(१३) इस हृदयमें अनादि काल से मिथ्यात्वरूप महा अज्ञानकी विस्तृत नाटयशाला है, उसमें और कोई शुद्ध स्वरूप नहीं दिखता केवल एक पुद्गल ही बड़ा भारी नाच कर रहा है, वह अनेक रूप पलटता है और रूप आदि विस्तार करके नाना कौतुक दिखाता है परन्तु मोह और जड़से निराला सम्यग्दृष्टि आत्मा उस नाटकका मात्र देखनेवाला है (हर्ष विषाद नहीं करता)

(१४) जिस प्रकार आरा काटके दो खण्ड कर देता है, अथवा जिस प्रकार राजहंस क्षीर नीर का पृथक्करण कर देता है, उसी प्रकार भेदविज्ञान अपनी भेदक-शक्ति से जीव और पुद्गल को जुदा जुदा करता है। पश्चात् यह भेद विज्ञान उन्नति करते करते अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और परमावधि ज्ञान की अवस्था को प्राप्त होता है और इस रीति से वृद्धि करके पूर्ण स्वरूपका प्रकाश अर्थात् केवलज्ञान स्वरूप हो जाता है जिसमें लोक अलोक के सम्पूर्ण पदार्थ प्रतिबिंबित होते हैं।

हमें दबाया है— हमें दुगना बोध हुआ है। बस, सब जानने की शक्ति रखने वाला जीव है वही तुम हो चेतन हो, निज हो, आत्मा हो। आत्मा के सिवाय एक और पदार्थ जिसे तुमने निजही से दबाया है वह नरमसा कुछ मैलासा कालासा कुछ गोरासा कुछ सुगंध दुर्गंधवानसा प्रतीत होता है उसे शरीर कहते हैं। यह शरीर जड़ है, अचेतन है, नाशवान है, पर पदार्थ है आत्म स्वभाव से भिन्न है। इस शरीर से अहंबुद्धि करना अर्थात् शरीर और शरीर के संबंधी धन, स्त्री, पुत्रादिको अपने मानना मिथ्याज्ञान है। लक्षण भेद के द्वारा निज आत्मा को स्व और आत्मा के सिवाय सब चेतन अचेतन पदार्थों को पर जानना ही सद्विज्ञान है उसी का नाम प्रज्ञा है। जिस प्रकार राजहंस दूध और पानी को पृथक् पृथक् कर देता है उसी प्रकार विवेक के द्वारा आत्म व पुद्गल को पृथक्करण करना पुद्गलों से अहंबुद्धि या राग द्वेष हटाकर निज स्वरूप में लीन होना चाहिये और "तेरो घट सर तामें तूही है कमल ताको, तूंही मधुकर है स्ववास पहचान रे।" वाली शिक्षा का हमेशा अभ्यास करना चाहिये।

(३) कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार

(१) यह अजीव अधिकार का रहस्य स्पष्ट वर्णन किया, अब जीव अजीव के कर्ता क्रिया कर्म को सुनो।

(२) जीव पहले अज्ञान की दशा में कहता था कि, मैं सदैव अकेला ही कर्म का कर्ता हूँ दूसरा कोई नहीं है; परन्तु जब अंतरंग में विवेक हुआ और स्वपर का भेद समझा तब सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ, भारी भूल मिट गई, छहों द्रव्य गुण पर्याय सहित ज्ञात होने लगे, सब दुख नष्ट हो गये और पूर्ण परमात्माका स्वरूप दिखने लगा, पुद्गल पिंड को कर्म का कर्ता माना आप स्वभाव

वा अन्य द्रव्यों के गुण जानने की शक्ति है। जीव चेतन है और पुद्गल अचेतन, जीव अरूपी है और पुद्गल रूपी, इस प्रकार दोनों में बड़ा अन्तर है। जब तक भेद विज्ञान नहीं होता तब तक मिथ्यामति रहती है और जीव अपनेको कर्म का कर्ता मानता है परन्तु सुबुद्धि का उजेला होने पर यह भ्रान्ति मिट जाती है।

(७) अवस्थाएं पलटने वाला द्रव्य कर्ता है, उसकी अवस्था कर्म है और अवस्था से अवस्थान्तर होना क्रिया है; इस प्रकार एक वस्तु के तीन नाम हैं।

(८) कर्ता, कर्म और क्रिया का करनेवाला है, कर्म भी क्रिया और कर्ता रूप है, सो नाम के भेद से एक ही वस्तु कई रूप होती है। पुनः

(९) एक कर्म की एक ही क्रिया व एक ही कर्ता होता है दो नहीं होते, सो जीव पुद्गल की जब जुदी जुदी सत्ता है तब एक स्वभाव कैसे हो सकता है?

(१०) एक परिणाम के कर्ता दो द्रव्य नहीं होते, दो परिणामों को एक द्रव्य नहीं करता, एक क्रिया को दो द्रव्य कभी नहीं करते, दो क्रियाओं को भी एक द्रव्य नहीं करता। जीव और पुद्गल यद्यपि एक क्षेत्रावगाह स्थित हैं तो भी अपने अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। पुद्गल जड़ है इसलिये अचेतन परिणामों का कर्ता और चिदानंद आत्मा चैतन्य भाव का कर्ता है।

(११) जो अत्यन्त कठोर है, दुःखों का दूत है, परद्रव्य जनित है, अंधकूप के समान है, किसी से हटाया नहीं जा सकता ऐसा मिथ्यात्व भाव जीव को अनादि काल से लग रहा है। और इसी कारण जीव, परद्रव्य में अहंबुद्धि करके अनेक अवस्थाएं धारण करता है। यदि कोई जीव किसी समय मिथ्यात्व का अंधकार नष्ट करे और परद्रव्य से ममत्व भाव हटाकर शुद्ध भावरूप परि-

(१५) जिस प्रकार हंसके मुखका स्पर्श होनेसे दूध और पानी पृथक् पृथक हो जाते हैं उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवोंकी सुदृष्टिमें स्वभावतः जीव कर्म और शरीर भिन्न भिन्न भासते हैं। जब शुद्ध चैतन्यके अनुभवका अभ्यास होता है, तब अपना अचल आत्मद्रव्य प्रतिभासित होता है उसका किसी दूसरेसे मिलाप नहीं दिखता। हां पूर्वबद्ध कर्म उदयमें आये हुए दिखते हैं पर अहंबुद्धि के अभावमें उनका कर्त्ता नहीं होता मात्र दर्शक रहता है।

(१६) जिस प्रकार स्पर्शज्ञानसे शीत स्वभाव वाले गरम जल को अग्निजनित उष्णता पहिचानी जाती है, अथवा जिस प्रकार जिह्वा इन्द्रियसे अनेक स्वादवाली साग सब्जी का नमक जुदा जान लिया जाता है, उसी प्रकार भेद विज्ञानसे घट-पिंडमें का अज्ञान-रूप विकार और ज्ञानमूर्ति जीव परख लिया जाता है, आत्माको कर्मका कर्त्ता मानना मिथ्यात्व है, द्रव्यदृष्टिसे 'आत्मा कर्मका कर्ता है' ऐसा भाव ही नहीं होना चाहिये।

(१७) ज्ञानभावका कर्त्ता ज्ञानी है अज्ञान का कर्त्ता अज्ञानी है और द्रव्य कर्मका पुद्गल है ऐसा निश्चयनय से जानो।

(१८) ज्ञान रूप आत्मा ही ज्ञानका कर्त्ता है और दूसरा नहीं है। द्रव्य कर्मको जीव करता है यह व्यवहार वचन है।

(१९) पुद्गल कर्मको जीव नहीं करता है, ऐसा आपने कहा सो मेरी समझमें नहीं आता। कर्मका कर्त्ता कौन है और उसकी कैसी क्रिया है? ये अचेतन कर्म अपने आप जीवसे कैसे बँधते छूटते हैं? मुझे यह सन्देह है। शिष्यकी इस शंकाका निर्णय करने के लिये श्रीगुरु यथार्थ बात कहते हैं।

(२०) पुद्गल द्रव्य परिणामी है, वह सदैव परिणमन किया करता है, इससे पुद्गल कर्मका पुद्गल ही कर्त्ता है।

(२१) जीव चेतना संयुक्त है, सब जगह सदा पूर्ण है, इस.

बँधा हुआ और एक नयसे सदा खुला हुआ है, ऐसे से अपने दोनों पक्ष अनादि कालसे धारण किये हुए है। एक नय कर्म सहित, ओर एक नय कर्म रहित कहता है सो जिस नयसे जैसा कहा है वैसा है। जो बँधा हुआ तथा खुला हुआ दोनों ही बातों को मानता है, और दोनोका अभिप्राय समझता है, वही सम्यग्ज्ञानी जीव का स्वरूप जानता है।

(२७) पहिला निश्चय और दूसरा व्यवहार नय है, इनका प्रत्येक द्रव्यके गुण पर्यायोके साथ विस्तार किया जाय तो अनन्त भेद हो जाते हैं। जैसे जैसे नयके भेद बढ़ते हैं, वैसे वैसे चंचल स्वभावी चित्तमें तरंगें भी उपजती हैं, जो लोक और अलोकके प्रदेशोके बराबर हैं। जो ज्ञानी जीव ऐसी नयकोटिका पक्ष छोड़ करस मता रस ग्रहण करके आत्म स्वरूप की एकताको नहीं छोड़ते, वे महामोहको नष्ट करके अनुभवके अभ्यासमें निजात्म बल प्रकट करके पूर्ण आनन्दमें लीन होते हैं।

(२८) जैसे कोई तमासगार चौराहे पर ढोल बजावे और अनेक स्वांग बनाके ठग विद्यासे लोगोंको भ्रम में डाल देवे, उसी प्रकार मैं अनादि काल से मिथ्यात्वके झकोरोसे भ्रम में भूला रहा और अनेक शरीरोंको अपनाया। अब ज्ञान-ज्योति का उदय हुआ जिससे मिथ्यादृष्टि हट गई, सब स्वपर वस्तुकी पहिचान हुई और उस ज्ञान कलाके प्रकट होते ही ऐसी अवस्था प्राप्त हुई कि हमने अपनी असली आत्मज्योति पहिचान ली।

(२९) जिस प्रकार उत्तम रत्नकी ज्योतिमें चमक उठती है' अथवा जलमें तरग उठता है, और उसीमें समा जाती है, उसी प्रकार शुद्ध आत्मा, पर्यायापेक्षा उपजता और नष्ट होता है, तथा द्रव्यापेक्षा अपने स्वरूपसे स्थिर रहता है। ऐसे निर्विकल्प, नित्य, आनन्दरूप, अनादि, अनन्त, शुद्ध आत्मा को तत्काल ग्रहण

कर्म जीव के विभाव हैं। आत्मा एक है और पुद्गल अनंत हैं दोनोंकी एकसी प्रकृति कैसे हो सकती है? क्योंकि संसार में सब द्रव्य अपने अपने स्वभावमें परिणमन करते हैं, जो इसे भी अज्ञानी जीवको कर्मका कर्त्ता कहते हैं सो केवल मोहकी विकलता है।

(३६) जीव मिथ्याभावको नहीं करता और न रागादि भाव-मलका धारक है कर्म पुद्गल हैं, और ज्ञान तो ज्ञानरूप होकर स्थिर रहता है, उसकी जीव के असंख्यात प्रदेशों में स्थिर, गंभीर, धीर, निर्मल ज्योति अत्यन्त जगमगाती है, सो जब तक हृदय में प्रकाशित रहता है, तब तक मिथ्यात्व नहीं रहता। जैसे कि नगर में धर्मराज वर्तनेसे जहाँ तहाँ नीति ही नीति दिखाई देती है, अनीतिका लेश भी नहीं रहता।

तृतीय अधिकार का सार

करना सो क्रिया, किया जाय सो कर्म, जो करे सो कर्त्ता है। अभिप्राय यह कि जो क्रियाका व्यापार करे अर्थात् काम करने वालेको कर्त्ता कहते हैं, जिसमें क्रियाका फल रहता है अर्थात् किये हुए कामको कर्म कहते हैं, जो (करतूति) कार्रवाई की जावे उसे क्रिया कहते हैं। जैसे कि कुंभकार कर्त्ता है, घट कर्म है और घट बनाने की विधि क्रिया है। अथवा ज्ञानीराम आम तोड़ता है, इस वाक्यमें ज्ञानीराम कर्त्ता, आम कर्म और तोड़ना क्रिया है।

स्मरण रहे कि ऊपरके दो दृष्टान्तोंसे जो स्पष्ट किया है वह भेद-विवक्षासे है, क्योंकि कर्त्ता कुंभकार पृथक् पदार्थ है, कर्म घट पृथक् पदार्थ है, घट सृष्टि की क्रिया पृथक् है। इसी प्रकार दूसरे वाक्यमें ज्ञानीराम कर्त्ता पृथक् है, आम कर्म पृथक् है, और तोड़ने की क्रिया पृथक् है। जैसे भेद-व्यवहारमें कर्त्ता कर्म क्रिया भिन्न भिन्न रहते हैं, वैसे अभेद-दृष्टिमें नहीं होते—एक पदार्थमें ही कर्त्ता

कर्म क्रिया तीनों रहते हैं। जैसे कि "चिद्भाव कर्म चिदेश कर्त्ता चेतना किरिया तहाँ" अर्थात् चिदेश आत्मा कर्त्ता, चैतन्यभाव कर्म और चेतना (जानना) क्रिया है अथवा मृत्तिका [illegible] से घटपर्याय रूप होना क्रिया है। इस अधिकारमें कर्त्ता कर्म क्रिया शब्द कही भेद-दृष्टिसे और कहीं अभेद-दृष्टिसे आये हैं, सो [illegible] गहन विचारपूर्वक समझना चाहिये।

अज्ञान की दशा में जीव शुभाशुभ कर्म और शुभाशुभ [illegible] को अपनी मानता है और उनका कर्त्ता आप बनता है, परन्तु खूब ध्यान रहे कि लोक में अनंत पौद्गलिक कार्माण वर्गणाएं भरी हुई हैं, इन कार्माण वर्गणाओंमें ऐसी शक्ति है कि आत्माके राग द्वेष का निमित्त पाकर वे कर्मरूप हो जाती हैं। [illegible] कि ज्ञानावरणीय आदि कर्म पुद्गल रूप हैं, अचेतन हैं, [illegible] इनका कर्त्ता है—आत्मा नहीं है, हां, राग द्वेष और [illegible] विकार हैं। ये आत्म-जनित हैं या पुद्गल-जनित [illegible] द्रव्यसंग्रह में बड़ा अच्छा समाधान किया है, [illegible] कि—जैसे संतान को न तो अकेली माता ही [illegible] हैं और न अकेले पिता से उत्पन्न [illegible] संयोग से संतान की उत्पत्ति है। इसी प्रकार [illegible] अकेला आत्मा उपजाता है और न अकेला [illegible] है, जीव और पुद्गल दोनों के संयोग से [illegible] की उत्पत्ति है, यदि अकेले पुद्गल से [illegible] कलम, कागज, ईंट, पत्थर आदि में [illegible] यदि अकेले आत्मा से [illegible] द्वेष पाये जाते, [illegible] आत्मा दोनों के संयोग से है, [illegible] लिये निमित्त नैमित्तिक है, [illegible]

(३१) ज्ञानी जीव पूर्व बद्ध कर्म के उदय से सुख दुःख दोनों भोगते हैं पर वे उसमें ममता और राग द्वेष नहीं करते-ज्ञान ही में मस्त रहते हैं इससे उन्हें निष्परिग्रह ही कहा है।

(३२) संसार की मन वांछित भोग विलास की सामग्री अथिर हैं, वे अनेक चेष्टाएँ करने पर भी स्थिर नहीं रहती, उसी प्रकार विषय अभिलाषाओं के भाव भी अनित्य हैं। भोग और भोग की इच्छाएँ इन दोनों में एकता नहीं है और नाशवान हैं इससे ज्ञानियों को भोगों की अभिलाषा ही नहीं उपजती, ऐसे भ्रम पूर्ण कार्यों को तो मूर्ख ही चाहते हैं, ज्ञानी [illegible] सावधान रहते हैं-पर पदार्थों से अनुराग नहीं करते, इससे ज्ञानियों को निर्वांछिक ही कहा है।

(३३) जिस प्रकार फिटकरी लोद और [illegible] विना मजीठ के रंग में सफेद कपड़ा डुबाने से [illegible] तक डूबा रखने से भी उस पर रंग नहीं चढ़ता [illegible] लाल नहीं होता अंतरंग में सफेदी ही रहती है। इसी प्रकार राग-द्वेष मोह रहित ज्ञानी मनुष्य परिग्रह समूह में [illegible] तो भी पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा करता है, [illegible] करता। वह विषय सुख की वान्छा नहीं करता और [illegible] मोह रखता है।

(३४) जैसे कोई बलवान पुरुष जंगल में [illegible] निकालता है तो उसको बहुत सी मधु मक्खियां [illegible] परन्तु कम्बल ओढ़े हुए होने से [illegible] उसी प्रकार सम्यग्दृष्टी जीव [illegible] मोक्ष मार्ग को साधते हैं [illegible] है, इससे आनन्द में रहते हैं [illegible] व्यापती समाधि का लाभ [illegible] है।

करके मोक्ष सुख की ओर देखो ऐसी बुद्धिमानी तुम्हें शोभा देगी।

(४०) जिनके चित्त में सम्यग्ज्ञान की किरण प्रकाशित हुई है वे संसार में स्वभाव से ही वीतरागी रहते है,ज्ञानी होकर विषय सुख में आसक्त हों यह उलटी रीति असम्भव,है।

(४१) ज्ञान वैराग्य एक साथ उपजने से सम्यग्दृष्टी जीव मोक्षमार्ग को साधते हैं जैसे कि नेत्र पृथक् पृथक् रहते हैं पर देखने का काम एक साथ करते है।

(४२) मिथ्यादृष्टी जीव क्रिया के फल की (भोगों की) अभि-लाषा करता है और उसका फल चाहता है [illegible] का कर्ता है। सम्यग्ज्ञानी जीवों की भोग आदि शुभाशुभ [illegible] उदासीनता पूर्वक होती है इससे उन्हें [illegible] और दिन दूनी निर्जरा ही होती है।

(४३) जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपने शरीर पर [illegible] जाल पूरता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टी जीव [illegible] प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार [illegible] निकलता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टी जीव [illegible] होते हैं।

(४४) जो पूर्व में बांधे हुए पुण्य कर्म के उदय [illegible] भोगने में आसक्त नहीं होते और पापकर्म के उदय [illegible] भोगते हुए संतापित नहीं होते—न [illegible] करते हैं परन्तु साहसपूर्वक शारीरिक [illegible] विज्ञान अत्यन्त दृढ़ हैं, जो शुभ क्रिया [illegible] आदि नहीं चाहते, वे विज्ञान [illegible] सुख भोगते हैं तो भी उन्हें [illegible]

(४५) जिनकी ज्ञानदृष्टी में [illegible] प्रवृत्ति और विचार शुभ [illegible]

जिसका संयोग है उसका वियोग है, और परिग्रह समूह जंजाल के समान हैं। इस प्रकार चितवन करने से चित्त में इन सब का भय नहीं उपजता। ज्ञानी लोग अपने आत्मा को सदा निष्कलंक और ज्ञानरूप देखते हैं इससे निःशंक रहते हैं।

(५०) ज्ञान का पिण्ड आत्मा ही हमारा लोक है, जिसमें मोक्ष का सुख मिलता है। जिसमें दोष और दुःख है ऐसे स्वर्ग आदि अन्य लोक मेरे नहीं हैं! नहीं हैं!! सुगति का दाता पुण्य और दुखदायक दुर्गतिपद का दाता पाप है, सो दोनों ही नाशवान हैं और मैं अविनाशी हूँ--मोक्षपुरी का बादशाह हूँ। ऐसा विचार करने से परलोकका भय नहीं सताता। ज्ञानी मनुष्य अपने आत्मा को सदा निष्कलंक और ज्ञानरूप देखते हैं इससे निःशंक [illegible] हैं।

(५१) स्पर्श, जीभ, नाक, नेत्र और कान ये पांच इन्द्रियां, मन, वचन, काय ये तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयु [illegible] प्राणों के वियोग को लोक में लोग मरण [illegible] ज्ञान प्राण संयुक्त है वह तीन काल में कभी भी [illegible] नहीं है। इस प्रकार जिनराज का कहा हुआ [illegible] तत्वस्वरूप चितवन करने से मरण का भय [illegible] मनुष्य अपने आत्मा को सदा [illegible] और [illegible] इससे निःशंक रहते हैं।

(५२) जीव ज्ञानी है और [illegible] ज्ञान रूप अंग में जड़ कर्मों [illegible] दोनों प्रकार का सुख दुःख [illegible] पौद्गलिक है और आत्मा से [illegible] मनमें आता है तब वेदना [illegible] पुरुष अपने आत्मा को सदा [illegible]

जीव लोगों के देखने में सधन हों चाहे निर्धन हों वे तो आनंद ही में रहते हैं। जब उन्होंने पदार्थका स्वरूप समझ लिया और अपने आत्मा को नित्य और निराबाध जान लिया तो उनके चित्त पर सप्त प्रकार का भय नहीं उपजता और उनका अष्टांग सम्यग्दर्शन निर्मल होता है जिससे अनंत कर्मों की निर्जरा होती है।

वन्ध द्वार

(१) मोक्षमार्ग सिद्ध करने वाले निर्जरा तत्त्वका वर्णन किया, अब बंध का व्याख्यान कुछ विस्तार करके कहता हूं।

(२) जिसने मोह की शराब पिलाकर संसारी जीवों को व्याकुल कर डाला है, जिसकी घुटने तक लम्बी भुजायें हैं [illegible] संसारमें प्रसिद्धि है, जो महाजाल के समान है, और जो [illegible] चन्द्रमा को प्रभा रहित करने के लिये राहु के सदृश है। [illegible] रूप भयंकर योद्धा का बल नष्ट करने के लिये जो [illegible] हुआ है, जो बहुत बलवान महान और पुरुषार्थी है, [illegible] मय सम्यक्त्व रूपी योद्धा को पंडित बनारसीदासजी [illegible] नमस्कार करते हैं।

(३ जहां आत्मा में ज्ञान की ज्योति प्रकाशित है [illegible] रूपी धरती पर सत्य रूप सूर्य का उजाला है और [illegible] कर्मों की सघनता है वहां मोह के फैलाव का [illegible] हुआ ही है। इस प्रकार जीव की चेतना दोनों [illegible] चुप होकर शरीररूपी मेघ-घटा में बिजली [illegible] है। वह बुद्धि ग्राह्य नहीं है और न दृष्ट [illegible] की तरंग के समान पानी ही में [illegible] जाती है।

उसी माफिक वर्त्तता है । कर्म का उदय बहुत ही प्रबल होता है वह जीव की शक्तियों को कुचल डालता है और उसे अपने उदय के अनुकूल परिणमाता है।

(८) जिस प्रकार कीचड़ के गड्ढे में पड़ा हुआ हाथी अनेक चेष्टायें करने पर भी दुख से नहीं छूटता, जिस प्रकार लोह कंटक में फँसी हुई मछली दुख पाती है—निकल नहीं सकती, जिस प्रकार तेज बुखार और मस्तक शूल में पड़ा हुआ मनुष्य अपना कार्य करने के लिये स्वाधीनतापूर्वक नहीं उठ सकता, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी जीव जानते सब हैं परन्तु पूर्व उपार्जित कर्मोदय के फंदे में फँसे हुए होने से उनका कुछ वश नहीं चलता अर्थात् वे संयम आदि ग्रहण नहीं कर सकते।

(९) जो जीव मिथ्यात्व की निद्रा मे सोते रहते हैं वे मोक्ष मार्ग में प्रमादी वा पुरुषार्थ हीन होते हैं और जो विचार ज्ञान नेत्र उघाड़ कर जाग्रत हुए हैं वे प्रमाद छोड़कर मोक्षमार्ग में पुरुषार्थ करते हैं।

(१०) जिस प्रकार विवेक हीन मनुष्य माथे में [illegible] पैरमें रत्न पहिनता है वह कांच और रत्नका मूल्य नहीं समझता, उसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव अतत्त्वमें मग्न रहता है और [illegible] ही को ग्रहण करता है, वह सत् असत् को नहीं जानता। [illegible] में हीरा की परीक्षा जौहरी ही जानते हैं, [illegible] मात्र ज्ञानदृष्टि से होती है। जो जिन अवस्था [illegible] वह उसी को भली जानता है और जिसका जैसा [illegible] वैसी ही परणति करता है, अर्थात् मिथ्यादृष्टी [illegible] ही को ग्राह्य समझता है और उसे अपनाता है, [illegible] सम्यक्त्व को ही ग्राह्य जानता वा उसे अपनाता है।

(११) जो विवेक हीन होकर कर्म की [illegible]

हैं वे अज्ञानी तथा प्रमादी हैं और जो मोक्ष पाने का प्रयत्न करते हैं वे पुरुषार्थी हैं।

(१२) जब तक जीव का विचार शुद्ध वस्तु में रमता है तब तक वह भोगों से सर्वथा विरक्त रहता है और जब भोगों में लीन होता है तब ज्ञान का उदय नहीं रहता, क्योंकि भोगों की इच्छा अज्ञान का रूप है। इससे स्पष्ट है कि जो जीव भोगों में मग्न होता है वह मिथ्यात्वी है और जो भोगों से विरक्त है वह सम्यग्दृष्टी है। ऐसा जान कर भोगों से विरक्त होकर मोक्ष का साधन करो! यदि मन पवित्र है तो कठौती के जल में नहाना ही गंगा स्नान के समान है और यदि मन, मिथ्यात्व विषय कषाय आदि से मलीन है तो गंगा आदि करोड़ों तीर्थों के स्नान से भी आत्मा में पवित्रता नहीं आती।

(१३) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये पुरुषार्थ के चार अंग हैं। उन्हें दुर्बुद्धी जीव मन चाहे ग्रहण करते हैं और सम्यग्दृष्टी ज्ञानी जीव सम्पूर्णतया वास्तविक रूप से अंगीकार करते हैं।

(१४) अज्ञानी लोग कुल पद्धति-स्नान चौका आदि को धर्म कहते हैं और पंडित लोग वस्तु स्वभावको धर्म कहते है। अज्ञानी लोग मिट्टी के ढेर सोने चांदी आदि को द्रव्य कहते हैं, परन्तु ज्ञानी लोग तत्त्व अवलोकन को द्रव्य कहते हैं। अज्ञानी लोग पुरुष स्त्री के विषय भोग को काम कहते हैं। अज्ञानी लोग पुरुष स्त्री के विषय भोग को काम कहते हैं, ज्ञानी आत्मा की निस्पृहता को काम कहते हैं। अज्ञानी स्वर्ग लोक को वैकुण्ठ (मोक्ष) कहते हैं पर ज्ञानी लोग कर्म बन्धन नष्ट होने को मोक्ष कहते हैं।

(१५) वस्तु स्वभाव का यथार्थ जानना धर्म पुरुषार्थकी सिद्धि करना है, छह द्रव्यों का भिन्न भिन्न जानना अर्थ पुरुषार्थ की साधना है, निस्पृहता का ग्रहण करना काम पुरुषार्थ की सिद्धि

करना है। ऐसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को सम्यग्दृष्टी जीव अपने हृदय में सदा अंतरदृष्टि से देखते हैं और मिथ्यादृष्टी जीव मिथ्यात्व के भ्रम में पड़कर चारों पुरुषार्थों की साधक और आराधक सामग्री पास में रहते हुए भी उन्हें नहीं देखता और बाहर खोजता फिरता है।

(१६) तीन लोक और तीनों काल में जगत के जीवों को पूर्व उपार्जित कर्म उदय में आकर फल देता है जिससे कोई अधिक आयु पाते हैं, कोई छोटी उमर में मरते हैं, कोई दुखी होते हैं, कोई सुखी होते हैं और कोई साधारण स्थिति में रहते हैं। इस पर मिथ्यात्वी ऐसा मानने लगता है कि मैंने इसे जिलाया है, इसे मारा, इसे सुखी किया, इसे दुखी किया है। इसी [illegible] बुद्धि से अज्ञान का परदा नहीं हटता और यही [illegible] कर्म बन्ध का कारण है।

(१७) जब तक संसारी जीवों का जन्म मरणरूप [illegible] तब तक वे असहाय हैं—कोई किसी का रक्षक नहीं है। [illegible] पूर्वकाल में जैसी कर्म सत्ता बांधी है उदय में उनकी वैसी [illegible] हो जाती है। ऐसा होने पर भी जो कोई [illegible] हूं, मैं मारता हूं इत्यादि अनेक प्रकार की [illegible] वह इसी अहंबुद्धि से व्याकुल होकर सदा [illegible] अपनी आत्म शक्ति का घात करता है।

(१८) उत्तम मनुष्य का स्वभाव [illegible] मिश्री दाख के समान कोमल (दयालु) [illegible] स्वभाव नारियल के समान बाहर तो [illegible] अन्तरंग में कोमल रहता है। [illegible] समान बाहर से कोमल पर अन्तरंग में [illegible] अधमाधम पुरुष का स्वभाव [illegible]

बाह्य सर्वांग कठोर रहता है।

(१९) कंचन को कीचड़ के समान, राज्य पद को नितान्त तुच्छ, लोगों की मित्रता को मृत्यु के समान, प्रशंसा को गाली के समान, योग की क्रियायो को जहर के समान, मंत्रादि करामात को दुःख के समान, लौकिक उन्नति को अनर्थ के समान, शरीर को क्रान्ति को राख के समान, संसार की माया को जंजाल के समान, घर के निवास को बाण की नोंक के समान, कुटुम्ब के कार्य को काल के समान, लोक लाज को लार के समान, सुयश को नाँक के मैल के समान और भाग्योदय को विष्टा के समान जो जानता है, (वह उत्तम पुरुष है) उसे प० बनारसीदास जी नमस्कार करते हैं।

(२०) जैसे किसी सज्जन को कोई ठग ठगमूली खिला देवे तो वह मनुष्य ठगों का दास बन जाता है और उन ठगों की आज्ञा में चलता हे। परन्तु जब उस बूटी का असर मिट जाता है और उसे होश आता है तब ठगों को भला नहीं जानता हुआ भी उनके आधीन रह कर अनेक प्रकार के कष्ट सहता है। उसी प्रकार अनादि काल का मिथ्यात्वी जीव संसार में सदैव भटकता फिरता है और चैन नहीं पाता। परन्तु जब ज्ञान ज्योति का विकाश होता है तब अन्तरंग में यद्यपि विरक्त भाव रहता है तौ भी कर्म उदय की प्रबलता के कारण शान्ति नहीं पाता (मध्यम पुरुष है)।

(२१) जिस प्रकार गरीब मनुष्य को एक फूटी कौड़ी भी बड़ी सम्पत्ति के समान प्रिय लगती है, उल्लू को संध्या ही प्रभात के समान इष्ट होती है, कुत्ते को वमन ही दही के (१) समान रुचिकर होता है कौवे को नीम की निबोरी दाख के समान प्रिय होती है, बच्चे को लौकिक वार्तायें (गप्पें) ही शास्त्रवत् रोचक होती हैं, हिंसक मनुष्य को हिंसा ही में धर्म दिखता है उसी प्रकार

मूर्ख को पुण्य बन्ध ही मोक्ष के समान प्रिय लगता है (ऐसा अधम पुरुष होता है) ।

(२२) जिस प्रकार कुत्ता हाथी को देखने पर क्रोधित होकर भोंकता है, धनाढ्य पुरुष को देखकर निर्धन मनुष्य क्रोधित होता है, रात में जगने वाले को देखकर चोर क्रोधित होता है, सत्‌शास्त्र सुनकर मिथ्यात्वी जीव क्रोधित होता है, हंस को देखकर कौवा क्रोधित होता है, महापुरुष को देखकर घमंडी मनुष्य क्रोध करता है, सुकवि को देखकर कुकवि के मन में क्रोध आता है, उसी प्रकार सत्पुरुष को देखकर अधमाधम पुरुष क्रोधित होता है।

(२३) अधमाधम मनुष्य, सरल चित्त मनुष्य से मूर्ख कहता है, जो बातचीत में चतुर होवे उसे धीठ कहता है, [illegible] को धन के आश्रित बतलाता है, क्षमावान को कमजोर कहता है, संयमी को कृपण कहता है, मधुभाषी को गरीब कहता है, [illegible] को ढोंगी कहता है, निस्पृही को घमंडी कहता है, [illegible] को भाग्यहीन कहता है अर्थात् जहाँ सद्‌गुण देखता है [illegible] दोष लगाता है। दुर्जन का हृदय ऐसा ही मलीन होता है।

(२४) मैं कहता हूँ मैंने यह कैसा काम किया [illegible] नहीं बन सकता), अब भी मैं जैसा कहता हूँ वैसा [illegible] जिसमें ऐसे अहंकार रूप विपरीत भाव होते हैं [illegible] होता है।

(२५) अहंकार का भाव मिथ्यात्व है [illegible] होता है वह मिथ्यात्वी है। मिथ्यात्वी संसार में [illegible] कता है और अनेक प्रकार के विलाप करता है।

(२६) जिस प्रकार अंजुलि का पानी [illegible] प्रकार सूर्य का उदय अस्त होता है और [illegible] है। जिस प्रकार करौत खींचने से काठ [illegible]

काल शरीर को क्षण क्षरण पर क्षीरण करता है। इतने पर भी अज्ञानी जीव मोक्षमार्ग की खोज नहीं करता और लौकिक स्वार्थ के लिये अज्ञानका बोझा उठाता है, शरीर आदि पर वस्तुओं से प्रीति करता है, मन वचन काय के योगों में अहंबुद्धि करता है और सांसारिक विषय भोगों से किंचित भी विरक्त नहीं होता।

(२७) जिस प्रकार ग्रीष्म काल में सूर्य का तीव्र आताप होने पर प्यासा मृग उन्मत्त होकर मिथ्या जल की ओर व्यर्थ ही दौड़ता है,उसी प्रकार संसारी जीव माया ही में कल्यारण सोचकर मिथ्या कल्पना करके संसार में नाचते हैं। जिस प्रकार अंधा मनुष्य आगेको रस्सी वटता (भांजता) जावे और पीछे से वछड़ा खाता जावे, तो उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है, उसी प्रकार मूर्ख जीव शुभाशुभ क्रिया करता है वा शुभ क्रिया के फल में हर्ष और अशुभ क्रिया के फल में विषाद करके क्रिया का फल खो देता है।

(२८) जिस प्रकार लोटन कवूतर के पंखों में मजवूत पेंच लगे होनेसे वह उलट पुलट फिरता है,उसी प्रकार संसारी जीव अनादि कालसे कर्म वन्धन के पेच में उलटा हो रहा है,कभी सन्मार्ग ग्रहरण नहीं करता, और जिसका फल दुःख है,ऐसी विषय भोगकी किंचित् साता को सुख मानकर शहद लपेटी तलवार की धार को चाटता है। ऐसा अज्ञानी जीव सदा काल पर वस्तुओं को मेरी मेरी कहता है और अपनी ज्ञानादि विभूति को नहीं देखता, परद्रव्य के इस ममत्व भाव से आत्महित ऐसा नष्ट हो जाता है जैसे कि कांजी के स्पर्श से दूध फट जाता है।

(२९) अज्ञानी जीव को अपने स्वरूप की खवर नहीं है, उस पर कर्मोदय का डांक लग रहा है, उसका शुद्ध ज्ञान ऐसा दव रहा है जैसे कि चन्द्रमा मेघों से दव जाता है। ज्ञान नेत्र ढँकजाने से वह सद्गुरु की शिक्षा नहीं मानता, मूर्खतावश दरिद्री हुआ

सदैव निःशंक फिरता है । नाक है सो मान की एक [illegible]
उसमें तीन फाँक हैं, मानो किसी ने शरीर में तीन का अंक [illegible]
लिख रक्खा है,उसे नाक कहता है, उस नाक (अहंकार) के रखने
को लड़ाई करता है, कमर से तलवार बांधता है और मन की
वक्रता ग्रहण करता है ।

(३०) जिस प्रकार भूखा कुत्ता हड्डी चबाता है और उसकी
अनी चारों ओर से मुख में चुभ जाती है, जिससे [illegible]
जीभ तथा जबड़ों का मास फट जाता है और खून [illegible]
उस निकले हुए अपने ही रक्त को वह बड़े स्वाद से [illegible]
आनंदित होता है । उसी प्रकार अज्ञानी विषय-लोलुपी [illegible]
भोग में आसक्त होकर संताप और कष्ट में [illegible]
कामक्रीड़ा में शक्ति की हानि और मल मूत्र की [illegible]
दिखती है, तो भी वह ग्लानि नहीं करता, राग द्वेष में [illegible]
रहता है ।

(३१) वास्तव में आत्मा कर्मों से निराला है, [illegible]
कारण स्वरूप को भूलकर मिथ्यात्वी बन गया है [illegible]
आदि में अहंबुद्धि करके अनेक विकल्प करता है । [illegible]
द्रव्यों से ममत्व भाव छोड़कर आत्म स्वरूप में [illegible]
साधु है ।

(३२) जिनराज का कथन है कि [illegible]
प्रदेशों के बराबर मिथ्यात्व भाव के [illegible]
नय से हैं । जिस जीव को मिथ्यात्व [illegible]
प्रकट होता है, वह व्यवहार [illegible]
वह विकल्प और उपाधि रहित [illegible]
ज्ञान चारित्र रूप मोक्षमार्ग में लगाता है और [illegible]
स्थिर होकर निर्वाण प्राप्त करता है. [illegible]

(३३) शिष्य मस्तक नवा कर प्रश्न करता है कि हेगुरुजी! आपने मोहकर्म की सब परणति वन्ध का कारण कही है, सो वह शुद्ध चैतन्य भावों से सदा निराली ही है। अब कहिये वन्ध का मुख्य कारण क्या है? वन्ध जीव का ही स्वाभाविक धर्म है अथवा इसमें पुद्गल द्रव्य का निमित्त है? इस पर श्रीगुरु उत्तर देते हैं, कि हे भव्य! सुनो।

(३४) जिस प्रकार स्वच्छ और सफेद सूर्य कान्ति अथवा स्फटिक मणि के नीचे अनेक प्रकार के डाँक लगाये जावें तो वह अनेक प्रकारका रंग विरंगा दिखने लगता है, और यदि वस्तु का असली स्वरूप विचार किया जावे तो उज्जलता ही ज्ञात होती है, उसी प्रकार जीव द्रव्य में पुद्गल के निमित्त से उसकी ममता के कारण मोह मदिरा की उन्मत्तता होती है, पर भेद विज्ञान द्वारा स्वभाव सोचा जावे, तो सत्य और शुद्ध चैतन्य की वचनातीत सुख शान्ति प्रतीत होती है।

(३५) जिस प्रकार कि पृथ्वी तल पर यद्यपि नदी का प्रवाह एक रूप होता है, तौ भी पानी की अनेक अवस्थायें होती हैं, अर्थात् जहां पत्थर से ठोकर खाता है, वहाँ पानी की धार मुड़ जाती है, जहां रेत का समूह होता है, वहाँ फेन पड़ जाता है, जहाँ हवा का झकोरा लगता है, वहाँ लहरें उठती हैं जहाँ धरती ढालू होती है वहा भँवर पड़ती है। उसी प्रकार एक आत्मा में भाँति भाँति के पुद्गलों का संयोग होने से अनेक प्रकार की विभाव परणति होती है।

(३६) आत्मा का लक्षण चेतना है और शरीर आदि का लक्षण जड़ है, सो शरीर आदि से ममत्व छोड़ कर शुद्ध चैतन्य का ग्रहण करना उचित है।

(३७) जो संसार की सब क्रियायें करता है, जो जगत को

जानने देखने वाला है, जो शरीर के बराबर रहता है, पर शरीर से पृथक् है। क्योंकि शरीर जड़ है और वह चैतन्य है, वह [illegible] (आत्मा) यद्यपि देह में है पर देह से निराला है, वह [illegible] रहता है, सबको दिखाई नहीं देता, ज्ञानी लोग लक्षण आदि से उसे पहचानते हैं वह इन्द्रिय गोचर नहीं है।

(३८) देह जड़ है मानों प्रेत की गुफा ही है। यह [illegible] वीर्य से भरी हुई है, मल मूत्ररूपी खेत की क्यारी है, [illegible] गठरी है, आत्मा के स्वरूप को ढँकने वाली है, [illegible] है और आत्मध्यान से पृथक है। हे जीव! यह देह [illegible] करती है, तो भी तुझे प्रिय लगती है, आखिर तो यह [illegible] छोड़ेगी ही; फिर तू ही इससे अनुराग क्यों नहीं [illegible]

(३९) श्रीगुरु उपदेश करते हैं कि हे जीव! शरीर [illegible] खदान है, स्वभाव से ही दुख और दोषमय है [illegible] बाधक है।

(४०) यह देह बालू की गढ़ी के समान [illegible] मढ़ी के समान है और भीतर पर्वत की [illegible] मय है। ऊपर की चमक दमक और [illegible] दिखती है, परन्तु कनैर की कली के समान [illegible] से भरी हुई, अत्यन्त खराब और कानी [illegible] है, माया का समुदाय और मैल की मूर्ति [illegible] और संग से हमारी बुद्धि कोल्हू के बैल के [illegible] जिससे संसार में सदा भ्रमण करना पड़ता है।

(४१) इस देह में जगह जगह [illegible] झुण्ड हैं, यह हड्डियों से भरी हुई है, [illegible] स्थान ही है। जरासा धक्का लगने से [illegible] कागज की पुड़िया अथवा कपड़े की [illegible]

अथिर स्वभाव को प्रकट करती है। पर मूर्ख लोग इससे स्नेह लगाते हैं, यह सुख की घातक और बुराइयों की खानि है। इसही के प्रेम और संग से हमारी बुद्धि कोल्हू के बैल के समान संसार में चक्कर लगाने वाली हो गई है।

(४२) संसारी जीवों की दशा कोल्हू के बैल के समान हो रही है, वह इस प्रकार है कि—नेत्रों पर ढँकना बंधा हुआ है, स्थान की कमी के कारण दबोच से सिकुड़ासा रहता है, चाबुक की मार के डर से शरीर ने कष्ट की जरा भी परवाह नहीं करता, दौड़ना ही उसका काम है, उसके कंधे में जोत लगा हुआ है (जिससे निकल नहीं सकता), हर समय अरई की मार सहता हुआ मन में हत साहस होता है, भूख प्यास और निर्दय पुरुषों द्वारा प्राप्त कष्ट भोगता है, क्षण भर भी विश्राम लेने की थिरता नहीं पाता और पराधीन हुआ चक्कर लगाता है।

(४३) संसारी जीव मनुष्य आदि का शरीर धारण करके भटक रहे हैं, सो मरघट के दीपक तथा रेत के टीवे के समान क्षणभंगुर हैं। वस्त्र आभूषण आदि से अच्छे दिखाई देते हैं परन्तु साँझ के आकाश के समान क्षणभर में मलीन हो जाते हैं। वे मोह की अग्नि से जलते हैं फिर भी माया की ममता में लीन होते हैं और घास पर पड़ी हुई ओस की बूंद के समान क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं। उन्हें निज स्वरूप की पहिचान नहीं है, भ्रम में भूल रहे हैं और प्लेग के चूहों के समान नाच नाच कर शीघ्र मर जाते हैं।

(४४) हे संसारी जीवो! जिसे तुम कहते हो कि यह हमारा धन है, उसे साधुजन इस तरह छोड़ देते हैं जिस तरह कि नाक का मैल छिनक दिया जाता है और फिर ग्रहण नहीं किया जाता। जिस धन के लिये तुम कहते हो कि पुण्य के निमित्त से पाया

जाता है सो डेढ़ दिन का बड़प्पन है पीछे नरकों में पटकने वाला है, अर्थात् पापरूप है तुम्हें इसमें आंखों का सुख दिखता है, इसके कारण तुम कुटुम्बी जन आदि से ऐसे घिर रहे हो जैसे मिठाई के ऊपर मक्खियां भिनभिनाती हैं। आश्चर्य है कि इतने पर भी संसारी जीव संसार से विरक्त नहीं होते, सच पूछो तो संसार में असाता ही असाता है क्षणमात्र को भी साता नहीं है।

(४५) हे भव्य! ये संसारी जीव और इस संसार से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है, तुम्हारे ज्ञानघट में समस्त संसार का समावेश है और उसमें तुम्हारा ही राज्य है।

(४६) इसी ही मनुष्य शरीर में तीन लोक मौजूद हैं, इसी में तीनों प्रकार के परिणाम हैं, इसी में कर्म उपाधि [illegible] अग्नि है, इसीमें आत्म-ध्यानरूप कुन्द की [illegible] इसी में [illegible] का कर्ता आत्मा है, इसी में उसकी क्रिया है, इसी में [illegible] है, इसी में कर्म का भोग या वियोग है इसी में [illegible] संघर्षण है और इसी देह में नव [illegible] जिसके अन्तरंग में सम्यग्ज्ञान है [illegible] होते हैं।

(४७) श्रीगुरु बुला [illegible] स्वरूप को पहिचानते नहीं हो, [illegible] वह अपने ही में है, अपने में [illegible] और अत्यन्त निर्विकार हो, [illegible] प्रवेश नहीं है। तुम्हारा स्वरूप [illegible] जो तुम्हें सूझता नहीं है।

(४८) आत्मा को जानने [illegible] लिये कोई तो बाबाजी बन जाते हैं, कोई [illegible] को जाते हैं, कोई प्रतिमा [illegible]

छींके पर बैठ पहाड़ों पर चढ़ते हैं, कोई कहते हैं कि ईश्वर आसमान में है और कोई कहते हैं कि पाताल में है परन्तु हमारा प्रभु दूरदेश में नहीं है—हम ही में है सो हमें भले प्रकार अनुभव में आता है।

(४६) श्रीगुरु कहते हैं कि जो सम्यग्दृष्टी अत्यन्त वीतरागी होकर मन को खूब स्थिर करके आत्म अनुभव करता है वही आत्म स्वरूप को प्राप्त होता है।

(५०) यह मन क्षणभर में पंडित बन जाता है, क्षणभर में माया से मलीन हो जाता है, क्षण भर में विषयों के लिये दीन होता है, क्षणभर में गर्व से इन्द्र जैसा बन जाता है, क्षणभर में जहाँ तहाँ दौड़ लगाता है और क्षण भर में अनेक वेष बनाता है। जिस प्रकार दही विलोवने पर छाँछ की गड़बड़ी होती है वैसा कोलाहल मचाता हैं, नट का थाल, रहट की माला, नदी की धार का भँवर अथवा कुम्हार के चाक के समान घूमता ही रहता है। ऐसा भ्रमण करने वाला मन आज कैसे स्थिर हो सकता है, जो स्वभाव से ही चंचल और अनादि काल से वक्र है।

(५१) यह मन सुख के लिये हमेशा से ही भटकता रहा है पर कहीं सच्चा सुख नहीं पाया। अपने स्वानुभव के सुख से विरुद्ध हुआ दुःखों के कुए में पड़ रहा है। धर्म का घाती, अधर्म का सँगाती, महा उपद्रवी, सन्निपात के रोगी के समान असावधान हो रहा है। धन सम्पत्ति आदि को फुर्ती के साथ ग्रहण करता है और शरीर से मुहब्बत लगाता है, भ्रम जाल में पड़ा हुआ ऐसा भूल रहा है जैसा शिकारी के घेरे में खर्गोश भ्रमण करता है। यह मन पताका के वस्त्र के समान चंचल है, वह ज्ञान का उदय होने से मोक्षमार्ग में प्रवेश करता है।

(५२) जो मन विषय कषाय आदि में वर्तता है वह चंचल

जुदा जानता है और आत्म स्वभाव से भिन्न मानता है। उन पुद्गल कर्मों के मूल कारण राग द्वेष मोह आदि विभाव हैं, उन्हें नष्ट करने के लिए शुद्ध अनुभव का अभ्यास करता है और ५४ वें कवित्त में कही हुई रीति से पररूप तथा आत्म स्वभाव से भिन्न वन्ध पद्धति को हटाकर अपने ही में अपने ज्ञान स्वभाव को ग्रहण करता है। इस प्रकार वह सदैव मोक्षमार्ग का साधन करके बंधन रहित होता है और केवलज्ञान प्राप्त करके लोकालोक का ज्ञायक होता है।

(५८) जिस प्रकार कोई अजान महाबलवान मनुष्य अपने बाहुबल से किसी वृक्ष को जड़ से उखाड़ डालता है, उसी प्रकार भेदविज्ञानी मनुष्य ज्ञान की शक्ति से द्रव्यकर्म और भावकर्म को हटा कर हलके हो जाते हैं। इस रीति से मोह का अंधकार नष्ट हो जाता है और सूर्य से भी श्रेष्ट केवलज्ञान की ज्योति जागती है. फिर कर्म नोकम से नहीं छिप सकने योग्य अनन्त शक्ति प्रगट होती है जिससे वह सीधा मोक्ष को जाता है और किसी का रोका नहीं रुकता।

आठवें अधिकार का सार

यद्यपि सिद्धालय में अनंत कार्माण वर्गणाएँ भरी हुई हैं तो भी सिद्ध भगवान को कर्म का बंध नहीं होता, अरहन्त भगवान योग सहित होने पर अबंध नहीं रहते हैं, प्रमत्त रहित हिंसा हो जाने पर मुनियों को बंध नहीं होता, सम्यग्दृष्टी जीव असंयमी होनेपर भी बंधसे रहित हैं। इससे स्पष्ट है कि कार्माण वर्गणाओं, योग हिंसा और असंयम से बंध नहीं होता, केवल शुभ अशुभ अशुद्धोपयोग ही बंध का कारण है। अशुद्ध उपयोग राग द्वेष मोहरूप है, और राग द्वेष मोह का अभाव सम्यग्दर्शन है, अतः बंधका अभाव

त्रिलोकीनाथ को पंडित वनारसीदासजी नमस्कार करते हैं।

(३) जैन शास्त्र के ज्ञाता एक जैनी ने वहुत ही सावधान होकर विवेकरूपी तेज छैनी अपने हृदय में डाल दी, जिसने प्रवेश करते ही नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म और निज स्वभावका पृथक्करण कर दिया। वहाँ उस ज्ञाता ने वीच में पड़कर एक अज्ञानमय और एक ज्ञानसुधारसमय ऐसी दो धारा देखीं, तव वह अज्ञान धारा छोड़कर ज्ञानरूप अमृत सागर में मग्न हुआ। इतनी सव क्रिया उसने मात्र एक समय में ही की।

(४) जिस प्रकार लोहे की छैनी काष्ट आदि वस्तु के दो खंड कर देती है उसी प्रकार चेतन अचेतन का पृथक्करण भेद-विज्ञान से होता है।

(५) सुवुद्धि धर्मरूप फल को धारण करती है, कर्म मल को हरती है, मन वचन काय तीनों वलों को मोक्षमार्ग में लगाती है, जीभ से स्वाद लिये विना उज्ज्वल ज्ञान का भोजन खाती है, अपनी अनंत ज्ञानरूप सम्पत्ति चित्त रूप दर्पण में देखती है, मर्म की वात अर्थात् आत्मा का स्वरूप वतलाती है, मिथ्यात्व रूप नगर को भस्म करती है सद्गुरु की वाणी ग्रहण करती है, चित्त में स्थिरता लाती है, जगत की हितकारी वनकर रहती है, त्रिलोकीनाथ की भक्ति में अनुराग करती है,मुक्ति की अभिलाषा उत्पन्न करती है, ऐसा सुवुद्धि का विलास है।

(६) भेद विज्ञानी ज्ञाता, राजा जैसा रूप वनाये हुए है। वह अपने आत्मरूप स्वदेश की रक्षा के लिये परिणामों की सम्हाल रखता है, और आत्मसत्ता भूमिरूप स्थान को पहिचानता है, प्रशम, संवेग, अनुकंपा आदि की सेना सम्हालने में दाना अर्थात् प्रवीण होता है, शाम, दाम, दंड भेद आदि कलाओं में कुशल राजा के समान है, तप, समिति, गुप्ति, परीषहजय, धर्म, अनुप्रेक्षा

समता, एकता ये नव प्रकारकी भक्ति हैं, जो ज्ञानी जीव करते हैं।

(९) आत्म अनुभवी जीव कहते हैं कि हमारे अनुभव में आत्म स्वभाव से विरुद्ध चिन्हों का धारक कर्मों का फन्दा हम से पृथक है, वे आप अपने को अपने द्वारा अपने में जानते हैं। द्रव्य की उत्पाद, व्यय और ध्रुव यह त्रिगुण धारा जो मुझ में वहती है, सो ये विकल्प, व्यवहार नय से हैं, मुझ से सर्वथा भिन्न हैं, मैं तो निश्चय नय का विषयभूत शुद्ध और अनन्त चैतन्यमूर्त्ति का धारक हूं, मेरा यह सामर्थ्य सदा एकसा रहता है—कभी घटता बढ़ता नहीं है।

(१०) चैतन्य पदार्थ एकरूप ही है, पर दर्शन गुणको निराकार चेतना और ज्ञान गुण को साकार चेतना कहते हैं। सो ये सामान्य और विशेष दोनों एक चैतन्य ही के विकल्प हैं, एक ही द्रव्य में रहते हैं। वैशेषिक आदि मत वाले आत्मा में चैतन्य गुण नहीं मानते हैं, सो उनसे जैनमतवालों का कहना है कि चेतना का अभाव मानने से तीन दोष उपजते हैं, प्रथम तो लक्षण का नाश होता है, दूसरे लक्षण का नाश होने से सत्ता का नाश होता है। इसलिये जीव द्रव्य का स्वरूप जानने के लिये चैतन्य ही का अवलम्बन है।

(११) आत्मा का लक्षण चेतना है, और आत्मा सत्ता में है, क्योंकि सत्ता धर्म के विना आत्मपदार्थ सिद्ध नहीं होता, और अपनी सत्ता प्रमाण वस्तु है, सो द्रव्य अपेक्षा तीनो में भेद नहीं है एक ही है।

(१२) जिस प्रकार सुनार के द्वारा गढ़े जाने पर सोना गहनेके रूप में हो जाता है, पर गलाने से सुवर्ण ही कहलाता है, उसी प्रकार यह जीव अजीवरूप कर्म के निमित्त से अनेक वेष धारण करता है, पर अन्यरूप नहीं हो जाता, क्योंकि चैतन्य गुण कहीं

विचारते हैं, जिन्हें मन में कभी आकुलता नहीं व्यापती, वे ही जीव त्रैलोक्य में मोक्षमार्ग के साधक हैं, चाहे घर में रहें, चाहे वन में रहें।

(१७) जो विचारते हैं कि मेरा आत्म पदार्थ चैतन्यरूप है, अछेद्य, अभेद्य, शुद्ध और पवित्र है, जो राग द्वेप मोह को पुद्गल का नाटक समझते हैं; जो भोग सामग्री के संयोग और वियोग की आपत्तियों को देखकर कहते हैं कि ये कर्मजनित है—इसमें हमारा कुछ नहीं है, ऐसा अनुभव जिन्हें सदा रहता है, उनके समीप ही मोक्ष है।

(१८) जो मनुष्य पर द्रव्य हरण करता है वह मूर्ख है, चोर है, जो अपने धन का उपयोग करता है, वह समझदार है, साहूकार है (१९) जो पर द्रव्य की संगति में मग्न रहता है, वह बंध संतति को बढ़ाता है और जो निज सत्ता में लीन रहता है, वह सहज ही मोक्ष पाता है।

(२०) जो पर्यायों से उत्पन्न और नष्ट होता है, परस्वरूप से स्थिर रहता है, उसे द्रव्य कहते हैं, और द्रव्य के क्षेत्रावगाह को सत्ता कहते हैं।

(२१) आकाश द्रव्य एक है उसकी सत्ता लोक अलोक में है, धर्म द्रव्य एक है, उसकी सत्ता लोक प्रमाण है, अधर्म द्रव्य भी एक है, उसकी सत्ता भी लोक प्रमाण है, काल के अणु असंख्यात हैं, उनकी सत्ता असंख्यात है, पुद्गल द्रव्य अनंतानंत हैं, उसकी सत्ता अनंतानंत है, जीव द्रव्य अनंतानंत हैं, उनकी सत्ता अनंतानंत हैं, इन छहों द्रव्यों की सत्ताएँ जुदी जुदी हैं कोई सत्ता किसी से मिलती नहीं, और न एकमेक होती है। निश्चयनय में कोई किसी के आश्रित नहीं सब स्वाधीन हैं। ऐसा अनादि काल से चला आ रहा है।

वाला अपराधी जीव मिथ्यात्वी है, अपनी आत्माका हिंसक है, हृदयका अंधा है। वह शरीर आदि पर पदार्थों को आत्मा मानता है और कर्म बंध को बढ़ाता है (२७) आत्मज्ञान के बिना उसका तपाचरण मिथ्या है, उसकी मोक्ष सुख की आशा झूठी है, ईश्वर को जाने बिना ईश्वर की भक्ति वा दासत्व मिथ्या है।

(२८) सोना चांदी जो पहाड़ों की मिट्टी है उन्हें निज सम्पत्ति कहता है, शुभ क्रिया को अमृत मानता है और ज्ञान को जहर जानता है। अपने आत्मरूप को ग्रहण नहीं करता, शरीर आदिको आत्मा मानता है, साता वेदनीय जनित लौकिक सुखमें आनन्द मानता है और असाताके उदयको आफत कहता है। क्रोध की तलवार ले रक्खी है, मानकी शराब पी बैठा है, मन में माया की वक्रता है और लोभ के चक्कर में पड़ा हुआ है। इस प्रकार अचेतन की संगति से चिद्रूप आत्मा सत्य से परान्मुख होकर झूठ ही में उलझ रहा है।

(२९) संसार में भूत वर्तमान भविष्यत काल का धारा प्रवाह चक्र चल रहा है, उसे कहता है कि मेरा दिन, मेरी राति, मेरी घड़ी, मेरा पहर है, जिस पृथ्वी खण्ड पर रहता है उसे अपना नगर बतलाता है। इस प्रकार अचेतन की संगति से चिद्रूप आत्मा सत्यसे परान्मुख होकर झूठ में उलझ रहा है।

(३०) जिन जीवों की कुमति नष्ट हो गई है, जिनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश है और जिन्हें आत्मस्वरूप की पहिचान है वे भले मनुष्य हैं।

(३१) जिनकी धर्मध्यानरूप अग्नि में संशय विमोह विभ्रम ये तीनों वृक्ष जल गये हैं, जिनकी सुदृष्टि के आगे उदयरूपी कुत्ते भोंकते भोंकते भाग जाते हैं, वे ज्ञानरूपी हाथी पर सवार हैं इससे कर्मरूपी धूल उन तक नहीं पहुंचती। जिनके विचार में

(३७) जहाँ शुभ अशुभ प्रवृत्तिरूप प्रमाद नहीं रहता, वहां अपने को अपना ही अवलम्ब अर्थात् शुद्धोपयोग होता है, इससे स्पष्ट है कि प्रमाद की उत्पत्ति मोक्षमार्ग में बाधक है।

(३८) जो मुनि प्रमाद सहित होते हैं वे गेंद की तरह नीचे से ऊपरको चढ़ते और फिर नीचे को पड़ते हैं, और जो प्रमाद छोड़कर स्वरूप में सावधान होते हैं, उनकी दृष्टि में मोक्ष बिलकुल पास ही दिखता है।

(३९) जब तक हृदय में प्रमाद रहता है तब तक जीव पराधीन रहता है, और जब प्रमाद की शक्ति नष्ट हो जाती है तब शुद्ध अनुभव का उदय होता है।

(४०) इसलिये प्रमाद संसार का कारण है और अनुभव मोक्ष का कारण है। प्रमादी जीव संसार की ओर देखते हैं और अप्रमादी जीव मोक्ष की तरफ देखते हैं।

(४१) जो जीव प्रमादी और आलसी हैं, जिनके चित्त में अनेक विकल्प होते हैं, और जो आत्म अनुभव में शिथिल हैं, उनसे स्वरूपाचरण दूर ही रहता है।

(४२) जो जीव प्रमाद सहित और अनुभव में शिथिल हैं, वे शरीर आदि में अहंबुद्धि करते हैं और जो निर्विकल्प अनुभव में रहते हैं उनके चित्त मे सदा समता रस रहता है।

(४३) जो मुनिराज विकल्प रहित हैं, अनुभव और शुद्ध ज्ञान दर्शन सहित हैं, वे थोड़े ही समय में कर्म रहित होते हैं, अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं।

(४४) जैसे पहाड़ पर चढ़े हुए मनुष्य को नीचे का मनुष्य छोटा दिखता है, और नीचे के मनुष्य को ऊपर पहाड़ पर चढ़ा हुआ मनुष्य छोटा दिखता है, पर जब वह नीचे आता है तब दोनों का भ्रम हट जाता है और विषमता मिट जाती है, उसी

कर मन वचन काय के तीनो योगों का निग्रह करके वंध परंपरा का संवर करते हैं, जिन्हें राग द्वेष मोह नहीं रहता वे साक्षात् मोक्षमार्ग के सन्मुख रहते हैं (४६) जो पूर्व बंध के उदय में ममत्व नहीं करते, पुण्य पाप को एकसा जानते हैं, अंतरंग और बाह्य में निर्विकार रहते हैं, जिनके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र गुण उन्नति पर है (५०) ऐसी जिनकी स्वाभाविक दशा है, उन्हें आत्म स्वरूप की दुविधा कैसे हो सकती है ? वे मुनि क्षपक श्रेणि पर चढ़ते हैं और केवली भगवान बनते हैं ।

(५१) जो इस रीति से अष्ट कर्म का वन जलाकर परिपूर्ण हुए है, उनकी महिमा को जो जानता है उसे पंडित बनारसीदास जी नमस्कार करते हैं।

(५२) शुद्धता का अंकुर प्रगट हुआ, मिथ्यात्व जड़ से हट गया, शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान क्रमशः ज्ञान का उदय बढ़ा, केवलज्ञान का प्रकाश हुआ, आत्मा का नित्य और पूर्ण आनंदमय स्वभाव भासने लगा मनुष्य आयु और कर्म की स्थिति पूर्ण हुई, मनुष्यगति का अभाव हुआ और पूर्ण परमात्मा बना । इस प्रकार सर्व श्रेष्ठ महिमा प्राप्त करके पानी की बुन्द से समुद्र होने के समान अविचल, अखण्ड, निभय और अक्षय जीवपदार्थ, संसार में जयवन्त हुआ ।

(५३) ज्ञानावरणीय कर्म के अभाव से केवलज्ञान, दर्शनावरणीय कर्म के अभाव से केवल दर्शन, वेदनीय कर्म के अभाव से निराबाधता, मोहनीय कर्म के अभाव से शुद्ध चारित्र, आयु कर्म के अभाव से अटल अवगाहना, नाम कर्म के अभाव से अमूर्तीकता, गोत्र कर्मके अभाव से अगुरु लघुत्व और अंतराय कर्म के नष्ट होने से अनंतवीय प्रकट होता है । इस प्रकार सिद्ध भगवान में अष्ट कर्म रहित होने से अष्ट गुण होते हैं ।

नवमें अधिकार का सार

प्रगट हो कि मिथ्यात्व ही आस्त्रव बंध है और मिथ्यात्व का अभाव अर्थात् सम्यक्त्व, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष है, और मोक्ष आत्मा का निज स्वभाव अर्थात् जीवकी कर्ममल रहित अवस्था है। वास्तव में सोचा जावे तो मोक्ष होता ही नहीं है, क्योंकि निश्चय नय में जीव बँधा हुआ नहीं है—अबंध है, और जब अबंध है तव छूटेगा ही क्या? जीव मोक्ष हुआ यह कथन व्यवहार मात्र है. नहीं तो वह हमेशा मोक्षरूप ही है।

यह वात जगत् प्रसिद्ध है कि जो मनुष्य दूसरों के धन पर अपना अधिकार जमाता है, उस मूर्ख को लोक अन्यायी कहते हैं। यदि वह अपनी ही सम्पत्ति का उपयोग करता है तो लोग उसे न्यायशील कहते हैं, इसी प्रकार जब आत्मा पर द्रव्यों में अहंकार करता है. तव वह अज्ञानी मिथ्यात्वी होता है, और जब ऐसी वद आदत को छोड़कर आध्यात्मिक विद्या का अभ्यास करता है तथा आत्मीक रस का स्वाद लेता है तब प्रमाद का पतन करके पुण्य पाप का भेद हटा देता है और क्षपकश्रेणी चढ़ कर केवली भगवान वनता है, पश्चात् थोड़े ही समय में अष्ट कर्म रहित और अष्ट गुण सहित सिद्ध पद को प्राप्त होता है।

मुख्य अभिप्राय ममता हटाने और समता सम्हालने का है। जिस प्रकार कि सुनारके प्रसंग से सोने की नाना अवस्थाय होती हैं, परन्तु उसकी सुवर्णता कहीं नहीं चली जाती। जलाने से फिर सुवर्ण का सुवर्ण ही वना रहता है, उसी प्रकार यह जीवात्मा अनात्मा के संसर्ग से अनेक वेष धारण करता है, परन्तु उसकी चैतन्यता कहीं चली नहीं जाती है—वह तो ब्रह्म का ब्रह्म ही वना रहता है। इसलिये शरीर से मिथ्या अभिमान हटाकर

आत्म सत्ता और अनात्म सत्ता का पृथक्करण करना चाहिये ऐसा करने से थोड़े ही समय में आधुनिक बूंद मात्र ज्ञान स्वल्प काल ही में समुद्ररूप परिणमन करता है और अविचल अखंड अक्षय अनभय और शुद्ध स्वरूप होता है।

सर्व विशुद्धि द्वार।

(१) नाटक समयसार ग्रन्थ के मोक्ष अधिकार की इति श्री की, अब सर्व विशुद्धि द्वार को संक्षेप में कहते हैं।

(२) जिसकी सामर्थ्य के आगे कम का कर्ता है और कर्म का भोगता है ऐसा कहना हानिकारक है, पंचेंद्रिय भेद का कथन जिसमें नहीं हैं, जो सर्व दोष रहित है, जो न कर्म से बंधता है, न छूटता है, जो ज्ञान का पिंड और ज्ञानगोचर है, जो लोक व्यापी है, लोक से परे है, संसार में पूजनीय अर्थात् उपादेय है, जिसकी जाति शुद्ध है, जिसमें चैतन्य रस भरा हुआ है, ऐसा हंस अर्थात् आत्मा परम पवित्र है।

(३) जो निश्चय नय से आदि, मध्य और अंत में सदैव निर्मल है, पं० बनारसीदास जो कहते हैं कि वह चैतन्य पिंड आत्मा जगत में सदा जयवंत रहै।

(४) जीव पदार्थ वास्तव में कर्म का कर्त्ता नहीं है और न कर्मरस का भोगता है, मिथ्यामति से कर्म का कर्ता भोगता होता है अज्ञान हटने से कर्म का अकर्ता अभोगता ही होता है।

(५) निश्चयनय से देखो तो इस आत्मा का निज स्वभाव परम प्रकाशरूप है और जिसमें लोकालोक के छहों द्रव्यों के भूत भविष्यत वर्तमान त्रिकालवर्ती अनंत गुण पर्यायें प्रतिभासित होती हैं। वही जीव संसारी दशा में मिथ्यात्व की सेवा करने से कर्म का कर्ता दिखता है, सो यह मिथ्यात्व की सेवा मोह का

विस्तार है, मिथ्याचरण है, जन्ममरणरूप संसार का विकार है, व्यवहार का विषयभूत आत्मा का अशुद्ध स्वभाव है।

(६) जिस प्रकार जाव कर्म का कर्ता नहीं है उसी प्रकार भोगता भी नहीं है, मिथ्यात्व के उदय में कर्म का भोगता है, मिथ्यात्व के अभावमें भोगता नहीं है।

(७) शास्त्रों में मनुष्य आदि पर्यायों से सदा काल अहंबुद्धि रखने वाले अज्ञानी संसारी जीव को अपने स्वरूप का अज्ञाता होने से विषय भोगों का भोगता कहा है, और ज्ञानी सम्यग्दृष्टी जीव को भोगों से विरक्त भाव रखने के कारण विषय भोगते हुए भी अभोगता कहा है। ज्ञानी लोग इस प्रकार वस्तु स्वरूप का निर्णय करके विभाव भाव छोड़कर स्वभाव ग्रहण करते हैं, और विकल्प तथा उपाधि रहित आत्मा की आराधना वा योग निग्रह करने का मार्ग ग्रहण करके निज स्वरूप में लीन होते हैं।

(८) चैतन्य चिन्ह का धारक, अपने नित्य स्वभावका स्वामी, ज्ञान आदि गुण रूप रत्नों का भंडार, कर्म रूप रोगों का नष्ट करने वाला, ज्ञानी लोगों का प्रिय, मोक्ष मार्ग में कुशल, शरीर आदि पुद्गलों से पृथक, ज्ञान दर्शन का प्रकाशक, निज पर तत्त्व का ज्ञाता, संसार से विरक्त, मन वचन काय के योगों से ममत्व रहित होने के कारण ज्ञानी जीव ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्ता और भोगों का भोगता नहीं होता है।

(९) सम्यग्दृष्टी जीव इच्छा रहित क्रिया करते हैं और अंतरंग में भोगों से विरक्त रहते हैं, इससे वे सिद्ध भगवान के समान मात्र ज्ञाता दृष्टा हैं, कर्ता भोगता नहीं है।

(१०) हृदय का अंधा अज्ञानी जीव मिथ्यात्व से व्याकुल होकर मन में अनेक प्रकार के झूठे विकल्प उत्पन्न करता है, और एकान्त पक्ष ग्रहण करके आत्मा को कर्म का कर्ता मान के नीच

गति का पंथ पकड़ता है। वह व्यवहार सम्यक्त्वी भाव चारित्रके विना वाह्य चारित्र स्वीकार करके शुभ क्रिया से कर्म का कर्ता कहलाता है । वह मूर्ख मोक्ष को तो चाहता है परन्तु निश्चय सम्यक्त्व के विना संसार समुद्र से नहीं तरता ।

(११) जीव का चैतन्य चिन्ह जान लिया और पुद्गल कर्मको अचेतन पहिचान लिया । यद्यपि ये दोनों एक क्षेत्रावगाही हैं तो भीं एक दूसरे से नहीं मिलते।

(१२) दोनों द्रव्य अपने अपने गुण पर्याय में रहते हैं, कोई किसी का व्याप्य व्यापक नहीं है अर्थात् जीव में न तो पुद्गलका प्रवेश होता हैं और न पुद्गल में जीव का प्रवेश होता है । इससे जीव पदार्थ पौद्गलिक कर्मों का कर्ता कैसे हो सकता है।

(१३) यद्यपि जीव और पौद्गलिक कर्म एक क्षेत्रावगाह स्थित हैं तो भी दोनों की जुदी जुदी सत्ता है । उनके लक्षण, स्वरूप, गुण, पर्याय, स्वभाव में अनादि का ही भेद है। इतने पर भी जब तक मिथ्या भावका उल्टा विचार चलता है तबतक जीव पुद्गल की भिन्नता नहीं भासती, इससे अज्ञानी जीव अपने को कर्म का कर्ता मानता है, पर ज्ञान का उदय होते ही ऐसा सत्य श्रद्धान हुआ कि सचमुच में जीव कर्म का कर्ता नहीं है।

(१४) जो पदार्थ जैसा है वह वैसा ही है, उसमें अन्य पदार्थ नहीं मिल सकता, इससे जीव कर्म का अकर्त्ता है यह विज्ञान से सर्वथा सत्य है।

(१५) जो दुर्बुद्धिसे व्याकुल और अज्ञानी हैं वे निज परणति और पर परणति को नहीं जानते, माया में मग्न हैं और भ्रम में भूले हैं इससे वे भाव कर्म के कर्ता हैं।

(१६) जो मिथ्याज्ञान के अंधकार से जीव अजीव को नहीं जानते वे ही सदा भाव कर्म के कर्ता हैं (१७) जो विभाव पर-

राति के कारण परपदार्थों में अहंबुद्धि करते है वे अज्ञानी अशुद्ध भावों के कर्त्ता होने से भाव कर्मों क कर्ता हैं।

(१८) शिष्य प्रश्न करता है कि हे स्वामि आपने कहा कि कर्म का स्वरूप दो प्रकार का है, एक पुद्गलमय द्रव्यकर्म हैं और दूसरे चैतन्य के विकार भावकर्म हैं (१९) आपने यह भी कहा कि जीव द्रव्यकर्मों का कर्त्ता कभी त्रिकाल में भी नहीं हो सकता, तो अब आप कहिये कि भावकर्म किसकी परणति है ? (२०) इन भाव कर्मों का कर्त्ता कौन है ? और उनके फलका भोगता कौन है ? भाव कर्मों का कर्त्ता भोगता पुद्गल है या जीव है, या दोनों के सयोग से कर्त्ता भोगता है ?

(२१) क्रिया एक और कर्त्ता दो ऐसा कथन जिनराज के आगम में नहीं है, अथवा किसी की क्रिया कोई करे, ऐसा भी नहीं हो सकता (२२) क्रिया कोई करे और फल कोई भोगे ऐसा जैन वैन में नहीं है, क्योंकि जो कर्त्ता होता है, वही वास्तव में भोगता होता है (२३) भावकर्म का उत्पाद अपने आप नहीं होता, जो संसार की क्रिया-हलन चलन चतुर्गति भ्रमण आदि करता है (२४) भाव कर्मों का कर्त्ता जीव है भावकर्मों का भोगता जीव है, भावकर्म जीवकी विभाव परणति है। इनका कर्त्ता भोगता पुद्गल नहीं है, और पुद्गल तथा दोनों का मानना मिथ्या जंजाल है (२५) इससे स्पष्ट है कि भाव कर्मोंका कर्त्ता मिथ्यात्वी जीव है और वही उनके फल सुख दुख वा संयोग वियोग को सदा भोगता है।

(२६) अज्ञान से दुखी अनेक एकान्तवादी कहते हैं कि आत्मा कर्म का कर्त्ता नहीं है, वह पूर्ण परमात्मा है। और उनसे कोई कहे कि कर्मों का कर्त्ता जीव है तो वे एकान्तपक्षी कहते हैं कि कर्म का कर्त्ता कर्म ही है। ऐसे मिथ्यात्व में पगे हुए मिथ्यात्वी

जीव आत्मा के घातक हैं, उनके हृदय में अनादि कालसे मोहकर्म जनित भूल भरी हुई है। उनका मिथ्यात्व दूर करने के लिये श्रीगुरु ने स्याद्वादरूप आत्मा का स्वरूप वर्णन किया है।

(२७) मिथ्यात्व में पगा हुआ अज्ञानी जीव कम का कर्ता भोगता है, निश्चय का अवलम्बन लेने वाला सम्यक्त्वी कर्म का न करता है न भोगता है।

(२८) जिस प्रकार सांख्यमती कहते हैं कि आत्मा अकर्ता है, किसी भी हालत में कभी कर्ता नहीं हो सकता। जैनमती भी अपने गुरु के मुख से एक नय का कथन सुनकर इसी प्रकार मानते हैं, पर इस एकान्तवाद को अभी ही छोड़ दो, सत्यार्थ बात यह है कि जब तक अज्ञान है, तब तक ही जीव कर्म का कर्ता है, सम्यग्ज्ञान की सब हालतों में सदैव अकर्ता कहा है। जिसके हृदय में जब से ज्ञायक स्वभाव प्रगट हुआ है वह तभी से जगत के जंजाल से निराला हुआ--अर्थात् मोक्ष के सन्मुख हुआ है।

(२९) क्षणिकवादी बौद्धमतवाले कहते है कि जीव शरीर में क्षणभर रहता है, सदैव नहीं रहता। प्रथम समय में जो जीव है वह दूसरे समय में नहीं रहता। (३०) इससे मेरे विचार में जो कर्म करता है वह किसी हालत में भी भोगता नहीं हो सकता, भोगने वाला और ही होता है।

(३१) यह एकान्तवाद की मिथ्यापक्ष हटाने के लिये श्रीमज्जिनेन्द्रदेव आत्मा के नित्य स्वरूप का कथन करते हुए कहते हैं (३२) कि किसी मनुष्य ने बालकपन में कोई नगर देखा, और फिर कुछ दिनों के बाद जवानी की अवस्था में वही नगर देखा तो कहता है कि यह वही नगर है जो पूर्व में देखा था (३३)दोनों अवस्थाओं में वह एक ही जीव था तब तो उसने स्मरण किया, किसी दूसरे जीव का जाना हुआ वह नहीं जान सकता था (३४)

जब इस प्रकार का स्पष्ट कथन सुना और सच्चे जैनमत का उपदेश मिला तब वह एकान्तवादी मनुष्य प्रतिबुद्ध हुआ और उसने जैनमत अंगीकार किया।

(३५) जीवकी एक पर्याय एक समय में नष्ट होती है और दूसरे समय में दूसरी पर्याय उपजता है, और जैनमत का सिद्धान्त भी है, सो उसी बात को पकड़ के बौद्धमत कहता है कि क्षण-क्षणपर नया जीव उपजता है, और पुराना विनशता है। इससे वे मानते हैं कि कर्म का कर्त्ता और जीव है,तथा भोगता और ही जीव है, सो उनके चित्तमें ऐसी उलटी समझ बैठ गई है। श्रीगुरु कहते हैं कि जो पर्याय के अनुसार ही द्रव्य को सर्वथा अनित्य मानता है ऐसे मूर्ख की अवश्य कुगति होती है।

(३६) मूर्ख मनुष्य अनात्मा की चर्चा किया करता है, आत्मा का अभाव कहता है—आत्मशुद्धि नहीं चाहता। वह आत्मज्ञान से परान्मुख रहता है, बहुत परिश्रम पूर्वक समझाने से भी नहीं समझता (३७) मिथ्यादृष्टी जीव अज्ञानी है, और उसकी मिथ्या प्रवृत्ति दुर्गति का कारण है. वह एकान्तपक्ष ग्रहण करता है, और ऐसी मूर्खता से वह कभी भी मुक्त नहीं हो सकता।

(३८) अज्ञानी जीव शरीर से अनुराग रखता है, धन की कमी में हार और धन की बढ़ती में विजय मानता है. हठीला तो इतना होता है कि जिस प्रकार हरियल पक्षी अपने पांव से लकड़ी को खूब मजबूत पकड़ता है, अथवा जिस प्रकार गोह जमीन वा दीवाल को पकड़कर रह जाता है, उसी प्रकार वह अपनी कुटेव नहीं छोड़ता—उसी पर डटा रहता है। मोह के झकोरों से उसके भ्रम की थाह नहीं मिलती अर्थात् उसका मिथ्यात्व अनन्त होता है, वह चतुर्गति में भटकता हुआ मकड़ी-का सा जाल फैलाता है, इस प्रकार उसकी मूर्खता अज्ञान से

झूठ के मार्ग में भूल रही है, और ममता की साँकलों से जकड़ी हुई वढ़ रही है।

(३६) अज्ञानी जीव हिताहित नहीं विचारता, वात सुनते ही तेज पड़ने लगता है, वात ही सुनकर कुत्ते के समान भौंकने लगता है, मन रुचिती बात सुन कर नरम हो जाता है, और असुहाती वात हो तो ऐंठ जाता है। मोक्षमार्गी साधुओं की निन्दा करता है, हिंसक अधर्मियों की प्रशंसा करता है, साता के उदय में अपने को महान असाता के उदय में तुच्छ गिनता है। उसे मोक्ष नहीं सुहाता, कहीं दुर्गुण दिखाई देवें तो उन्हें शीघ्र अंगीकार कर लेता है। शरीर में अहंबुद्धि होने के कारण मौत से तो ऐसा डरता है जैसे वाघ से बकरी डरती है, इस प्रकार उसकी मूर्खता अज्ञान से झूठ के मार्ग में भूल रही है और ममता की साँकलों से जकड़ी हुई वढ़ रही है।

(४०) वौद्धमती जीवको अनित्य ही कहते हैं, मीमांसक मत वाले जीव को कर्म का करता ही कहते हैं, सांख्यमती जीव को कर्मरहित ही कहते हैं। ऐसे अनेक मत वाले एक एक धर्म को ग्रहण करके अनेक प्रकार का कहते हैं, पर जो एकान्त ग्रहण करते हैं वे मूर्ख हैं, विद्वान् लोग अनेकांत को स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार मोती जुदा जुदा होते हैं, पर सूत में गुहने से हार बन जाता है। उसी प्रकार अनेकांत से पदार्थ की सिद्धि होती है, और जिस प्रकार जुदा जुदा मोती हार का काम नहीं देते, उसी प्रकार एक नय से पदार्थ का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता, वल्कि विपरीत हो जाता है।

(४१) जैसे सूत में पोये विना मोतियों की माला नहीं वनती वैसे ही स्यादवादी के विना कोई मोक्षमार्ग नहीं साध सकता।

(४२) कोई पदार्थ के स्वभाव ही को, कोई पूर्व कर्म के उदय ही

को, कोई निश्चय मात्र को, कोई पुरुषार्थ को और कोई काल ही को मानते हैं, पर एक ही पक्ष का हठ ग्रहण करना मिथ्यात्व है, और अपेक्षित सब ही को स्वीकार करना सत्यार्थ है।

(४३) एक जीव पदार्थ के अनेक गुण, अनेक रूप, अनेक नाम हैं, वह परपदार्थ के संयोग बिना अर्थात् निजस्वरूप से शुद्ध है और परद्रव्य के संयोग से अशुद्ध हैं। उसे वेदपाठी अर्थात् वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं, मीमांसक कर्म कहते हैं, शैवलोग वैशेषिक मतवाले शिव कहते हैं, बौद्ध मतवाले बुद्ध कहते हैं जैनी लोग जिन कहते हैं, नैयायिक कर्त्ता कहते हैं। इस प्रकार छहों मत के कथन में वचन का विरोध है। परन्तु जो पदार्थ का निज स्वरूप जानता है वही पण्डित है, और जो वचन के भेद से पदार्थ में भेद मानता है वही मूर्ख है।

(४४) वेदान्ती जीव को निश्चय नय की दृष्टि से देखकर उसे सर्वथा ब्रह्म कहता है, मीमांसक जीवके कर्म उदय की तरफ दृष्टि देकर उसे कर्म कहता है, बौद्धमती जीव को बुद्ध मानता है और उसका क्षणभंगुर सूक्ष्म स्वभाव सिद्ध करता है, शैव जीव को शिव मानता है और शिव को कालरूप कहता है, नैयायिक जीव को क्रिया का कर्त्ता देख कर आनन्दित होता है और उसे कर्त्ता मानता है। इस प्रकार पांचों मत वाले जीव के एक-एक धर्म की पुष्टि करते हैं, परन्तु जैनधर्म अनुयायी जैनी लोग सर्व नय का विषयभूत आत्मा जानते हैं, अर्थात् जैनमत जीव को अपेक्षा से ब्रह्म भी मानता है, कर्मरूप भी मानता है, अनित्य भी मानता है, शिवस्वरूप भी मानता है, कर्त्ता भी मानता है, निष्कर्म भी मानता है, पर एकान्त रूप से नहीं। जैनमत के सिवाय सभी मत मतवाले हैं, सर्वथा एक पक्ष के पक्षपाती होने से उन्हे स्वरूप की समझ नहीं है।

(४५) जीव पदार्थ के लक्षण में भेद नहीं है, सब जीव समान हैं, इसलिये वेदान्ती का माना हुआ अद्वैतवाद सत्य है। जीव के उदय में गुणों की तरंगें उठती हैं, इसलिये मामांसक का माना हुआ उदय भी सत्य है। जीव में अनन्त शक्ति होने से स्वभाव में प्रवर्तता है, इसलिये नैयायिक का माना हुआ उद्यम अंग भी सत्य है। जीव की पर्यायें क्षण क्षण में बदलती हैं, इसलिये बौद्धमती का माना हुआ क्षणिक भाव भी सत्य है। जीव के परिणाम काल के चक्रके समान फिरते हैं, और उन परिणामोंके परिणमन में काल द्रव्य सहायक है, इसलिये शैवों का माना हुआ काल भी सत्य है। इस प्रकार आत्म पदार्थ के अनेक अंग हैं। एक को मानना और एक को नहीं मानना मिथ्याज्ञान है, और दुराग्रह छोड़कर एक में अनेक धर्म ढूँढना सम्यग्ज्ञान है। इसलिये संसार में जो कहावत है, कि 'खोजी पावे वादी मरे' सो सत्य है।

(४६) जीव में अनेक पर्याय होती हैं इसलिये एक में अनेक है, अनेक पर्यायें एक ही जीव द्रव्य की हैं इसलिये अनेक में एक है, इससे एक है या अनेक है कुछ कहा ही नहीं जा सकता। एक भी नहीं है, अनेक भी नहीं है, अपेक्षित एक है, अपेक्षित अनेक है। वह व्यवहार नय से कर्त्ता है निश्चय से अकर्त्ता है, व्यवहार नय से कर्मों का भोगता है, निश्चय से कर्मों का अभोक्ता है, व्यवहार नय से उपजता है, निश्चय नय से नहीं उपजता है—था, है और रहेगा, व्यवहारनय से मरता है निश्चय नय से अमर है, व्यवहार नय से बोलता है, विचारता है निश्चय नयसे न बोलता है, न विचारता है, निश्चय से उसका कोई रूप नहीं है- व्यवहार नय से अनेक रूपोंका धारक है। ऐसा चैतन्य परमेश्वर पौद्गलिक कर्मों की संगति से उलट पलट हो रहा है, मानों नट जैसा खेल खेल रहा है।

(४७) जीव की नट के समान उलटा पुलटी सविकल्प अवस्था है, वह अनुभव के योग्य नहीं है। अनुभव करने योग्य तो उसकी सिर्फ निर्विकल्प अवस्था ही है।

(४८) जैसे किसी चतुर मनुष्य ने मोतियों की माला बनाई, माला बनाने में अनेक प्रकार चतुराई की गई, परन्तु पहिनने-वाला माला बनाने की कारीगरी पर ध्यान नहीं देता, मोतियों की शोभा में मस्त होकर आनन्द मानता है, उसी प्रकार यद्यपि जीव न कर्त्ता है, न भोगता है, जो कर्त्ता है वही भोक्ता है, कर्त्ता और है, भोक्ता और है ये सब नय मान्य हैं तो भी अनुभव में ये सब विकल्प जाल त्यागने योग्य हैं, केवल निर्विकल्प अनुभव ही अमृत पान करना है।

(४९) द्रव्य कर्म का कर्त्ता आत्मा है यह व्यवहार नय कहता है, पर निश्चय नय तो जो द्रव्य जैसा है उसका वैसा ही स्वभाव होता है अर्थात् अचेतन द्रव्य अचेतन का कर्त्ता है और चेतन भाव का कर्त्ता चैतन्य हैं।

(५०) यद्यपि ज्ञान का स्वभाव ज्ञेयाकार रूप परिणमन करने का है, तौ भी ज्ञान,ज्ञान ही रहता है और ज्ञेय ज्ञेय ही रहता है। यह मर्यादा अनादि काल से चली आती है, कोई किसी के स्वभाव को ग्रहण नहीं करता अर्थात् ज्ञान ज्ञेय नहीं हो जाता और ज्ञेय ज्ञान नहीं हो जाता। इतने पर कोई मिथ्यामती—वैशेषिक आदि कहते हैं कि ज्ञेयाकर परिणमन से ज्ञान अशुद्ध हो रहा है, सो वे इसी मूर्खता से व्याकुल हुए भटकते हैं—वस्तु स्वभाव नहीं समझे भ्रम में भूले हुए हैं।

(५१) निश्चय नय से जगत में सब पदार्थ स्वाधीन हैं, कोई किसी की अपेक्षा नहीं करते और न कोई पदार्थ किसी पदार्थ से मिलता है। जीवात्मा जगत के जितने पदार्थ हैं उन्हें जानता है

पर वे सब उससे भिन्न रहते हैं।

(५२) अज्ञानी जीव कर्म करते हैं और उनका फल भोगते हैं, यह कथन व्यवहार नय का है, पदार्थ का निज स्वरूप नहीं है।

(५३) ज्ञान की परणति ज्ञेय के आकार हुआ करती है, पर ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं हो जाता, छहों द्रव्य ज्ञेय हैं और वे आत्मा के निज स्वभाव ज्ञान से भिन्न हैं, जो ज्ञेय ज्ञायक का भेद भाव गुण लक्षण से जानता है वह भेद विज्ञानी सम्यग्दृष्टी है। वैशेषिक आदि अज्ञानी ज्ञान में आकार का विकल्प देखकर कहते हैं कि ज्ञान में ज्ञेय की आकृति है, इससे ज्ञान स्पष्टतया अशुद्ध हो जाता है लोग इस अशुद्धता को नहीं देखते।

(५४) जो निराकार ब्रह्म है वह साकार कैसे हो सकता है? इसलिये जब तक ज्ञान ज्ञेयाकार रहता है, तब तक पूर्ण ब्रह्म नहीं हो सकता।

(५५) वैशेषिक आदि ब्रह्म की ज्ञेयाकार परणति को दोष मानते हैं, और उसके मिटाने का प्रयत्न करते हैं, सो किसी भी प्रयत्न से वस्तु का स्वभाव नहीं मिट सकता इसलिये वे मूर्ख वृथा ही कष्ट करते हैं।

(५६) अज्ञानी लोग पदार्थ की असलियत नहीं जानते और एकान्त कुटेव पकड़ते हैं, स्याद्वादी पदार्थ के सब अंगों के ज्ञाता हैं और पदार्थ के सब धर्मों को साक्षात् मानते हैं।

(५७) सम्यग्दृष्टी जीव शुद्ध द्रव्य का अनुभव करते हैं, और शुद्ध वस्तु जानने से हृदय में शुद्ध दृष्टी रखते हैं, इससे वे साहजिक स्वभावका लोप नहीं करते, अभिप्राय यह है कि ज्ञेयाकार होना ज्ञान का साहजिक स्वभाव है, जो सम्यग्दृष्टी जीव के स्वभाव का लोप नहीं करते।

(५८) जिस प्रकार चन्द्र किरण प्रकाशित होकर धरती को

सुफेद कर देती है, पर धरतीरूप नहीं हो जाती—ज्योतिरूप हो रहती है, उसी प्रकार ज्ञान शक्ति, हेय उपादेयरूप ज्ञेय पदार्थों को प्रकाशित करती है, पर ज्ञेयरूप नहीं हो जाती, शुद्ध वस्तु शुद्ध पर्यायरूप परिणमन करती है और निज सत्ता प्रमाण रहता है, वह कभी भी किसी हालत में अन्य रूप नहीं होती, यह बात निश्चित है और अनादि काल की जिनवाणी कह रही है।

(५९) जब तक इस जीव को मिथ्याज्ञान का उदय रहता है, तब तक वह राग द्वेष में वर्तता है। परन्तु जब उसे ज्ञान का उदय हो जाता है, तब वह कर्मपरणति को अपने से भिन्न गिनता है, और जब कर्मपरणति तथा आत्मपरणति का पृथक्करण करके आत्म अनुभव करता है, तब मिथ्या मोहनी को स्थान नहीं मिलता। और मोह के पूर्णतया नष्ट होने पर केवलज्ञान तथा अनंत सुख प्रगट होता है, जिससे सिद्ध पद की प्राप्ति होती है और फिर जन्म मरणरूप संसार में नहीं आना पड़ता।

(६०) जीवात्मा का अनादिकाल से कर्मों के साथ सम्बन्ध है, इसलिये वह सहज ही मिथ्या भाव को प्राप्त होता है, और राग द्वेष परणति के कारण स्व पर स्वरूप को नहीं जानता। पर मिथ्यात्वरूप अंधकार के नाश और सम्यक्त्व शशि के उदय होने पर राग द्वेष का अस्तित्व नहीं रहता—क्षण भर में नष्ट हो जाता है, जिससे आत्म अनुभवके अभ्यास रूप सुख में लीन होकर तारन तरन पूर्ण परमात्मा होता है। ऐसे पूर्ण परमात्मा का निश्चय स्वरूप अवलोकन करके पं० बनारसीदासजी चरण वन्दना करते हैं।

(६१) कोई कोई मूर्ख ऐसा कहते हैं कि आत्मा में राग द्वेष भाव पुद्गल की जबरदस्ती से होते हैं (६२) वे कहते हैं कि पुद्गल कर्मरूप परिणमन के उदय में जैसा जैसा जोर करता है, वैसे वैसे

बाहुल्यता से राग द्वेष परिणाम होते हैं।

(६३) श्रीगुरु कहते हैं कि जो कोई इस प्रकार उल्टा हठ ग्रहण करके श्रद्धान करते हैं वे कभी भी राग द्वेष मोह से नहीं छूट सकते (६४) और यदि जगत में जीव का पुद्गल से हमेशा ही संबंध रहे, तो उसे शुद्ध भावों की प्राप्ति का कोई भी मौका नहीं है—अर्थात् वह शुद्ध हो ही नहीं सकता। (६५) इससे चैतन्य भाव उपजाने में चैतन्य राजा ही समर्थ है, सो मिथ्यात्व की दशा में राग द्वेष भाव उपजाते हैं और सम्यक्त्व दशा में शिव भाव अर्थात् ज्ञान दर्शन सुख आदि उपजते हैं।

(६६) जिस प्रकार रात्रि में चिराग चहुँ ओर प्रकाश पहुँचाता है और घट पट पदार्थों को प्रकाशित करता है, पर घट, पटरूप नहीं हो जाता (६७) उसी प्रकार ज्ञान सब ज्ञेय पदार्थोंको जानता है और ज्ञेयाकार परिणमन करता है तौ भी अपने निज स्वभाव को नहीं छोड़ता (६८) ज्ञान का जानना स्वभाव सदा अचल रहता है, उसमें कभी किसी भी प्रकार का विकार नहीं होता और न वह कभी भूलकर भी राग द्वेष मोहरूप होता है (६९) निश्चय नय से आत्मा में ज्ञान की ऐसी महिमा है, परन्तु अज्ञानी मिथ्यादृष्टी आत्मस्वरूप की ओर देखते भी नहीं हैं।

(७०) अज्ञानी जीव पर द्रव्यों में मस्त रहते हैं, रागद्वेष करते हैं और परिग्रह की इच्छा करते हैं, परन्तु आत्म स्वभाव की खोज नहीं करते।

(७१) मूर्ख के हृदय में कुमति उपजती है और ज्ञानियों के हृदय में सुमति का प्रकाश रहता है। दुर्बुद्धि कुब्जा के समान है, नवीन कर्मोंका बन्ध करती है, और सुबुद्धि राधिका है, आत्मराम में रमण कराती है (७२) कुबुद्धि कारी कूबड़ी कुब्जा के समान है, संसार में संताप उपजाती है, और सुबुद्धि राधिका के समान

है, निज आत्मा की उपासना कराती है तथा स्व पर का भेद जानती है।

(७३) कुबुद्धि माया का उदय रहते होती है इससे कुटिला है, और कुब्जा मायाचारणी थी, उसने पराये पति को वश में कर रक्खा था। कुबुद्धि जगत को असुहावनी लगती है इससे कुरूपा है, कुब्जा काली कान्तिहीन ही थी इससे कुरूपा थी। कुबुद्धि परद्रव्यों को अपनाती है, कुब्जा परपति से सम्बन्ध रखती थी इससे दोनों व्यभिचारिणी हुई। कुबुद्धि अपनी अशुद्धतासे विषयों के आधीन होती है इससे बिकी हुई के समान है, कुब्जा परवश में पड़ी हुई थी इससे दूसरे के हाथ बिकी हुई ही थी। दुर्बुद्धि को वा कुब्जा को अपनी भलाई बुराई नहीं दिखती, इससे दोनों की दशा अंधे के समान हुई। कुबुद्धि पर पदार्थों से अहंबुद्धि करने में समर्थ है, कुब्जा भी कृष्ण को कब्जे में रखने के लिए समर्थ थी, इससे दोनों कबन्ध के समान बलवान हैं। दोनों कर्मों का बन्ध बढ़ाती हैं। दोनों की प्रवृत्ति उपद्रव की ओर रहती है। कुबुद्धि अपने पति आत्मा की ओर नहीं देखती, कुब्जा भी अपने पतिकी ओर नहीं देखती थी, इससे दोनों की रांड सरीखी रीति है। दोनों ही शराबी के समान मतवाली हो रही हैं। दुर्बुद्धि में कोई धार्मिक नियम आदि का बन्धन नहीं, कुब्जा भी अपने पति आदि की आज्ञा में नहीं रहती थी, इसलिए दोनों सांड़ के समान स्वतंत्र हैं। दोनों भांड़ की संतति के समान निर्लज्ज हैं। दुर्बुद्धि अपने आत्मक्षेत्र रूप घर का मर्म नहीं जानती, कुब्जा भी दुराचार में रत रहती थी, घर का हाल नहीं देखती थी। दुर्बुद्धि कर्म के आधीन है, कुब्जा परपति के आधीन, इससे दोनों पराधीनता के क्लेश में हैं। इस प्रकार दुर्बुद्धि को कुब्जा दासी की उपमा दी है।

(७४) सुबुद्धि आत्मस्वरूप में सरस है, राधिका भी रूपवती

है। सुबुद्धि अज्ञान का ताला खोलने की चावी है, राधिका भी अपने पति को शुभ सम्मति देती है। सुबुद्धि और राधिका दोनों शीलरूपी सुधाके समुद्र में स्नान की हुई है, दोनों शान्त स्वभावी सुखदायक हैं। ज्ञानरूपी सूर्यका उदय करने में दोनों पूर्व दिशा के समान हैं। सुबुद्धि आगामी विषय भोगों की वांछा से रहित है, राधिका भी आगामी भोगों की याचना नहीं करती। सुबुद्धि आत्मस्वरूप में भले प्रकार राचती है, राधिका भी पति-प्रेम में पगती है। सुबुद्धि और राधिका रानी दोनों के स्थान की महिमा वचन अगोचर अर्थात् महान् है। सुबुद्धि का आत्मा पर सच्चा स्वामित्व है, राधिका को भी घर पर मालिकी है। सुबुद्धि अपने घर अर्थात् आत्मा की सावधानी रखती है, राधिका भी घर की निगरानी रखती है। सुबुद्धि अपने आत्मराम में रमण करती है, राधिका अपने पति कृष्ण के साथ रमण करती है। सुबुद्धि की महिमा अध्यात्मरस के ग्रन्थों में बखानी गई है, और राधिका की महिमा शृंगाररस आदि के ग्रन्थों में कही गई है। सुबुद्धि साधुजनों द्वारा आदरणीय है, राधिका ज्ञानियों द्वारा माननीय है। सुबुद्धि और राधिका दोनों क्षोभ रहित अर्थात् गंभीर है। सुबुद्धि शोभा से सम्पन्न है, राधिका भी कान्तिवान् है। इस प्रकार सुबुद्धि को राधिका रानी की उपमा दी गई है।

(७५) दुर्बुद्धि कुब्जा है, सुबुद्धि राधिका हैं, कुबुद्धि संसार में भ्रमण कराने वाली हैं और सुबुद्धि विवेकवान है। दुर्बुद्धि कर्म बन्ध के योग्य है और सुबुद्धि स्व पर विवेक की खानि है।

(७६) ज्ञानावर्णीय आदि द्रव्यकर्म पुद्गल की पर्यायें है, राग द्वेष आदि भाव कर्म आत्मा के विभाव हैं, और स्व पर विवेककी परणति ज्ञान का बड़ा पुंज है।

(७७) जिस प्रकार चौपड़ का खेलने वाला मनमें जीतने का

उत्साह रखके अपनी अक्ल के जोर से सम्हाल कर ठीक ठीक गोटें जमाता है, पर दाव तो पांसे के आधीन है। उसी प्रकार जगत के जीव अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए प्रयत्न सोचते हैं, पर जैसा कर्म का उदय है वैसा ही होता है. कर्मपरणति की ऐसी ही रीति है। उदयावली में आया हुआ कर्म फल दिये विना नही रुकता।

(७८) जिस प्रकार सतरंज का खेलने वाला सतरंज के सब दाव पेंच समझता है, और दोनों दल पर नजर रखता हुआ चलता है, वा हाथी, घोड़ा, वजीर, प्यादा आदि की चाल ध्यान में रखता हुआ जीतने का विचार करता है, उसी प्रकार मोक्ष-मार्ग में प्रवीण ज्ञानी पुरुष स्वरूप की परख करता है और बाधक कारणों से बचता है। वह आत्म गुणों को निर्मल करता है और जीत अर्थात् निर्भय पद का चितवन करता है। यह ज्ञान परणति का हाल है।

(७९) राधिका अर्थात् सुबुद्धि सतरंज खेलती है इससे उसकी सदा जीत रहती है, और कुब्जा अर्थात् दुर्बुद्धि चौपड़ खेलती है, इससे उसकी हमेशा हार रहती है (८०) जिसके हृदय में कुब्जा अर्थात् कुबुद्धि का वास है, वही जीव अज्ञानी है, और जिसके हृदयमें राधिका अर्थात् सुबुद्धि है, वह ज्ञानी सम्यग्दृष्टी है।

(८१) जहाँ शुद्ध ज्ञान की कला का प्रकाश दिखता है, वहाँ उसके अनुसार चारित्र का अंश रहता है, इससे ज्ञानी जीव सब हेय उपादेय को समझते हैं। उनका सर्वस्व वैराग्यभाव ही रहता है, वे राग द्वेष मोहसे भिन्न रहते हैं, इससे उनके पहले के बँधे हुए कर्म झड़ते हैं, और वर्त्तमान तथा भविष्य में कर्मबंध नहीं होता। वे शुद्ध आत्मा की भावना में स्थिर होते हैं, इससे साक्षात् पूर्ण परमात्मा ही हैं।

(८२) जहाँ ज्ञानभाव है वहां शुद्ध चारित्र रहता है, इसलिए ज्ञान और वैराग्य एक साथ मिलकर मोक्ष साधते हैं।

(८३) जिस प्रकार कोई लँगड़ा मनुष्य अंधे के कंधे पर चढ़े, तो लँगड़े की आँखों और अंधे के पैरों के योग से दोनों का गमन होता है (८४) उसी प्रकार जहाँ ज्ञान और चारित्र की एकता है वहाँ मोक्षमार्ग है, ज्ञान आत्मा का स्वरूप जानता है और चारित्र आत्मा में स्थिर होता है।

(८५) ज्ञान जीव की सावधानता है, और शुभाशुभ परणति उसे भुलाती है, ज्ञान मोक्ष का उत्पादक है और कर्म जन्म मरण-रूप संसार का कारण है (८६) ज्ञान चेतना का उदय होने से शुद्ध परमात्मा प्रकट होता है, और शुभाशुभ परणति से वन्धके योग्य भाव उपजते हैं।

(८७) जव तक ज्ञान चेतना अपने से भिन्न है, अर्थात् ज्ञान चेतना का उदय नहीं हुआ है, तव तक जीव दुखी और संसारी रहता है, और जव हृदय में ज्ञान चेतना जगती है, तव वह अपने आप ही ज्ञानी वैरागी होता है (८८) वह अपना स्वरूप सिद्ध सदृश शुद्ध जानता है, और पर के निमित्त से उत्पन्न हुए भावों को पर स्वरूप मानता है। वह शुद्ध आत्मा के अनुभव का अभ्यास करता है और भावकर्म द्रव्यकर्म तथा नोकर्म को अपने नहीं मानता।

(८९) ज्ञानी जीव अपनी कथा अपने ही से कहता है, कि मैंने मिथ्यात्व की दशा में अनेक प्रकार के पाप किये।

(९०) हमारे हृदय में महा मोहजनित भ्रम था, इससे हमने जीवों पर दया नहीं की। हमने खुद पाप किये, दूसरों को पापका उपदेश दिया, और किसी को पाप करते देखा, तो उसका समर्थन किया। मन वचन काय की प्रवृत्ति के निजत्व में मग्न होकर कर्म

बन्ध किये, और भ्रम जाल में भटककर हम पापी कहलाये, परन्तु ज्ञान का उदय होने से हमारी ऐसी अवस्था हो गई, जैसे कि सूर्य का उदय होने से प्रभात को होती है—अर्थात् प्रकाश फैल जाता है, और अंधकार नष्ट हो जाता है।

(९१) ज्ञान-सूर्य का उदय होते ही ज्ञानी ऐसा विचारता है कि मेरा स्वरूप करुणामय और निर्मल है। उस पर मृत्यु की पहुँच नहीं है वह कर्म-परणति को जीत लेता है, वह योग समुदाय से निर्भय है. उसकी महिमा अपरम्पार है यह जगत का जंजाल मोहजनित है, मैं तो संसार अर्थात् जन्म मरण से रहित हूं. और शुभाशुभ प्रवृत्ति अंधकूप के समान है। किसने पाप किये ? पाप कौन करता है ? पाप कौन करेगा ? इस प्रकार की क्रिया का विचार ज्ञानी को स्वप्न के समान मिथ्या दिखता है।

(९२) मैंने यह किया, अब ऐसा करूँगा, यह मेरी कार्रवाई है, ये सब मिथ्याभाव मन वचन काय में , निवास करते हैं (९३) मन वचन काय कर्म जनित हैं, कर्म-परणति जड़ है, द्रव्यकर्म पुद्गल के पिण्ड हैं, और भावकर्म अज्ञान की लहर है (९४) आत्मा से कर्म स्वभाव विपरीत है, इससे कर्मको कौन करावे ? कौन करे ? यह सब कौशल मिथ्या है।

(९५) क्रिया आत्माकी अहित करने वाली है, मुक्ति देनेवाली नहीं है, इससे क्रिया की गणना बंध-पद्धति में की गई है, यह महा दुःख से लिप्त है।

(९६) क्रिया की भूमि पर मोह महाराजा का निवास है, क्रिया अज्ञानभावरूप राक्षस का नगर है, क्रिया कर्म और शरीर आदि पुद्गलों की मूर्ति है क्रिया साक्षात् मायारूप मिश्री लपेटी हुई छुरी है, क्रिया के जंजाल में आत्मा फँस रहा है, क्रिया की आड़ ज्ञान-सूर्य के प्रकाश को छुपा देती है। श्रीगुरु कहते हैं, कि

क्रिया से जीव कर्म का कर्त्ता होता है, निश्चय स्वरूप से देखो तो क्रया सदैव दुःखदायक है।

(९७) पहले झूठा मोह का उदय फैल रहा था, उससे मेरी चेतना कर्म सहित होने से मलीन हो रही थी, अब ज्ञान का उदय होने से हम समझ गये कि आत्मा सदा पर परणति से भिन्न है (९८) हमारा स्वरूप चैतन्य है, अनादि है, कर्म रहित है, शुद्ध है, अविनाशी है, स्वाधीन है, निर्विकल्प और सिद्ध समान सुखमय है।

(९९) मैं सदैव कर्म से पृथक हूँ, मेरा चैतन्य पदार्थ जगत् का प्रकाशक है, राग द्वेष मोह मेरे नहीं हैं, मेरा स्वरूप मुझ ही में है।

(१००) सम्यग्दृष्टी जीव अपना स्वरूप विचारते हैं कि मैं सदा राग द्वेष मोह से रहित हूँ, मैं लौकिक क्रियाएँ इच्छा रहित करता हूँ, मुझे विषय रस असुहावने लगते हैं, मैंने जगत में शुद्ध आत्मा का अनुभव करके मोहरूपी महा योद्धा को जीता है, मोक्ष मेरे बिलकुल समीप हुआ, अब मेरा अनंत काल इसी प्रकार वीते।

(१०१) ज्ञानी जीव विचारते हैं कि मैं सदैव ज्ञानरसमें रमण करता हूँ और शुद्ध आत्म-अनुभव से कभी भी नहीं चूकत (१०२) पूर्वकृत कर्म विष-वृक्ष के समान हैं, उनका उदय फल फूल के समान है, मैं इसका भोगता नहीं हूँ, इसलिये अपने आप ही नष्ट हो जायँगे।

(१०३–१०४) जो ज्ञानी जीव पूर्व में कमाये हुए शुभाशुभ कर्म फल को अनुराग पूर्वक नहीं भोगता, और सदैव शुद्ध आत्म पदार्थ में मस्त रहता है, वह शीघ्र ही कर्म परणति रहित मोक्ष पद प्राप्त करता है, और आगामी काल में परम ज्ञान का आनंद

अनंत काल तक भोगता है।

(१०५) जो पूर्व में कमाये हुए कर्मरूप विष-वृक्ष के विष-फल नहीं भोगता, अर्थात् शुभ फल में रति और अशुभ फल में अरति नहीं करता, जो मन वचन काय के योगों का निग्रह करता हुआ वर्तता है, और ममता रहित रागद्वेष को रोक कर परिग्रह जनित सब विकल्पों का त्याग करता है, तथा शुद्ध आत्मा के अनुभव का अभ्यास करके मुक्ति का नाटक खेलता है, वह ज्ञानी ऊपर कहे हुए मार्ग को ग्रहण करके पूर्ण स्वभाव प्राप्त कर केवलज्ञान पाता है, और सदैव उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख में मस्त रहता है।

(१०७) आत्मा निर्भय, आनन्दमय, सर्वोत्कृष्ट, ज्ञानरूप और भेद रहित है। उसके ज्ञानरूप प्रकाश में त्रैलोक्य का समावेश होता है। स्पर्श रस गंध वर्ण ये पुद्गल के गुण है, इनसे उसकी महिमा निराली कही गई है। उसका लक्षण शरीर से भिन्न, परिग्रह से रहित, मन वचन काय के योगों से निराला है, वह ज्ञानस्वरूप चैतन्य पिण्ड है, उसे अविनाशी ईश्वर मान कर मस्तक नवाता हूँ।

(१०८) पूर्व में अर्थात् संसारी दशा में निश्चय नय से आत्मा जैसा अभेदरूप था, वैसा प्रकट हो गया, उस परमात्मा को अब भेदरूप कौन कहेगा? अर्थात् कोई नहीं। जो कर्म रहित और सुख शान्ति सहित दिखता है, तथा जिसने निजस्थान अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति की है, वह बाहिर अर्थात् जन्म मरणरूप संसार में न आवेगा। वह कभी भी अपना निज स्वभाव छोड़कर रागद्वेष में लगकर पर पदार्थ अर्थात् शरीर आदि को ग्रहण नहीं करेगा, क्योंकि वर्त्तमान काल में जो निर्मल पूर्ण ज्ञान प्रगट हुआ है, वह तो आगामी अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा।

(१०९) अवसर मिलने पर जब से आत्मा ने विभाव परणति

छोड़कर निज स्वभाव ग्रहण किया है, तब से जो जो बातें उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य थीं, वे वे सब ग्रहण कीं, और जो जो बातें हेय अर्थात् त्यागने योग्य थीं, वे वे सब छोड़ दीं। अब ग्रहण करने योग्य और त्यागने योग्य कुछ नहीं रह गया और न कुछ शेष रह गया जो नया काम करने को बाकी हो। परिग्रह छोड़ दिया शरीर छोड़ दिया, वचन की क्रिया से रहित हुआ मन के विकल्प त्याग दिये, इन्द्रियजनित ज्ञान छोड़ा और आत्माको शुद्ध किया।

(११०) आत्मा शुद्ध ज्ञानमय है, और शुद्ध ज्ञान के शरीर नहीं है, और न आकृति-वेष आदि हैं, इसलिये द्रव्यलिंग मोक्ष का कारण नहीं है। (१११) बाह्य वेष जुदा है, कला कौशल जुदा है, वचन चातुरी जुदा है अष्ट महाऋद्धिऐं जुदी हैं, अष्ट सिद्धिएं जुदी हैं और ये कोई ज्ञान नहीं हैं।

(११२) वेष में ज्ञान नहीं है, महंतजी बने फिरने में ज्ञान नहीं है, मंत्र जंत्र तंत्र में ज्ञान की बात नहीं है, शास्त्र में ज्ञान नहीं है, कविता-कौशल में ज्ञान नहीं है, व्याख्यान में ज्ञान नहीं है, क्योंकि वचन जड़ है, इससे वेष, गुरुता, कविताई, शास्त्र, मंत्र, तंत्र, व्याख्यान इनसे चैतन्य लक्षण का धारक ज्ञान निराला है। ज्ञान ज्ञान ही में है, अन्यत्र नहीं है। जिसके घट में ज्ञान उपजा है, वही ज्ञानका मूल कारण अर्थात् आत्मा है।

(११३) जो वेष बनाकर लोगों को ठगता है, वह धर्म-ठग कहलाता है, जिसमें लौकिक बड़प्पन होता है, वह बड़ा कहलाता है, जिसमें मंत्र तंत्र साधने का गुण है, वह जादूगर कहलाता है, जो कविताई में होश्यार है, वह कवि कहलाता है, जो बात चीत में चटपटा है, वह व्याख्याता कहलाता है। सो ये सब कपटी जीव विषय के भिक्षुक हैं, विषयों की पूर्ति के लिये याचना करते फिरते

हैं, इनमें स्वार्थ-त्याग का अंश भी नहीं है । इन्हें देखकर दया आनी चाहिये ।

(११४) यद्यपि करुणा भाव ज्ञान का साक्षात् अंग है, पर तौ भी अनुभव की परणति निर्विकल्प रहती है। (११५) जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता पूर्वक आतमस्वरूप में स्थिर होकर मोक्षमार्ग को साधता है वही भेद विज्ञानी अनुभवी है।

(११६) जो कोई सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप आत्मा में अत्यन्त दृढ़ स्थिर होकर विकल्प-जाल को दूर करता है, और उसके परिणाम पर पदार्थों को छू तक नहीं पाते। जो आत्मशुद्धि की भावना व ध्यान करता है, वा शुद्ध आत्मा में मौज करता है, अथवा यों कहो कि शुद्ध आत्मा में स्थिर होकर आत्मीय आनंद की अमृत-धारा बरसाता है, वह शारीरिक कष्टों को नहीं गिनता, और स्पष्टतया आठों कर्मों की सत्ता को शिथिल और विचलित कर देता है, तथा उनकी निर्जरा और नाश करता है, वह निर्विकल्प ज्ञानी थोड़े ही समय में जन्म मरण रूप संसारको छोड़कर परम धाम अर्थात् मोक्ष पाता है।

(११७) आत्मा के अनेक गुण पर्यायों के विकल्प में न पड़कर निर्विकल्प आत्म अनुभव का अमृत पियो। आप अपने स्वरूप में लीन हो जाओ, और शरीर में अहंबुद्धि छोड़कर निज आत्मा को अपनाओ।

(११८) राग द्वेष आदि विभाव परणति को हटाकर शुद्ध आत्मपद में लीन होओ, यही एक मोक्ष का रास्ता है,दूसरा मार्ग कोई नहीं है।

(११९) कई मिथ्यादृष्टी जीव जिनलिंग धारण करके शुभाचार में लगे रहते हैं, और कहते हैं कि हम साधु हैं, ये मूर्ख, अनुपम, अखंड, अमल, अविनाशी और सदा प्रकाशमान ऐसे ज्ञान

भाव से सदा पराङ्मुख हैं। यद्यपि वे सिद्धांत का अध्ययन करते निर्दोष आहार विहार करते और व्रतों का पालन करते, तो भी अव्रती हैं। वे अपने को मोक्षमार्ग का अधिकारी कहते हैं, परन्तु वे दुष्ट मोक्षमार्ग से विमुख हैं और दुर्मती हैं।

(१२०) जिस प्रकार भोला मनुष्य धानको पहिचाने और तुष तंदुल का भेद न जाने,उसी प्रकार वाह्य क्रिया में लीन रहनेवाला अज्ञानी वंध और मोक्ष की पृथकता नहीं समझता।

(१२१) जो व्यवहार में लीन और पर्याय ही में अहंबुद्धि करने वाले भोले मनुष्य हैं, उन्हें हमेशा वाह्य क्रियाकाण्ड ही का वल रहता है। (१२२) जो वहिरदृष्टी और अज्ञानी हैं वे वाह्य चारित्र ही अंगीकार करते हैं, और मन में प्रसन्न होकर उसे मोक्षमार्ग समझते हैं। (१२३) यदि कोई सम्यग्दृष्टी जीव उन मिथ्यात्वियों से शुद्ध आत्म अनुभव की वार्त्ता करे, तो उसको सुनकर वे कहते हैं कि यह मोक्षमार्ग नहीं है।

(१२४) जिनके हृदय में शरीर से अहंबुद्धि है, वे मुनि का वेष धारण करके वाह्य चारित्र ही को सत्य मानते हैं। वे हृदय के अंधे वंध के कर्त्ता हैं, आत्म पदार्थ का मर्म नहीं जानते, और जिन सम्यग्दृष्टी जीवों के हृदय में सम्यग्ज्ञान की किरण प्रकाशित हुई है, वे वाह्य क्रिया और वेप को अपना निज स्वरूप नहीं समझते, वे मोक्षमार्ग के सन्मुख गमन करके भवस्थिति को नष्ट करते हैं।

(१२५) श्री गुरु कहते हैं कि जिनवाणी का विस्तार विशाल और अपरम्पार है, हम कहाँ तक कहेंगे। वहुत वोलना हमें इष्ट नहीं है, इससे अव मौन हो रहना भला है, क्योंकि वचन उतने ही वोलने चाहिये, जितने से प्रयोजन सधे। अनेक प्रकार का वकवाद करने से अनेक विकल्प उठते हैं, इसलिये उतना ही कथन करना ठीक है जितने का काम है। वस, शुद्ध परमात्मा के अनु-

भव का अभ्यास करो यही मोक्ष-मार्ग है और इतना ही परमार्थ है।

(१२६) शुद्ध आत्मा का अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है, यही मोक्ष का मार्ग है, बाकी सब वाक्याडम्बर हैं।

(१२७-१२८) आत्म पदार्थ जगत के सब पदार्थों को देखने के लिये नेत्र है, आनंदमय है, ज्ञान चेतना से प्रकाशित है, संकल्प विकल्प रहित है, स्वयं सिद्ध है, अविनाशी है, अचल है, अखंडित है, ज्ञान का पिण्ड है, सुख आदि अनंत गुणों से परिपूर्ण है, वीतराग है, इन्द्रियों के अगोचर है, ज्ञान गोचर है, जन्म मरण वा क्षुधा तृषा आदि की बाधा से रहित निराबाध है। ऐसे आत्म तत्त्व का अनुभव करो।

(१२९) साक्षात् मोक्ष का मार्ग यह सर्व विशुद्धि अधिकार कहा और स्वामी कुन्दकुन्द मुनिराज रचित शास्त्र समाप्त हुआ।

नोट—श्री सीमन्धर स्वामीजी की वाणी सुनके श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने यह पद ग्रन्थ बनाया ऐसी सम्प्रदाय बात है।

(१३०) आध्यात्मिक विद्या में कुशल स्वामी कुन्दकुन्द मुनि ने यह ग्रन्थ यहाँ तक रचा है, और वह गुरु परम्परा के कथन अनुसार प्राकृत भाषा में गाथाबद्ध कथन किया है। (१३१) यह ग्रन्थ जगत् प्रसिद्ध है, इसे सुनकर ज्ञानी लोग परमानंद प्राप्त करते हैं। लोक में जो नव रस प्रसिद्ध हैं वे सब इस समयसार के रस में समाये हुए हैं।

(१३२) संसार में प्रसिद्ध है कि नाटक नव रस सहित होता है, पर ज्ञान में नव ही रस गर्भित हैं, इस बात को कोई विरला ही ज्ञानी जानता है।

(१३३) पहला शृंगार, दूसरा वीर रस, तीसरा सुखदायक करुणा रस, चौथा हास्य, पाँचवां रौद्र रस, छट्ठा घिनावना

वीभत्स रस, सातवां भयानक, आठवां अद्भुत और नवमा सव रसों का सरताज शान्त रस है। ये नव रस हैं और यही नाटक-रूप हैं। जो जिस रस में मग्न होवे उसको वही रुचिकर होता है।

(१३४) शोभा में शृंगार, पुरुषार्थ में वीर, कोमल हृदय में करुणा, आनंद में हास्य, रण-संग्राम में रौद्र, ग्लानि में वीभत्स, शोक मरणादि की चिंता में भयानक, आश्चर्य में अद्भुत और वैराग्य में शान्त रस का निवास है। ये नव रस लौकिक हैं और पारमार्थिक हैं, सो इनका पृथक्करण ज्ञान दृष्टि का उदय होने पर होता है।

(१३५) आत्मा को ज्ञान गुण से विभूषित करने का विचार शृंगार रस है, कर्म निर्जरा का उद्यम वीर रस है, अपने ही समान सब जीवों को समझना करुणा रस है, मन में आत्म अनुभव का उत्साह हास्य रस है, अष्ट कर्मों का नष्ट करना रौद्र रस है, शरीर की अशुचिता विचारना वीभत्स रस है, जन्म मरण आदि का चितवन करना भयानक रस है, आत्माकी अनन्तशक्ति चितवन करना अद्भुत रस है, दृढ़ वैराग्य धारण करना शान्त रस है। सो जब हृदय में सम्यग्ज्ञान प्रकट होता है तब इस प्रकार नव रस का विलास प्रकाशित होता है।

(१३६) जब हृदय में सम्यग्ज्ञान प्रकट होता है, तब रस विरस का भेद मिट जाता है। एक ही रस में नवरस दिखाई देते हैं, इससे विरस भाव नष्ट होकर एक शान्त रस ही में आत्मा विश्राम लेता है।

(१३७) यह नाटक समयसार ग्रन्थ सब रसोंसे गर्भित आत्मानुभव रूप मूल रसमय है, इसके सुनते ही जीव सन्मार्ग और उन्मार्ग को समझ जाता है।

(१३८) यह जगतहितकारी ग्रन्थ प्राकृत भाषा में था सो

अमृतचन्द्र स्वामी ने इसे अत्यन्त श्रेष्ठ जानकर इसकी संस्कृतटीका बनाई।

(१३९) स्वामी अमृतचन्द्र ने सर्वविशुद्धिद्वार पर्यन्त इस ग्रन्थ का संस्कृत भाषामें व्याख्यान किया है और भक्तिपूर्वक गुणानुवाद गाया है।

शिष्य प्रश्न करता है कि हे स्वामी, राग द्वेष परिणामों का मुख्य कारण क्या है? पौद्गलिक कर्म हैं? इन्द्रियों के भोग हैं? या धन हैं? या घर के लोग हैं? या घर है? सो आप कहिए। इस पर श्रीगुरु समाधान करते हैं, कि छहों द्रव्य अपने अपने स्वरूप में सदा निजाश्रित परिणमन करते हैं, कोई द्रव्य किसी द्रव्य की परिणति के लिए कभी भी प्रेरक नहीं होता, अतः राग द्वेष का मूल कारण मोह मिथ्यात्व का मदिरा पान है।

नोट--मूल ग्रन्थ में यह पद इस ही अधिकार के पद न० ६० के पश्चात् दिया है पाठक सुधार कर पढ़ने की कृपा करें।

दशवें अधिकार का सार।

अनंतकाल से जन्म मरणरूप संसार में निवास करते हुए इस मोही जीव ने पुद्गलों के समागम से कभी अपने स्वरूप का आस्वादन नहीं किया, और राग द्वेष आदि मिथ्या भावों में तत्पर रहा। अव सावधान होकर निजात्म अभिरुचिरूप सुमति राधिका से नाता लगाना और परपदार्थों में अहंबुद्धिरूप कुमति कुबजा से विरक्त होना उचित है। सुमति राधिका सतरंज के खिलाड़ी के समान पुरुषार्थ को प्रधान करती है और कुमति कुबजा चौसर के के समान 'पाँसा परे सो दाव' की नीति से तकदीर का अवलम्बी लेती है। इस दृष्टान्त से स्पष्ट है कि नीति से अपने बुद्धिबल और बाह्य साधनों को संग्रह करके उद्योग में तत्पर होने की

शिक्षा दी गई है। नसीव की वात है, कर्म जैसा रस देगा सो होवेगा, तकदीर में नहीं है। इत्यादि किसमत के रोने को अज्ञान भाव वतलाया है, क्योंकि तकदीर अंधी है और तदवीर सूझती हुई है।

आत्मा पूर्व कर्मरूप विष-वृक्षों का कर्त्ता भोगता नहीं है, इस प्रकार का विचार दृढ़ रखने से और शुद्धात्म पद में मस्त रहने से वे कर्म-समूह अपने आप नष्ट हो जाते हैं। यदि अंधा मनुष्य लँगड़े मनुष्य को अपने कंधे पर रख ले, तो अंधा लंगड़े के ज्ञान और लँगड़ा अंधे के पैरों की सहायता से रास्ता पार कर सकता है, परन्तु अंधा अकेला ही रहे और लँगड़ा भी उससे जुदा रहे तो वे दोनों इच्छित क्षेत्र को नहीं पहुंच सकते, और न विपत्ति पर विजय पा सकते हैं। यही हाल ज्ञान चारित्र का है। सच पूछो तो, ज्ञान के विना चारित्र चारित्र ही नहीं है, और चारित्र के बिना ज्ञान ज्ञान ही नहीं है, क्योंकि ज्ञानके बिना पदार्थ के स्वरूप को कौन पहिचानेगा और चारित्र के बिना स्वरूप में विश्राम कैसे मिलेगा? इससे स्पष्ट है, कि ज्ञान वैराग्यका जोड़ा है। फक्त क्रिया में लीन होने की जैनमत में कुछ महिमा नहीं है, उसे 'करनी हित हरनी सदा मुकति वितरनी नांहि" कहा है। इसलिये ज्ञानी लोग ज्ञानगोचर और ज्ञान स्वरूप आत्मा का ही अनुभव करते हैं।

स्मरण रहे कि ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है, जब वह ज्ञेय को ग्रहण करता अर्थात् जानता है, तब उसकी परणति ज्ञेयाकार होती है, क्योंकि ज्ञान सविकल्प है, दर्शन के समान निर्विकल्प नहीं है, अर्थात् ज्ञान ज्ञेय के आकार आदि का विकल्प करता है, कि वह छोटा वड़ा है, टेड़ा है, सीधा है, ऊँचा है, नीचा है, गोल है, त्रिकोण है, मीठा है, कडुवा है, साधक है,

बाधक है, हेय है, उपादेय है, इत्यादि। परन्तु ज्ञान ज्ञान ही रहता है, ज्ञेय का ज्ञायक होने से वा ज्ञेयाकार परिणमने से ज्ञेय रूप नहीं होता, परन्तु ज्ञान में ज्ञेय की आकृति प्रतिविम्वित होने से वा उसमें आकार आदि का विकल्प होने से अज्ञानी लोग ज्ञान का दोष समझते हैं, और कहते हैं,कि जव यह ज्ञानकी सविकल्पता मिट जावेगी—अर्थात् आत्मा शून्य जड़सा हो जावेगा, तव ज्ञान निर्दोष होगा, परन्तु 'वस्तु स्वभाव मिटै नहि क्यौंही' की नीति से उनका विचार मिथ्या है। वहुधा देखा गया है कि हम कुछ न कुछ चितवन किया ही करते हैं, उससे खेद खिन्न हुआ करते हैं और चाहते हैं कि यह चितवन न हुआ करे। इसके लिये हमारा अनुभव यह है कि चेतियता चेतन तो चेतना ही रहता है, चेतता था, और चेतता रहेगा, उसका चेतना स्वभाव मिट नहि सकता। 'तातैं खेद करैं सठ योंही' की नीति से खिन्नता प्रतीत होती है, अतः चितवन, धर्मध्यान और मंदकषाय रूप होना चाहिये, ऐसा करने से बड़ी शान्ति मिलती है, तथा स्वभाव का स्वाद मिलने से सांसारिक संताप नहीं सता सकते, इसलिये सदा साव-धान रहकर इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, परिग्रह संग्रह आदि को अत्यन्त गौण करके निर्भय, निराकुल, निगम, निरभेद आत्मा के अनुभव का अभ्यास करना चाहिए।

स्याद्वाद द्वार

(१-२) यह अध्यात्म-कथनका गहन ग्रन्थ है, इसे कोई विरला ही मनुष्य समझ सकता है। यदि इसमें स्याद्वाद अधिकार बढ़ाया जावे तो यह ग्रन्थ अत्यन्त सुन्दर हो जावे, अर्थात् यदि कुंदकुंदस्वामी रचित ग्रन्थकी रचना मंदिरवत् है, तो उसपर स्याद्वादका कथन कलसाके समान सुशोभित होगा। ऐसा विचार

कर अमृत-वचनों की रचना करके स्वामी अमृतचंद्र कहते हैं।

(३) स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य ने नाटक ग्रन्थ में जीव अजीव द्रव्यों का स्वरूप वर्णन किया है, अब मैं स्याद्वाद, नयऔर साध्य साधक अधिकार कहता हूँ (४) साध्य स्वरूप मोक्षपद और साधक स्वरूप मोक्षमार्ग का कथन करता हूँ, जिस प्रकार कि घृतरूप पदार्थ की प्राप्ति के हेतु दधि मंथन कारण है।

(५) स्वामी अमृतचन्द्र ने मृदु वचनों में कहा, कि स्याद्वाद का कथन सुनो, कोई कहता है कि संसार में जीव है, कोई कहता है कि जीव नहीं है (६) कोई जीव को एकरूप और कोई अनेक-रूप कहता है, कोई जीव को अनित्य और कोई नित्य कहता है (७) इस प्रकार अनेक नय हैं कोई किसी से नहीं मिलते, परस्पर विरुद्ध हैं, और जो सब नयों को साधता है वह स्याद्वाद है।

(८) जैनमत का मूल सिद्धान्त 'स्याद्वाद अधिकार' कहता हूँ, जिनका ज्ञान होने से जगत् के मनुष्य संसार सागर से पार होते हैं।

(९) शिष्य पूछता है कि हे स्वामी! जगत में जीव स्वाधीन है कि पराधीन? जीव एक है अथवा अनेक? जीव सदा काल है? अथवा कभी जगत में नहीं रहता है? जीव अविनाशी है अथवा नाशवान् है? श्रीगुरु कहते हैं कि द्रव्य दृष्टि से देखो तो जीव सदाकाल हैं, स्वाधीन है, एक है, और अविनाशी है। पर्याय दृष्टि से पराधीन, क्षणभंगुर अनेक रूप और नाशवान् है, सो जहाँ जिस अपेक्षा से कहा गया है उसे प्रमाण करना चाहिये।

(१०) द्रव्य क्षेत्र काल भावये चारों वस्तु ही में हैं, इसलिये अपने चतुष्क अर्थात् स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा से वस्तु अस्ति स्वरूप है, और परचतुष्क अर्थात् परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा वस्तु नास्तिरूप है।

इस प्रकार निश्चय से द्रव्य अस्ति नास्ति रूप है । उनका भेद द्रव्य और पर्याय में जाना जाता है। वस्तु को द्रव्य, सत्ता भूमि को क्षेत्र, वस्तु के परिणमन को काल और वस्तु के मूल स्वभाव को भाव कहते हैं। इस प्रकार बुद्धि से स्वचतुष्टय और पर चतुष्टय की कल्पना करना सो व्यवहार नय का भेद है ।

(११) अस्ति, नास्ति, अस्ति नास्ति, अवक्तव्य, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य और अस्ति नास्ति अवक्तव्य। ऐसे सात भंग होते हैं, सो इन्हें सर्वांग नय का स्वामी स्याद्वाद सर्व वस्तु में मानता है ।

(१२) (१) ज्ञेय, (२) त्रैलोक्यमय, (३) अनेक ज्ञान, (४) ज्ञेय का प्रति बिम्ब, (५) ज्ञेय काल, (६) द्रव्यमय ज्ञान, (७) क्षेत्रयुत ज्ञान, (८) जीव नास्ति, (९) जीव विनाश, (१०) जीव उत्पाद, (११) आत्मा अचेतन, (१२) सत्ता-अंश (१३) क्षण भंगुर और (१४) अज्ञायक । ऐसे चौदह नय हैं । सो जो कोई एक नय को ग्रहण करे और शेष को छोड़े, वह एकान्ती मिथ्यादृष्टी है।

(१३) कोई अज्ञानी (मीमांसक आदि) कहते हैं कि पहले दीवाल साफ करके पीछे उस पर चित्रकारी करने से चित्र अच्छा आता है, और यदि दीवाल खराब हो तो चित्र भी खराब उघड़ता है; उसी प्रकार ज्ञान के मूल कारण घट पट आदि ज्ञेय जैसे होते हैं, वैसा ही ज्ञानरूप कार्य होता है, इससे स्पष्ट है कि ज्ञान का कारण ज्ञेय है। इस पर स्याद्वादी ज्ञानी संबोधन करते हैं कि जो जैसा पदार्थ होता है, वैसा ही उसका स्वभाव होता है, इससे ज्ञान और ज्ञेय भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। निश्चय नय में कारण और कार्य दोनों एक ही पदार्थ में हैं, इससे तेरा जो मन्तव्य है वह व्यवहार नय से सत्य है।

(१४) कोई अज्ञानी (नैयायिक आदि) ज्ञान को लोकालोक

व्यापी जानकर आत्म-पदार्थ को त्रैलोक्य प्रमाण समझ बैठे हैं, इसलिये अपने को सर्व व्यापी समझ कर स्वतंत्र वर्तते हैं, और अभिमान में मस्त होकर दूसरों को मूर्ख समझते हैं, किसी से बात भी नहीं करते, और कहते हैं कि संसार में हमारा ही सिद्धान्त सच्चा है। उनसे स्याद्वादी ज्ञानी कहते हैं कि जीव जगत से जुदा है, परन्तु उसका ज्ञान त्रैलोक्य में प्रसारित होता है इससे तुझे ईश्वरपने का अभिमान है, परन्तु पदार्थ अपने सिवाय अन्य पदार्थों से सदा निराला रहता है, सो निश्चय नय से स्याद्वाद में सब गर्भित हैं।

(१५) अनंत ज्ञेय के आकार रूप परिणमन करने से ज्ञान में अनेक विचित्रताएँ दिखती हैं, उन्हें विचार कर कोई कोई पशुवत् अज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान अनेक हैं और इसका एकान्त पक्ष ग्रहण करके लोगों से झगड़ते हैं। उनका अज्ञान हटाने के लिये स्याद्वादी ज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान अगम्य, गंभीर और निराबाध रस से परिपूर्ण है। उसका ज्ञायक स्वभाव है, सो वह यद्यपि पर्यायदृष्टी से अनेक है तौ भी द्रव्यदृष्टि से एक ही है।

(१६) कोई अज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान में ज्ञेय का आकार झलकता है, यह ज्ञान का दोष है, जब ध्यानरूप जल से ज्ञान का यह दोष धोकर साफ किया जावे तब शुद्ध ज्ञान निराकार होता है। उससे स्याद्वादी ज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान का ऐसा ही स्वभाव है, ज्ञेय का आकार जो ज्ञान में झलकता है, वह कहाँ भगा दिया जावे? जिस प्रकार दर्पण में यद्यपि अनेक पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं, तो भी दर्पण ज्यों का त्यों स्वच्छ ही बना रहता है, उस में कुछ भी विकार नहीं होता।

(१७) कोई कोई अज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान का परिणमन ज्ञेय के आकार होता है, सो जब तक ज्ञेय विद्यमान रहता है, तब

तक ज्ञान प्रगट रहता है, और ज्ञेय के विनाश होते ही ज्ञान नष्ट हो जाता है, इस प्रकार उसके हृदय में मिथ्यात्व का दुराग्रह है। उससे भेद विज्ञानी अनुभव की बात कहते हैं कि जिस प्रकार एक ही नट अनेक स्वांग बनाता है, उसी प्रकार एक ही ज्ञान पर्यायों के अनुसार अनेक रूप धारण करता है। वास्तव में ज्ञान निर्विकल्प और नित्य पदार्थ है, वह ज्ञेय में प्रवेश नहीं करता, इसलिये ज्ञान और ज्ञेय की एकता नहीं घटती।

(१८) कोई ब्रह्म अद्वैतवादी मूर्ख कहते हैं कि धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल और जीव यह सर्व जगत मेरा ही स्वरूप है, अर्थात् सब द्रव्यमय ब्रह्म है, ये अपना निजस्वरूप नहीं जानते और पर पदार्थों को निज आत्मा मानते हैं, इससे वे समय समय पर कर्मों का दृढ़ बंध करके अपने स्वरूप को मलिन करते हैं। पर सम्यग्ज्ञानी जीव शुद्ध आतम अनुभव करत हैं, इससे क्षण क्षण में पर पदार्थों से ममत्व भाव हटाते हैं, वे सदा अपने स्वभाव में लीन रहते हैं, और मोक्षमार्ग के धारा प्रवाही पथिक कहाते हैं।

(१९) कोई मूर्ख कहते हैं कि जितना छोटा या बड़ा ज्ञेय का स्वरूप होता है, उतना ही ज्ञान होता है, उससे अधिक कम नहीं होता, इस प्रकार वे सदैव ज्ञान को परक्षेत्रव्यापी और ज्ञेय से तन्मय मानते हैं, इससे कहना चाहिये कि वे आत्मा का स्वरूप नहीं समझ सके, सो मिथ्यात्व की ऐसी ही गति है। उनसे स्याद्वादी जैनी कहते हैं कि ज्ञान आत्म-सत्ता के बराबर है, वह घट पटादि ज्ञेय से तन्मय नहीं होता, ज्ञान जगत का चूड़ामणि है, उसकी प्रभा में यद्यपि अनेक ज्ञेय प्रतिबिम्बित होते हैं तो भी दोनों की सत्ताभूमि जुदी-जुदी है।

(२०) कोई कोई शून्यवादी अर्थात् नास्तिक कहते हैं, ज्ञेय का नाश होने से ज्ञान का नाश होना संभव है, और जानकर का

स्वरूप है, इसलिये ज्ञान का नाश होने से जीव का नाश होना स्पष्ट है, तो फिर ऐसी दशा में क्योंकर जीवन रह सकता है, अतः जीव की नित्यता के लिये ज्ञान में ज्ञेयाकार परिणमन का अभाव मानना चाहिये। इस पर सत्यवादी ज्ञानी कहते हैं कि हे भाई तुम व्याकुल मत होओ, ज्ञेय से उदासीन होकर ज्ञान को उससे पृथक मानो, तथा ज्ञान की ज्ञायक शक्ति सिद्ध करके अनुभव का अभ्यास करो और कर्म बन्धन से मुक्त होकर परमानन्दमय अमृत रस का पान करो।

(२१) कोई कोई मूर्ख चार्वाक कहते हैं कि शरीर और जीव दोनों का एक पिण्ड है, सो जब शरीर नष्ट होगा, तब जीव भी नष्ट हो जायगा, जिस प्रकार वृक्ष के नष्ट होने से छाया नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार शरीर के नाश होने से जीव भी नाश हो जायगा यह इन्द्रजालिया की माया के समान कौतुक बन रहा है, सो जीवात्मा दीपक की लव (ज्योति) के प्रकाश के समान शरीर में समा जायगा, फिर शरीर धारण नहीं करेगा। इस पर सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि जीव पदार्थ शरीर से सदैव भिन्न है, सो काललब्धि पाकर परपदार्थों से ममत्व छोड़ेगा, और अपने स्वरूप को प्राप्त होकर निजात्मभूमिमें विश्राम करके उसी में लीन होकर अपने को आप ही शुद्ध करेगा।

(२२) जिस प्रकार काँचली के छोड़ने से सर्प नष्ट नहीं हो जाता, उसी प्रकार शरीर का नाश होने से जीव पदार्थ नष्ट नहीं होता।

(२३) कोई कोई मूर्ख कहते हैं कि पहले जीव नहीं था, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांच तत्त्वमय शरीर के उत्पन्न होने पर ज्ञान शक्तिरूप जीव उपजता है, जब तक शरीर रहता है, तब तक जीव रहता है और शरीर के नाश होने पर

जीवात्मा की ज्योतिमें ज्योति समा जाती है इस पर सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि जीव पदार्थ अनादि काल से देह धारण किये हुए है, नवीन नहीं उपजता, और न देह के नष्ट होने से वह नष्ट होता है, कभी अवसर पर जब शुद्ध ज्ञान प्राप्त करेगा, तब परपदार्थों से अहंबुद्धि छोड़कर आत्मस्वरूप को ग्रहण करेगा और अष्ट कर्मों का विध्वंश करके निर्वाणपद पावेगा।

(२४) कोई कोई हठग्राही कहते हैं कि ज्ञेयके आकार ज्ञानका परिणमन होता है, और आकार परिणमन असत् है, इससे चेतना का अभाव हुआ, ज्ञेय के नाश होने से चेतना का नाश है, इसलिये मेरे सिद्धान्त में आत्मा सदा अचेतन है। इस पर स्याद्वादी ज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान स्वभाव से ही अविनाशी है वह ज्ञेयाकार परिणमन करता है, पर ज्ञेय से भिन्न है, यदि ज्ञान चेतना का नाश मानोगे तो आत्मसत्ता का नाश हो जायगा, इससे जीव तत्त्व को ज्ञान चेतनायुक्त मानना सम्यग्ज्ञान है।

(२५) कोई कोई मूर्ख कहते हैं कि एक शरीर में जब तक चेतन अचेतन पदार्थों के तरंग उठते हैं, तब तक जो जोग रूप परिणमें वह जोगी जीव और जो भोगरूप परिणमें वह भोगी जीव है, ऐसे ज्ञेयरूप क्रिया के जितने भेद होते हैं जीव के उतने भेद एक देह में उपजते हैं, इसलिये आत्मसत्ता के अनन्त अंश होते हैं। उनसे सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि एक शरीर में एक ही जीव है, उसके ज्ञान गुण के परिणमन से अनन्त भावरूप अंश प्रकट होते हैं। यह जीव शरीर से पृथक है, कर्म संयोग से रहित है और सदा उत्पाद व्यय ध्रौव्य गुण सम्पन्न है।

(२६) कोई कोई क्षणिकवादी-बौद्ध कहते हैं कि एक शरीर में एक जीव उपजता और एक नष्ट होता है. जिस क्षण में नवीन जीव उत्पन्न होता है उसके पूर्व समय में प्राचीन जीव था उनसे

स्याद्वादी कहते हैं जिस प्रकार पानी एक पदार्थ है वही अनेक लहरों रूप होता है, उसी प्रकार आत्म द्रव्य अपने गुण पर्यायों से अनेक रूप होता है, पर निश्चयनय से एकरूप दिखता है।

(२७) कोई कोई अज्ञानी कहते हैं कि जब तक ज्ञान में ज्ञायक शक्ति है, तब तक वह ज्ञान संसार में अशुद्ध कहलाता है भाव यह है कि ज्ञायक शक्ति ज्ञान का दोष है, और जब समय पाकर ज्ञायक शक्ति नष्ट हो जाती है, तब ज्ञान निर्विकल्प और निर्मल हो जाता है। इस पर सम्यग्ज्ञानी कहते हैं कि यह बात अनुभव में नहीं आती, क्योंकि जिस प्रकार विना प्रकाश के सूर्य नहीं हो सकता, उसी प्रकार विना ज्ञायक शक्ति के ज्ञान नहीं हो सकता इसलिये तुम्हारा पक्ष प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है।

(२८) इस प्रकार आत्मज्ञान के लिये स्याद्वाद ही समर्थ है, इसके वचन सुनने व अध्ययन करने से अज्ञानी लोग पंडित हो जाते हैं (२९) स्याद्वाद से आत्मा का स्वरूप पहिचाना जाता है, इसलिये यह ज्ञान बहुत बलवान् है, मोक्ष का साधक है, अनुमान प्रमाण की बाधा से रहित है, अक्षय है, इसको आज्ञावादी प्रति-वादी खंडन नहीं कर सकते।

ग्यारहवें अधिकार का सार

जैनधर्म के महत्वपूर्ण अनेक सिद्धान्तों में स्याद्वाद प्रधान है. जैनधर्म को जो कुछ गौरव है, वह स्याद्वाद का है। यह स्याद्वाद अन्य धर्मों को निर्मूल करने के लिये सुदर्शन-चक्र के समान है, स्याद्वाद का रहस्य समझना कठिन नही है, पर गूढ़ अवश्य है, और इतना गूढ़ है कि इसे स्वामी शंकराचार्य वा स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे अजैन विद्वान् नहीं समझ सके, और स्याद्वाद का उलटा खण्डन करके जैनधर्म को बड़ा धक्का दे गये इतना ही

नहीं आधुनिक कई विद्वान् इस धर्म पर नास्तिकपनेका लाञ्छन लगाते हैं।

अन्य मतावलम्बी भी जीव पदार्थ के एक ही धर्म पर दृष्टि देकर मस्त हो गये हैं, इसलिये जैनमत में उन्हें मतवारे कहा है। इस अधिकार में चौदह मतवालों को सम्बोधन किया है, और उनके माने हुए प्रत्येक धर्म का समर्थन करते हुए स्याद्वाद को पुष्ट किया है।

साध्य साधक द्वार

(१) यह स्याद्वाद अधिकार का संक्षिप्त वर्णन किया अब श्री अमृतचन्द्र मुनिराज साध्य साधक द्वार का वर्णन करते हैं।

(२) यह जीव पदार्थ अस्तित्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, अभोगतत्व, अमूर्तिकत्व, प्रदेशत्व सहित है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य वा दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि गुणों से अनन्तरूप है। निश्चयनय में उस जीव पदार्थ का स्वाभाविक धर्म सदा सत्य और एकरूप है उसे स्याद्वाद अधिकार में साध्य स्वरूप कहा, अब आगे उसे साधकरूप कहते हैं।

(३) केवलज्ञानी अरहंत वा सिद्ध परमात्मपद साध्य है और अव्रत सम्यग्दृष्टी अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान से लगाकर क्षीण मोह अर्थात् बारहवें गुणस्थान पर्यन्त नव गुणस्थानों में से किसी भी गुणस्थान का धारक ज्ञानी जीव साधक है।

(४) जिस जीव को अधः, अपूर्व, अनिवृत्तिरूप करण लब्धि की प्राप्ति हुई है और श्रीगुरु का सत्य उपदेश मिला है, जिसकी अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व, मोहनीय ऐसी सात प्रकृतियां सर्वथा क्षय वा उपशम हुई हैं, वा अंतरंग में सम्यग्दर्शन की सुन्दर किरण जागृत हुई है

वही सम्यग्दृष्टी जीव मुक्ति का साधक कहलाता है उसके अंतरंग और बाह्य, सर्व अंग में गुणस्थान चढ़ने की शक्ति प्रकट होती है।

(५) जिसकी भवस्थिति घट जाने से अर्थात् किंचित न्यून अर्धपुद्गल परावर्त्त कालमात्र शेष रहने से मुक्ति अवस्था समीप आ गई है, उसके मनरूप सीप में सद्गुरु मेघरूप और उनके वचन मोतीरूप परिणमन करते हैं। भाव यह कि ऐसे जीवों को ही श्रीगुरु के वचन रुचिकर होते हैं।

(६) जिस प्रकार बरसात में मेघ की धारा प्रवाह वृष्टि होती है, उसी प्रकार श्रीगुरु का उपदेश संसारी जीवोंके लिए हितकारी होता है।

(७) हे आत्मन् ! तुम मोह निद्रा को छोड़कर सावधान होओ और देखो तुम धन सम्पत्तिरूप माया में क्यों भूल रहे हो ! तुम कहाँ से आये हो और कहाँ चले जाओगे और दौलत जहांकी तहाँ पड़ी रहेगी। लक्ष्मी न तुम्हारी जाति की है, न पाँति की है, न वंश परंपरा की है, और तो क्या तुम्हारे एक प्रदेश का भी प्रतिरूप नहीं है। यदि इसे तुमने नौकरानी बनाकर न रक्खा तो यह तुम्हें लातें मारेगी, सो बड़े होकर तुम्हें ऐसा अन्याय करना उचित नहीं है।

(८) लक्ष्मी और छाया एक सारखी है, क्षण में बढ़ती और क्षण में घटती हैं, जो इनके संग में लगते हैं अर्थात् नेह लगाते हैं, उन्हें कभी चैन नहीं मिलती।

(९) हे जीव ! कुटुम्बी आदि जनों का तुमसे कुछ सम्बन्ध नहीं है और न तुम्हारा उनसे कुछ इस लोक सम्बन्धी प्रयोजन है, ये तो अपने मतलब के वास्ते तुम्हारे शरीर से मुहब्बत लगाते हैं और तुम अपने आत्म हित में मस्त हो। ये लोग शरीर में तन्मय हो रहे हैं, इसलिये शरीर ही के समान जड़ बुद्धि हैं, और तुम

चैतन्य हो, इनसे अलग हो इसलिए राग द्वेष का धागा तोड़कर अपना आत्मबल प्रकट करो और सुखी होओ।

(१०) जो अज्ञानी जीव इन्द्रादि उच्चपद की अभिलाषा करते हैं. परन्तु जो सदा समता रस के रसिया हैं, वे संसार सम्बन्धी कोई भी वस्तु नहीं चाहते।

(११) यदि हँसी में सुख माना जावे तो हँसी में तकरार (लड़ाई) खड़ी होने के संभावना है, यदि विद्या में सुख मान जावे तो विद्या में विवाद का निवास है, यदि शरीर में सुख माना जावे तो जो जन्मता है वह अवश्य मरता है, यदि बड़प्पन में सुख माना जावे तो उसमें नीचपने का बास है, यदि पवित्रता में सुख माना जावे तो पवित्रता में ग्लानि का बास है, यदि लाभ में सुख माना जावे तो जहाँ लाभ है वहाँ हानि भी है, यदि जीत में सुख माना जावे तो जहाँ जय है वहाँ हार भी है, यदि सुन्दरता में सुख माना जावे तो वह सदा एकसी नहीं रहती— बिगड़ती भी है, यदि भोगों में सुख माना जावे तो वे रोगों के कारण हैं, यदि इष्ट संयोग में सुख माना जावे तो जिसका संयोग होता है, उसका वियोग भी है, यदि गुणों में सुख माना जावे तो गुणों में घमंड का निवास है, यदि नौकरी चाकरी में सुख माना जावे तो वह गुलामगीरी ही है। इनके सिवाय और भी जो लौकिक कार्य है वे सब असातामय हैं, इससे स्पष्ट है कि साता का संयोग मिलाने के लिये उदासीनता सखी के समान है, भाव यह हैं कि समता मात्र भाव ही जगत में सुखदायक है।

(१२) जिस उच्च स्थान पर पहुंच के फिर गिरना पड़ता है, वह उच्च पद नहीं गहरा कुआ ही है। उसी प्रकार जिस सुख के प्राप्त होने पर उसके नष्ट होने का भय है वह सुख नहीं दुखरूप है (१३) क्योंकि लौकिक सुख सम्पत्ति का विलास नष्ट होने पर

फिर दुख ही प्राप्त होता है, जिस प्रकार कि सघन घास वाली ही धरती अग्नि से जल जाती है।

(१४) श्रीगुरु आत्म-पदार्थ का स्वरूप वर्णन करते हैं, उसे सुनकर बुद्धिमान लोग धारण करते हैं और मूर्ख उसका मर्म ही नहीं समझते।

(१५) जिस प्रकार किसी शहर के रहने वाले दो पुरुष वस्ती के समीप रास्ता भूल गये, उसमें एक सज्जन और दूसरा हृदय का दुर्जन था। रास्ता भूलकर ऊवट फिरें और किसी तीसरे रास्तागीर से अपने नगर का रास्ता पूछें तथा वह रास्तागीर उन्हें रास्ता समझा कर दिखावे और कहे कि यह तुम्हारा नगर तुम्हारे ही निकट है। सो उन दोनों पुरुषों में जो सज्जन है वह उसकी बात को सच्ची मानता है अर्थात् अपने नगर को पहचान लेता है और मूर्ख उसे नहीं मानता, इसी प्रकार ज्ञानी लोग श्री गुरु के उपदेश को सत्य श्रद्धान करते हैं, पर अज्ञानियों की समझ में नहीं आता। भाव यह है कि उपदेश का असर श्रोताओं के परिणामों के अनुसार ही होता है।

(१६) जैसे किसी वन में वरसात के दिनों में अपने आप पानी वरसता है तो खट्टा, कषायला, कडुवा, चरपरा, मिष्ठ, खारा जिस रस का वृक्ष होता है वह पानी भी उसी रसरूप हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी लोग ज्ञान के व्याख्यान में अपना अनुभव प्रगट करते हैं, पात्र अपात्र की परीक्षा नहीं करते, उस वाणी को सुनकर कोई तो ग्रहण करते हैं, कोई ऊंघते हैं, कोई विषाद होते हैं और कोई आनंदित होते हैं।

(१७) जिस में पाँच प्रकार के जीव निवास करते हैं वह संसार ही वहुत दुस्तर है, उस के लिये श्री गुरु का उपदेश क्या करेगा।

(१८) डूंघा जीव प्रभु है चूंघा चतुर है, सूंघा शुद्ध रुचिवंत है, ऊंघा दुर्बुद्धि और दुखी है और घूंघा महा अज्ञानी है।

(१९) जिसका कर्म-कालिमा रहित अगम्य, अगाध और वचन अगोचर उत्कृष्ट पद है वे सिद्ध भगवान डूंघा जीव हैं।

(२०) जो संसार से विरक्त होकर आत्म अनुभव का रस सप्रेम ग्रहण करता है और श्रीगुरु के वचन बालक के समान दुग्धवत् चूसता है वह चूंघा जीव है।

(२१) जो गुरु के वचन प्रेम पूर्वक सुनता है और हृदय में दुष्टता नहीं है—भद्र है, पर आत्म स्वरूप को नहीं पहिचानता ऐसा मन्द कषायी जीव सूंघा है।

(२२) जिसे सत् शास्त्र का उपदेश तो अप्रिय और विकथायें प्रिय लगती हैं वह विषयाभिलाषी, द्वेषी, क्रोधी और अधर्मी जीव ऊंघा है।

(२३) वचन रहित अर्थात् एकेन्द्रिय, श्रवण रहित अर्थात् द्वि, त्रि, चतुरिन्द्रिय, मन रहित अर्थात् असंज्ञी पंचेन्द्रिय और अव्रती अज्ञानी जीव जो ज्ञानावरणीयकर्म के तीव्र उदय से जड़ हो रहा है वह घूंघा है।

(२४) डूंघा जीव को सब कोई सिद्ध कहते हैं, सूंघा ऊंघा दोनों मूर्ख है घूंघा घोर संसारी है और चूंघा जीव मोक्ष का पात्र है।

(२५) चूंघा जीव मोक्ष का साधक है, दोष और दुखों का नाशक है, संतोष से परिपूर्ण रहता है उनके गुणवर्णन करता हूं।

(२६) दया, प्रशम, संवेग, इन्द्रिय दमन, आस्तिक्य, वैराग्य और सप्त व्यसन का त्याग ये चूंघा अर्थात् साधक जीव के चिन्ह है।

(२७) जुवा खेलना, मांस खाना, शराब पीना, वेश्या सेवन,

शिकार करना, चोरी और परस्त्री सेवन। ये सातों व्यसन दुख-दायक हैं, पाप की जड़ हैं और कुगति में ले जाने वाले हैं।

(२८) ये सातों जो शरीर से सेवन किये जाते हैं वे दुराचार रूप द्रव्य व्यसन हैं, और झूठे मोह परिणाम की अन्तरंग कल्पना सो भाव व्यसन हैं। द्रव्य और भाव दोनों ही दुःखों के घर हैं।

(२९) अशुभ कर्म के उदय में हार और शुभ कर्म के उदय में विजय मानना यह भाव जुवा है, शरीर में लीन होना यह भाव मांस भक्षण है, मिथ्यात्व से मूर्छित होकर स्वरूप को भूलना यह भाव मद्यपान है कुबुद्धि के मार्ग पर चलना यह भाव वेश्या सेवन है, कठोर परिणाम रखकर प्राणों का घात करना भाव शिकार है, देहादि परवस्तु में आत्मबुद्धि रखना सो भाव परस्त्री संग है, अनुराग पूर्वक पर पदार्थों के ग्रहण करने की अभिलाषा करना सो भाव चोरी है। ये ही सातों भाव व्यसन आत्मज्ञान को विदारण करते हैं अर्थात् आत्मज्ञान नहीं होने देते हैं।

(३०) जिसके चित्त में भाव व्यसनों का लेश भी नहीं रहता है वह अतुल्य और अपरम्पार पुरुषार्थ का धारक हृदयरूप समुद्र में चौदह महारत्न प्रगट करता है।

(३१) जहां ज्ञान के प्रकाश में चित्तरूप समुद्र का मन्थन किया जाता है वहां सुबुद्धिरूप लक्ष्मी, अनुभूतिरूप कौस्तुभमणि, वैराग्यरूप कल्पवृक्ष, सत्यवचनरूप शंख, ऐरावत हाथीरूप उद्यम, श्रद्धारूप रंभा, उदयरूप विष, निर्जरारूप कामधेनु, आनन्दरूप अमृत, ध्यानरूप धनुष, प्रेमरूप मदिरा, विवेकरूप वैद्य शुद्धभाव रूप चन्द्रमा और मनरूप घोड़ा ऐसे चौदह रत्न प्रगट होते हैं।

(३२) साधकदशा में जो चौदह रत्न प्रगट किये उन्हें ज्ञानी जीव विधि निषेध की रीति पर कुछ त्याग करता है और कुछ ग्रहण करता है (३३) अर्थात् सुबुद्धिरूप लक्ष्मी, सत्यवचनरूप

शंख, उदयरूप विष, ध्यानरूप धनुष, प्रेमरूप मदिरा, विवेकरूप धन्वन्तरि, निर्जरारूप कामधेनु और मनरूप घोड़ा ये आठ स्थिर हैं इसलिए त्यागने योग्य हैं तथा अनुभूतिरूप मणि, प्रतीतिरूप रंभा, उद्यमरूप हाथी, वैराग्यरूप कल्पवृक्ष आनन्दरूप अमृत, शुद्धभावरूप चन्द्रमा, ये छह रत्न उपादेय हैं (३४) इस प्रकार जो परभाव रूप विष-विकार त्याग करके निज स्वरूप में मग्न होता है वह निजस्वरूपका भोक्ता चैतन्य आत्मा मोक्षमार्ग का साधक है।

(३५) जिनके अन्तरंग में ज्ञान-दृष्टि द्रव्यगुण और पर्यायों का अवलोकन करती है, जो स्वयमेव ही दिन पर दिन स्याद्वाद के द्वारा अपना स्वरूप अधिक अधिक जानते हैं। जो केवली कथित धर्म मार्ग में श्रद्धा करके उसके अनुसार आचरण करते हैं, वे ज्ञानी मनुष्य मोहकर्म का मल नष्ट करते हैं और परम पद को प्राप्त करके स्थिर होते हैं।

(३६ चाक के समान घूमते घूमते जिसके संसार का अन्त निकट आ गया और जिसने मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, जिसने रागद्वेष छोड़कर मनरूप भूमि को शुद्ध किया है और ध्यान के द्वारा अपने को मोक्ष के योग्य बनाया है, वही शुद्ध अनुभव का अभ्यास करने वाला अविचल पद पाता है, और उसके कर्म नष्ट हो जाते हैं व अज्ञानरूपी रोग हट जाता है, परन्तु मिथ्यादृष्टी अपने स्वरूप को नहीं पहिचानते इससे वे अनन्तकाल पर्यन्त जगत के जाल में भटकते हैं और जन्ममरण के चक्कर लगाते हैं।

(३७) जिन जीवों ने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों के द्वारा पदार्थ का स्वरूप समझकर आत्मा की शुद्धता ग्रहण की है। जो अशुद्ध भावों के सर्वथा त्यागी हैं, इन्द्रिय विषयों से परांमुख होकर वीतरागी हुए हैं, जिन्होंने अनुभव के अभ्यास में

उपादेय और हेय दोनों प्रकार के भावों को एक सा जाना है, वे ही जीव ज्ञान क्रिया के उपासक है, मोक्ष माग के साधक हैं, कर्म वाधा रहित हैं और महान हैं।

(३८) ज्ञानी लोग कहते हैं कि अनादि काल की अशुद्धता के नष्ट होने और शुद्धता के पुष्ट होने की परणति ज्ञान क्रिया है और उसी से मोक्ष होता है।

(३९) सम्यग्दर्शन की जो किरण प्रकाशित होती है और मोक्ष के मार्ग में चलती है वह धारे धारे कर्मों का नाश करती हुई परमात्मा बनती है। (४०) जिसके चित्त में ऐसी सम्यग्दर्शन की किरण का उदय हुआ है उसी का नाम साधक है, जैसे कि जिस घर में दीपक जलाया जाता है उसी घर में उजेला होता है।

(४१) जिस के हृदय में मिथ्यात्व का अन्धकार नष्ट होने से शुद्ध सम्यग्दर्शन का सूर्य प्रकाशित हुआ, जिसकी मोह निद्रा हट गई और ममता की पलकें उघड़ पड़ीं, जिसने वचनातीत अपने परमेश्वर का स्वरूप पहिचान लिया, जिस के ज्ञान का तेज प्रकाशित हुआ, जो महान उद्यम में सावधान हुआ, जो साम्य-भाव का अमृत रस पान कर के पुष्ट हुआ, उसी ज्ञानी के संसार का अंत समीप आया है और उस ने ही मोक्ष का सुगम मार्ग पाया है।

(४२) स्याद्वाद के अभ्यास से जिस के अंत.करण में शुद्ध आत्मा का अनुभव प्रगट हुआ, जिसके संकल्प विकल्प के विकार नष्ट हो गये और सदैव एक ज्ञानभावरूप हुआ, जिसने वंध विधिका परिहार और मोक्ष अंगोकार का सद्विचार भी छोड़ दिया, जिस के ज्ञान की महिमा दिन पर दिन प्रकाशित हुई वह ही संसार सागर से पार होकर उस के किनारे पर पहुंचा है।

(४३) जीव पदार्थ नय की अपेक्षा से अस्ति नास्ति, एक

अनेक, थिर अथिर, आदि अनेक रूप कहा गया है। यदि एक नय से विपरीत दूसरा नय न दिखाया जाय तो विपरीतता दिखने लगती है और वादानुवाद उपस्थित होता है। ऐसी दशा में अर्थात् नय के विकल्पजाल में पड़ने से चित्त को विश्राम नहीं होता और चंचलता बढ़ने से अनुभव टिक नहीं सकता, इस लिये जीव पदार्थ को अचल, अबाधित, अखंडित और एक साध कर अनुभव का आनन्द लेना चाहिये।

(४४) कोई यह समझे कि जिस प्रकार पके हुए आम के फल में रस, जाली, गुठली, छिलका ऐसे चार अंश हैं, वैसे ही पदार्थ में द्रव्य क्षेत्र काल भाव ये चार अंश हैं, सो ऐसा नहीं है। इस प्रकार है कि जैसे आम का फल है और उस के स्पर्श रस गंध वर्ण उससे अभिन्न है, उसी प्रकार जीव पदार्थ के द्रव्य क्षेत्र काल भाव उस से अभिन्न हैं और आत्म सत्ता अपने स्वचतुष्टय से सदा अखंडित है

(४५) कोई ज्ञानी कहता है कि ज्ञान मेरा रूप है और ज्ञेय षट द्रव्य मेरा स्वरूप नहीं है। इस पर श्रीगुरु संबोधन करते हैं कि एक नय अर्थात् व्यवहार नय से तुम्हारा कहना सत्य है, और दूसरा निश्चयनय मैं कहता हूँ वह इस प्रकार है कि जैसे विद्या अक्षर और अर्थ एक ही स्थान पर हैं, भिन्न नहीं हैं। उसी प्रकार ज्ञाता आत्मा का नाम है, और ज्ञान चेतना का प्रकार है तथा वह ज्ञान ज्ञेयरूप परिणमन करता है सो ज्ञेयरूप परिणमन करने की अनंत शक्ति आत्मा में ही है, इसलिये वचन के भेद से भले ही भेद कहो, परन्तु निश्चय से ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय का विलास एक आत्म सत्ता में ही है।

(४६) आत्मा की ज्ञान शक्ति अपना स्वरूप जानती है और अपने सिवाय अन्य पदार्थों को भी जानती है, इससे ज्ञान और

ज्ञेय का वचन भेद मूर्खों को बड़ा भ्रम उत्पन्न करता है । ज्ञेय अवस्था दो प्रकार की है एक तो स्वज्ञेय और दूसरी परज्ञेय ।

(४७) स्वज्ञेय आत्मा है और परज्ञेय आत्मा के सिवाय जगत् के सब पदार्थ हैं, जिसने यह स्वज्ञेय और परज्ञेय की उलझन समझ ली है उसने सब कुछ ही जान लिया समझो ।

(४८) यदि जीव की कर्म सहित अवस्था पर दृष्टि दी जावे तो वह व्यवहारनय से अशुद्ध दिखता है, यदि निश्चयनय से कर्म-मल रहित अवस्था विचारी जावे तो वह निर्दोष है, और यदि ये दोनों नयें एक साथ सोचा जावें तो शुद्धाशुद्धरूप जाना जाता है। इस प्रकार संसारी जीव की विचित्र गति है । यद्यपि वह एक क्षण में शुद्ध, अशुद्ध और शुद्धाशुद्ध ऐसे तीनरूप है तो भी इन तीनों रूपों में वह अखंड चैतन्य शक्ति से सर्वांग सम्पन्न है। यही स्याद्वाद है, इस स्याद्वाद के मर्म को स्याद्वादी ही जानते हैं, जो मूख हृदय के अंधे हैं वे इस मतलब को नहीं समझते।

(४९) आत्मा निश्चयनय वा द्रव्यदृष्टि से एकरूप है, गुण पर्यायों के भेद अर्थात् व्यवहारनय से अभेदरूप है। अस्तित्व की दृष्टि से निज क्षेत्रावगाह में स्थित है, प्रदेशों की दृष्टि से लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है, ज्ञायक दृष्टि से लोकालोक प्रमाण है। पर्यायों की दृष्टि से क्षणभंगुर है, अविनाशी चेतना शक्ति की दृष्टि से नित्य है। वह जीव जगत में श्रेष्ठ और सार पदार्थ है, उसके सुख गुण की महिमा अपरम्पार और अद्भुत है ।

(५०) आत्मा विभाव परणतिसे दुखी दिखता है, पर उसकी शुद्ध और चैतन्य शक्तिका विचार करो तो वह साहजिक शान्तिमय ही है। वह कर्म के संसर्ग से गति योनि का प्रवासी कहलाता है, पर उसका निश्चय स्वरूप देखो तो कर्म बन्धन से मुक्त परमेश्वर ही है। उसकी ज्ञायक शक्ति पर दृष्टि डालो तो लोकालोक

का ज्ञाता द्रष्टा है, यदि उसके अस्तित्व पर ध्यान दो तो निज क्षेत्रावगाह प्रमाण ज्ञान का पिण्ड है। ऐसा जीव जगत का ज्ञाता है, उसकी लीला विशाल है, उसकी कीर्ति कहां नहीं है, अनादि काल से चली आती है और अनन्त काल तक चलेगी।

(५१) जगत में जो ज्ञायक ज्योति पाँच प्रकार का ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट करके चमकती हुई प्रगट हुई है और अनेक प्रकार ज्ञेयाकार परिणमन करने पर भी जो एकरूप हो रही है वह ज्ञायक शक्ति इसी प्रकार अनन्त काल तक रहेगी और अनन्त वीर्य को स्फुरित करके अक्षय पद प्राप्त करेगी। वह शुद्ध केवलज्ञानरूप प्रभा मनुष्य-देहरूप मंदिर में परम शान्तिमय प्रगट हुई है।

(५२) अमृतचन्द्र स्वामी की चन्द्र कला; अनुभव की, टीका की और कविता की तीनरूप है सो सदा काल अक्षर अर्थ अर्थात् मोक्ष पदार्थ से भरपूर है, सेवा करने से कामधेनु के समान महा सुखदायक है। इसमें निर्मल और शुद्ध परमात्मा के गुण समूह का वर्णन है, परम पवित्र है, निर्मल है और भव्य जीवों के चितवन करने योग्य है, मिथ्यात्व का अंधकार नष्ट करने वाली है, दोपहर के सूर्य के समान उन्नतिशील है।

(५३) साध्य साधक नामक बारहवां अधिकार वर्णन किया और श्रीअमृतचन्द्राचार्यकृत समयसार की संस्कृतटीका के अनुसार भाषा नाटक समयसार जी समाप्त हुए।

(५४) स्वरूप का ज्ञान होने से प्रसन्नता प्रगट हुई और संताप का अभाव हुआ है इसलिये अब काव्यकर्त्ता स्वयं ही अपनी पूर्व दशा की आलोचना करते हैं।

(५५) मैंने पूर्वकाल में अपना स्वरूप ग्रहण नहीं किया, परपदार्थों को अपना माना और परम समाधि में लीन नहीं हुआ,

भोगों का भोगता बन कर कर्मों का कर्ता हुआ, और हृदय राग द्वेष मोह के मल से मलिन रहा। ऐसी विभाव परणति में हमने ममत्व भाव रक्खा अर्थात् विभाव परणति को आत्म परणति समझा, उसके फल से हमारी यह दशा हुई। अब ज्ञान का उदय होने से क्रिया से विरक्त हुआ हूँ, पहले का कहा हुआ जो कुछ हुआ वह मिथ्यात्व की मोह निद्रा में स्वप्न कैसा छल हुआ है, अब नींद खुल गई।

(५६ साक्षात् मोक्ष का मार्ग बतलाने वाला श्री अमृतचन्द्र जी मुनिराजकृत नाटक समयसार ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ।

बारहवें अधिकार का सार

जो साधै सो साधक, जिसको साधा जावे सो साध्य है। मोक्षमार्ग में, "मैं साध्य साधक मैं अबाधक" की नीति से आत्म ही साध्य है और आत्मा ही साधक है, भेद इतना है कि ऊँचे की अवस्था साध्य और नीचे की अवस्था साधक है इसलिए केवल-ज्ञानी अर्हंत सिद्ध पर्याय साध्य और सम्यग्दृष्टी श्रावक साधु अवस्थायें साधक हैं।

अनन्तानुबन्धी की चौकड़ी और दर्शनमोहनीय त्रय का अनोदय होने से सम्यग्दर्शन होता है और सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर ही जीव उपदेश का वास्तविक पात्र होता है, सो मुख्य उपदेश तो तन धन जन आदि से राग हटाने और व्यसन तथा विषय-वासनाओं से विरक्त होने का है। जब लौकिक सम्पत्ति और विषय-वासनाओं से चित्त विरक्त हो जाता है तब इन्द्र अहमिन्द्र की सम्पदा भी विरस और निस्सार भासने लगती है इस लिये ज्ञानी लोग स्वर्गादि की अभिलाषा नहीं करते, क्योंकि जहाँ तक चढ़कर 'देव इक इन्द्री भया' की उक्ति के अनुसार फिर नीचे पड़ता है

उसे उन्नति ही नहीं कहते हैं, और जिसे सुख में दुख का समावेष है वह सुख नहीं दुख ही है, इससे विवेकवान पुरुष स्वर्ग और नर्क दोनों को एक ही सा गिनते हैं।

इस सर्वथा अनित्य संसार में कोई भी वस्तु जो ऐसी नहीं है जिससे अनुराग किया जावे, क्यो कि भोगों में रोग, संयोग में वियोग, विद्या में विवाद, शुचि में ग्लानि, जय में हार पाई जाती है। भाव यह है कि संसार की जितनी सुख सामग्रियां हैं वे दुःखमय ही हैं, इससे साता की सहेली अकेली उदासीनता जान कर उसकी ही उपासना करनी चाहिए।

चतुर्दश गुणस्थानाधिकार।

(१) जिसकी भक्ति के प्रसाद से यह ग्रन्थ निर्विघ्न समाप्त हुआ ऐसी जिनराज सदृश जिन प्रतिमा को पं० बनारसी दास जी नमस्कार करते हैं।

(२) जिस के मुख का दर्शन से भक्त जनों के नेत्रों की चंचलता नष्ट होती है और स्थिर होने की आदत बढ़ती है अर्थात् एक दम टक टकी लगा कर देखने लगते हैं, जिस मुद्रा के देखने से केवली भगवान का स्मरण हो पड़ता है, जिस के सामने सुरेन्द्र की सम्पदा भी तिनके के समान तुच्छ भासने लगती है, जिस के गुणों का गान करने से हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है और जो बुद्धि मलिन थी वह पवित्र हो जाती है। पं० बनारसी दास जी कहते हैं कि जिनराज के प्रतिबिम्ब की प्रत्यक्ष महिमा है जिनेन्द्र की मूर्ति साक्षात् जिनेन्द्र के समान सुशोभित होती है।

(३) पण्डित बनारसीदास जी कहते हैं कि जिन के अंतरंग में सम्यग्दर्शन की तरंग उठ कर मिथ्या मोहनीय जनित

निद्रा की असावधानी नष्ट हो गई है, जिन के हृदय में जैन मत की पद्धति प्रगट हुई है, जिन्होंने मिथ्याभिमान का त्याग किया है, जिन्हें छह द्रव्यों के स्वरूप की पहिचान हुई है, जिन्हें अरहंत कथित आगमका उपदेश श्रवण गोचर हुआ है, जिनके हृदय रूप भंडार में जैन ऋषियों के वचन प्रवेश कर गये हैं, जिनका संसार निकट आया हैं वे ही जिनप्रतिमा को जिनराज सदृश मानते हैं।

(४-५) जिनराज की प्रतिमा भक्तों के मिथ्यात्व को दूर करती है। उस जिन प्रतिमा को पं० बनारसी दास जी ने नमस्कार करके मन में ऐसा विचार किया कि यह नाटक समयसार ग्रन्थ परम पद रूप है और इस में आत्मतत्त्व का व्याख्यान तो है, परन्तु गुण स्थानों का वर्णन नहीं है। यदि इस में गुण स्थानों की चर्चा सम्मिलित हो तो ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी हो सकता है।

(६) यह सोच कर पंडित बनारसी दास जी शिव-मार्ग खोजने में कारण भूत गुण स्थानों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

(७) जीव पदार्थ निश्चयनय से एक रूप है और व्यवहारनय से गुण स्थानों के भेद से चौदह प्रकार का है। जिस प्रकार सुफेद वस्त्र रंगों के संयोग से अनेक रंग का हो जाता है, उसी प्रकार मोह और योग के संयोग से संसारी जीवों में चौदह अवस्थाएँ पाई जाती हैं।

(८) पहला मिथ्यात्व, दूसरा सासादन, तीसरा मिश्र, चौथा अव्रत सम्यग्दृष्टी, पाँचवाँ देशव्रत, छठवाँ प्रमत्त मुनि, सातवाँ अप्रमत्त मुनि, आठवाँ अपूर्व करण, नवमाँ अनिवृत्तिकरण, दशवाँ सूक्ष्म लोभ, ग्यारहवां उपशांतमोह, बारहवाँ क्षीण मोह, तेरहवाँ सयोगी-जिन और चौदहवाँ अयोगी जिन जिसकी स्थिति अ इ उ ऋ लृ इन पाँच अक्षरों के उच्चारण काल के बराबर है।

(९) गुणस्थानों के चौदह मुख्य नाम बतलाये, अब पांच

प्रकार के मिथ्यात्व का वर्णन करते हैं।

(१०) पहला अभिग्रहीत अर्थात् एकान्त मिथ्यात्व है, दूसरा अभिनिवेषिक अर्थात् विपरीत मिथ्यात्व है, तीसरा अनाभिग्रह अर्थात् विनय मिथ्यात्व है, चौथा चित्त को भँवर में पड़े हुए जहाज के समान डाँवाडोल करने वाला संशय मिथ्यात्व है, पाँचवाँ अनाभोगिक अर्थात् अज्ञान मिथ्यात्व सर्वथा असावधानी की मूर्ति है। ये पाँचो मिथ्यात्व जीव को संसार में भ्रमण कराते हैं और इनके नष्ट होने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

(११) जो किसी एक नय का हठ ग्रहण करके उसी में लीन होकर अपने को तत्त्ववेत्ता कहता है वह पुरुष एकान्तवादी साक्षात् मिथ्यात्वी है।

(१२) जो आगम कथित मार्ग का खंडन करके स्नान, छुवा-छूत आदि में धर्म बतला कर अपना कपोल कल्पित पाखंड पुष्ट करता है व अपनी नामवरी के लिये बड़ा बना फिरता है वह जीव विपरीत मिथ्यात्वी है।

(१३) जो सुदेव कुदेव, सुगुरु कुगुरु, सत्शास्त्र कुशास्त्र, सब को एकसा गिनता है और विवेक रहित सब की भक्ति वन्दना करता है वह जीव मिथ्यात्वी है।

(१४) जो जीव अनेक कोटिका अवलम्बन करके चंचल चित्त रहता है और स्थिर चित्त होकर पदार्थ का यथार्थ श्रद्धान नहीं करता वह संशय मिथ्यात्वी है।

(१५) जिसको शारीरिक कष्ट के उद्वेग से किंचित मात्र भी सुध नहीं है और सदैव तत्त्वज्ञान से अनभिज्ञ रहता है, वह जीव अज्ञानी है पशु के समान है।

(१६) जैन शास्त्रों में जो पांच प्रकार का मिथ्यात्व वर्णन किया है उसके सादि और अनादि दोनों का स्वरूप कहता हूं।

(१७) जो जीव दर्शनमोहनीय का दल अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यक्‌मिथ्यात्व और सम्यक्‌प्रकृति को उपशम करके मिथ्यात्व गुणस्थान से चढ़कर सम्यक्त्व का स्वाद लेता है और फिर मिथ्यात्व में गिरता है वह सादि मिथ्यात्वी है।

(१८) जिसने मिथ्यात्व का कभी अनोदय नहीं किया, सदा शरीरादि से अहंबुद्धि रखता आया है वह मूर्ख आत्मज्ञान से शून्य अनादि मिथ्यात्वी है।

(१९) यह पहले मिथ्यात्व गुणस्थान का स्वरूप कहा, अब संक्षेप से सासादन गुणस्थान का कथन करते हैं।

(२०) जिस प्रकार कोई भूखा मनुष्य शक्कर मिली हुई खीर खावे और वमन होने के वाद उसका किंचित् मात्र स्वाद लेता रहै, उसी प्रकार चौथे पाँचवें छठवें गुणस्थान तक चढ़े हुए किसी उपशमी सम्यक्त्वी को कषाय का उदय होता है तो उसी समय वहाँ से मिथ्यात्व में गिरता है, उस गिरती हुई दशा में एक समय और अधिक से अधिक छह आवली तक जो सम्यक्त्व का किंचित् स्वाद मिलता हैं वह सासादन गुणस्थान है।

(२१) यह दूसरे सासादन गुणस्थान का स्वरूप समाप्त हुआ, अब तीसरे मिश्र गुणस्थान का वर्णन करते हैं।

(२२) आचार्य कहते हैं कि उपशम सम्यग्दृष्टी अथवा सादि मिथ्यादृष्टी जीव को यदि मिश्र मिथ्यात्व नामक कर्म प्रकृति का उदय हो पड़े और अनंतानुवन्धी की चौकड़ी तथा मिथ्यात्व मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय इन छह प्रकृतियों का उदय न हो, वहाँ एक साथ सत्यासत्य श्रद्धानरूप ज्ञान और मिथ्यात्व मिश्रित भाव रहते हैं वह मिश्र गुणस्थान है, इसका काल अन्तर्मुहूर्त है।

(२३) अपने क्षयोपशम के अनुसार मिश्र गुणस्थान का कथन समाप्त हुआ, अब जिनागम की साक्षीपूर्वक चौथे गुणस्थान

का वर्णन करता हूँ ।

(२४) जिस किसी जीव के संसार संसरण का काल अधिक से अधिक अर्द्ध पुद्गल परावर्तन और कम से कम अंतर्मुहूर्त शेष रहता है वह निश्चय सम्यग्दर्शन ग्रहण करके चतुर्गतिरूप संसार को पार करनेवाले मोक्ष सुख की बानगी लेता है । अंतर्मुहूर्त से लगाकर अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल के जितने समय हैं उतने ही सम्यक्त्व के भेद हैं । जिस समय जीव को सम्यक्त्व प्रगट होता है तभी से आत्म गुण प्रगट होने लगते हैं और सांसारिक दोष नष्ट हो जाते हैं ।

(२५) जो अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण पूर्वक मिथ्यात्व का अनोदय करता है उसे आत्मानुभव गुण प्रगट होता है और वही सम्यक्त्व है ।

(२६) सम्यक्त्व का स्वरूप, उत्पत्ति, चिन्ह, गुण, भूषण, दोष, नाश और अतीचार ये सम्यक्त्व के आठ विवरण हैं ।

(२७) आत्म स्वरूप की सत्य प्रतीति होना, दिन प्रति दिन समता भाव में उन्नति होना, और क्षण क्षण पर परिणामों की विशुद्धि होना इसी का नाम सम्यग्दर्शन है ।

(२८) चतुर्गति सैनी जीवको सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सो अपने आप अर्थात् निसर्गज और गुरु के उपदेश से अर्थात् अधिगमज होता है ।

(२९) अपने में ही आत्म स्वरूप का परिचय पाता है, कभी सन्देह नहीं उपजता और छल कपट रहित वैराग्य भाव रहता है, यही सम्यग्दर्शन का चिन्ह है ।

(३०) करुणा, मैत्री, सज्जनता, स्वलघुता, समता, श्रद्धा, उदासीनता, और धर्मानुराग ये सम्यक्त्व के आठ गुण हैं ।

(३१) जैनधर्म की प्रभावना करने का अभिप्राय, हेय उपादेय

का विवेक, धीरज, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का हर्ष और तत्त्वविचार में चतुराई ये पांच सम्यग्दर्शन के भूषण हैं।

(३२) आठ मद, आठ मल, छह अनायतन और तीन मूढ़ता ये सब मिलाकर पच्चीस दोष होते हैं।

(३३ जाति, धन, कुल, रूप, तप, बल, विद्या और अधिकार इनका गर्व करना यह आठ प्रकार का महामद है।

(३४) जिन-वचन में सन्देह, आत्म स्वरूप से चिगना, विषयों की अभिलाषा शरीरादिसे ममत्व अशुचिमें ग्लानि, सहधर्मियों से द्वेष, दूसरों की निंदा, ज्ञान की वृद्धि आदि धर्म-प्रभावनाओं में प्रमाद ये आठ मल सम्यग्दर्शन को दूषित करते हैं।

(३५) कुगुरु, कुदेव, कुधर्म के उपासकों और कुगुरु, कुदेव, कुधर्म की प्रशंसा करना ये छह अनायतन हैं।

(३६) देव मूढ़ता अर्थात् सच्चे देव का स्वरूप नहीं जानना, गुरु मूढ़ता अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनि का स्वरूप नहीं समझना और धर्म मूढ़ता अर्थात् जिनभाषित धर्म का स्वरूप नहीं समझना ये तीन मूढ़ता हैं। आठ मद, आठ मल, छह अनायतन तथा तीन मूढ़ता सब मिलाकर पच्चीस दोष हुए।

(३७) ज्ञान का अभिमान, बुद्धिकी हीनता, निर्दय वचनों का भाषण क्रोधी परिणाम और प्रमाद ये पाँच सम्यक्त्वके घातक हैं।

(३८) लोक-हास्य का भय अर्थात् सम्यक्त्वरूप प्रवृत्ति करने में लोगों की हँसी का भय, इन्द्रियों के विषय भोगने में अनुराग, आगामी काल की चिन्ता, कुशास्त्रों की भक्ति और कुदेवों की सेवा ये सम्यग्दशन के पांच अतीचार हैं।

(३९) ये पाँच प्रकार के अतीचार सम्यग्दर्शन की उज्ज्वल परणति को मलिन करते हैं। यहाँ तक सम्यग्दर्शन को सदोष व निर्दोष दशा प्राप्त कराने वाले आठ विवरण वर्णन किये।

(४०) मोहनीय कर्म की जिन सात प्रकृतियों के अनोदय (निवारै) सेसम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उन्हें जिनशासन के अनुसार कहता हूँ।

(४१) सम्यक्त्व की घातक चारित्र मोहनीय की चार और दर्शन मोहनीय की तीन ऐसी सात प्रकृतियां हैं। इनमेंसे पहली अनंतानुबंधी क्रोध, दूसरी अभिमान के रँग से रँगी हुई अनंतानुबंधी मान, तीसरी अनंतानुबंधी माया, चौथी परिग्रह को पुष्ट करने वाली अनंतानुबंधी लोभ, पाँचवीं मिथ्यात्व, छट्ठी मिश्र मिथ्यात्व और सातवीं सम्यक्त्व मोहनी है। इनमेंसे छह प्रकृतियां व्याघ्रनी के समान सम्यक्त्व के पीछे पड़कर भक्षण करनेवाली हैं और सातवीं कुतिया अर्थात् कुत्ती वा कर्कशा स्त्री के समान सम्यक्त्वको सकंप वा मलिन करनेवाली है। इस प्रकार ये सातों प्रकृतियां सम्यक्त्व के सद्भाव को रोकती हैं।

(४२) जो ऊपर कही हुई सातों प्रकृतियों को उपशमाता है वह औपशमिक सम्यग्दृष्टी है। सातों प्रकृतियों का क्षय करनेवाला क्षायिक सम्यग्दृष्टी है,यह सम्यक्त्व कभी नष्ट नहीं होता। सात प्रकृतियों में से कुछ क्षय हों और कुछ उपशम हों तो, वह क्षयोपशम सम्यक्त्वी है, उसे सम्यक्त्व का मिश्ररूप स्वाद मिलता है। छह प्रकृतियां उपशम हों वा क्षय हों अथवा कोई क्षय और कोई उपशम हो केवल सातवीं प्रकृति सम्यक्त्व मोहनी का उदय हो तो वह वेदक सम्यक्त्वधारी होता है।

(४३) क्षयोपशम सम्यक्त्व तीन प्रकार का है, वेदक सम्यक्त्व चार प्रकार का है, और उपशम तथा क्षायिक ;ये दो भेद और मिलाने से सम्यक्त्व के नव भेद होते हैं।

(४४) (१) चार का क्षय और तीन का उपशम, (२) पांच का क्षय दो का उपशम,(३) छह का क्षय एक का उपशम, इस प्रकार

क्षयोपशम सम्यक्त्व के तीन भेद हैं।

(४५-४६-४७) (१) जहां चार प्रकृतियो का क्षय दो का उपशम और एक का उदय है वह प्रथम क्षयोपशमवेदक सम्यक्त्व है, (२)जहाँ पाँच प्रकृतियों का क्षय एकका उपशम और एकका उदय है वह द्वितीय क्षयोपशम वेदक सम्यक्त्व है, (३) जहाँ छह प्रकृतियों का क्षय और एक का उदय है वह क्षायिक वेदक सम्यक्त्व है, (४) जहाँ छह प्रकृतियों का उपशम और एक का उदय है वह उपशम वेदक सम्यक्त्व है।

(४८) क्षायिक और उपशम सम्यक्त्व का स्वरूप पहले ४२ वें छप्पय छन्द में कह आये हैं, इसलिये पुनरुक्ति दोष के कारण यहाँ नहीं लिखा।

(४९) क्षयोपशम सम्यक्त्व तीन प्रकार का वेदक सम्यक्त्व चार प्रकार का और उपशम सम्यक्त्व एक तथा क्षायिक सम्यक्त्व एक, इस प्रकार सम्यक्त्व के मूल भेद चार और उत्तर भेद नव हैं।

(५०) सम्यक्त्व सत्ता की निश्चय, व्यवहार, सामान्य और विशेष ऐसी चार विधि कहने हैं।

(५१) मिथ्यात्व के नष्ट होने से मन वचन काय के अगोचर जो आत्मा की निर्विकार श्रद्धान की ज्योति प्रकाशित होती है, उसे निश्चय सम्यक्त्व जानना चाहिये। जिसमें योग, मुद्रा, मति ज्ञान, श्रुतज्ञान आदि के विकल्प हैं,वह व्यवहार सम्यक्त्व जानना ज्ञान की अल्प शक्ति के कारण मात्र चेतना चिन्ह के धारक आत्मा को पहिचान कर निज और पर के स्वरूप का जानना सो सामान्य सम्यक्त्व है, और हेय ज्ञेय उपादेय के भेदाभेद को सविस्ताररूप से समझना सो विशेष सम्यक्त्व है।

(५२) अव्रत सम्यग्दृष्टी गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस

सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है। यह चौथे गुण स्थान का कथन समाप्त हुआ।

(५३) जिन गुणों के ग्रहण करने और अभक्ष्यों के त्यागने से श्रावक का पाँचवां गुणस्थान सुशोभित होता है,ऐसे इक्कीस गुणों और बाईस अभक्ष्यों का वर्णन करता हूं।

(५४) लज्जा, दया, मंदकषाय, श्रद्धा, दूसरों के दोष ढांकना, परोपकार, सौम्यदृष्टि, गुणग्राहकता, सहनशीलता, सर्व प्रियता, सत्य पक्ष, मिष्ट वचन, अग्रसोची, विशेष ज्ञान, शास्त्र ज्ञान की मर्मज्ञता, कृतज्ञता, तत्व ज्ञानी, धर्मात्मा, न दीन न अभिमानी मध्य व्यवहारी, स्वाभाविक विनयवान, पापाचरण से रहित ऐसे इक्कीस पवित्र गुण श्रावकों को ग्रहण करना चाहिये।

(५५) (१) ओला, (२) द्विदल, (३) रात्रिभोजन, (४) बहु बीजा, (५) बैंगन, (६) अथाना, मुरब्बा, (७) पीपर फल, (८) बड़ फल (९) ऊमर फल, (१०) कठूमर, (११) पाकर फल, (१२) अजान फल, (१३) कंदमूल, (१४) माटी, (१५) विष, (१६) मांस (१७) शहद, (१८) मक्खन, (१९) शराब, (२०) अति सूक्ष्म फल (२१) बर्फ, (२२) चलित रस, ये बाईस अभक्ष्य जैनमत में कहे हैं।

(५६) अब पांचवें गुणस्थान का थोड़ासा वर्णन करते हैं जिसमें ग्यारह प्रतिमाओं का विकल्प है।

(५७) (१) सम्यग्दर्शन में विशुद्धि उत्पन्न करने वाली दर्शन प्रतिमा है, (२) बारह व्रतों का आचरण व्रत प्रतिमा है, (३) सामायिक की प्रवृत्ति सामायिक प्रतिमा है, (४) पर्व में उपवास विधि करना प्रोषध प्रतिमा है, (५) सचित्त का त्याग सचित्त विरत प्रतिमा है, (६) दिन में स्त्री स्पर्श का त्याग दिवामैथुनत्याग

(८) सर्व आरंभ का त्याग निरारंभ प्रतिमा है, (९) पाप के कारणभूत परिग्रह का त्याग सो परिग्रह त्याग प्रतिमा है (१०) पाप की शिक्षा का त्याग अनुमति त्याग प्रतिमा है, (११) अपने वास्ते बनाये हुए भोजनादिका त्याग उद्देश विरति प्रतिमा है। ये ग्यारह प्रतिमा देशव्रतधारी सम्यग्दृष्टी जीवों की जिनराज ने कही हैं।

(५८) चारित्र गुण का प्रगट होना, परिणामों का भोगों से विरक्त होना और प्रतिज्ञा का उदय होना इसी को प्रतिमा कहते हैं।

(५९) दर्शन गुण की निर्मलता, अष्ट मूलगुणों का ग्रहण और सात कुव्यसनों का त्याग इसे दर्शन प्रतिमा कहते हैं।

(६०) पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत के धारण करने को व्रत प्रतिमा कहते हैं।

(६१-६२) मन में समय की प्रतिज्ञा पूर्वक द्रव्य और भाव विधि सहित, एक मुहूर्त्त अर्थात् दो घड़ी तक ममत्व भाव रहित साम्य भाव ग्रहण करना, शत्रु और मित्र पर एकसा भाव रखना, आर्त और रौद्र दोनों कुध्यानों का निवारण करना और संयम में सावधान रहना सामायिक प्रतिमा कहाती है।

(६३) बारह घंटे अथवा चौवीस घंटे तक सामायिक जैसी स्थिति अर्थात् समता भाव रखने को प्रोषध प्रतिमा कहते हैं।

(६४) सचित्त भोजन का त्याग करना और प्राशुक जल पान करना उसे सचित्त विरति प्रतिमा कहते हैं।

(६५) नव वाड़ सहित दिन में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना और पर्व तिथियों में दिन रात ब्रह्मचर्य सम्हालना दिवा मैथुनव्रत प्रतिमा है।

(६६) जो नव वाड़ सहित सदा काल ब्रह्मचर्य व्रत पालन

करता है. वह ब्रह्मचर्य नामक सातवीं प्रतिमा का धारी ज्ञानी जगत् विख्यात शील शिरोमणि हैं।

(६७) स्त्रियों के समागम में रहना, स्त्रियों को राग भरी दृष्टि से देखना, स्त्रियों से परोक्ष में सराग सम्भाषण करना, पूर्वकाल में भोगे हुए भोग विलासों का स्मरण करना, आनन्द-दायक गरिष्ट भोजन करना, स्नान मंजन आदि के द्वारा शरीर को आवश्यकता से अधिक सजाना, स्त्रियों के पलंग आसन आदि पर सोना बैठना, कामकथा वा कामोत्पादक कथा गीतों का सुनना, भूख से अधिक अथवा खूब पेट भर कर भोजन करना। इनके त्याग को जैनमत में ब्रह्मचर्य की नव वाड़ कहा है।

(६८) जो विवेक पूर्वक धर्म में सावधान रहता है और सेवा कृषि वाणिज्य आदि का पापारम्भ नहीं करता. वह कुगति के रणथंम को जीतने वाली आठवीं प्रतिमा का स्वामी है।

(६९) जो वैराग्य और संतोष का आनन्द प्राप्त करता है, तथा दश प्रकार के परिग्रहों में से थोड़े से वस्त्र व पात्र मात्र रखता है, वह साम्य-भावका धारक नवमी प्रतिमाका स्वामी है।

(७०) जो कुटुम्बी व अन्य जनों को विवाह, वाणिज्य आदि पापारम्भ करने का उपदेश नहीं देता, वह पाप रहित दशवीं प्रतिमा धारक है।

(७१) जो घर छोड़कर मठ मंडप में निवास करता है, और स्त्री पुत्र कुटुम्ब आदि से विरक्त होकर स्वतन्त्र वर्तता है, तथा कृत कारित अनुमोदना रहित योग्य आहार ग्रहण करता है, वह ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक है।

(७२) देशव्रत गुणस्थान में ग्यारह प्रतिमाएं ग्रहण करने का उपदेश है। सो शुरू से उत्तरोत्तर अंगीकार करना चाहिये और नीचे की प्रतिमाओं की क्रिया छोड़ना नहीं चाहिये।

(७३) छठवीं प्रतिमा तक जघन्य श्रावक, नवमी प्रतिमा तक मध्यम श्रावक और दशवीं ग्यारहवीं प्रतिमा धारण करने वालों को उत्कृष्ट श्रावक कहते हैं। यह प्रतिमाओं का वर्णन पूरा हुआ।

(७४) पाँचवें गुणस्थान का उत्कृष्ट काल आठ वर्ष कम एक कोटि पूर्व और जघन्य काल अंतर्मुहूर्त्त है।

(७५) सत्तर लाख छप्पन हजार एक करोड़ का गुणा करने से जो संख्या प्राप्त होती है, उतने वर्ष का एक वर्ष में पूर्व होता है।

(७६) दो घड़ी में से एक समय कम अंतर्मुहूर्त का उत्कृष्ट काल है और एक समय अधिक एक आवली अंतर्मुहूर्त का जघन्य काल है तथा बीच के असंख्यात भेद हैं।

(७७) पांचवें गुणस्थान का यह विचित्र वर्णन किया अब हे मित्र! छट्ठे गुणस्थान का स्वरूप सुनो।

(७८) जो मुनि अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं, परन्तु पांच प्रकार के प्रमादों में किंचित वर्तते हैं, वे मुनि प्रमत्त गुणस्थानी हैं। इस गुणस्थान में स्थविरकल्पी और जिनकल्पी दोनों प्रकार के साधु रहते हैं।

(७९) धर्म में अनुराग, विकथा वचन, निद्रा, विषय, कषाय, ऐसे पाँच प्रमाद सहित साधु छट्ठे गुणस्थानवर्त्ती प्रमत्त मुनि होते हैं।

(८०) पंच महाव्रत पालते हैं, पाँचों समिति पूर्वक वर्तते हैं, पाँचों इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर प्रसन्न होते हैं, द्रव्य और भाव छह आवश्यक साधते हैं, त्रस जीव रहित भूमि पर करवट रहित शयन करते हैं, यावज्जीवन स्नान नहीं करते, हाथों से केश-लोंच करते हैं, नग्न रहते हैं, दंतवन नहीं करते, तो भी वचन और श्वास में सुगंध ही निकलती है, खड़े भोजन लेते हैं; थोड़ा

भोजन लेते हैं, भोजन दिन में एक ही वार लेते हैं। ऐसे अट्ठाईस मूलगुणों के धारक जैन साधु होते हैं।

(८१) हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पांचों पापों के किंचित् त्यागी अणुव्रती श्रावक और सर्वथा त्यागी महाव्रती साधु होते हैं।

(८२) जीव जन्तुकी रक्षा के लिये देखकर चलना ईर्यासमिति है, हित मित प्रिय वचन बोलना भाषासमिति है, अन्तराय रहित निर्दोष आहार लेना एषणा समिति है, शरीर, पुस्तक, पीछी कमण्डलु आदि को देख शोध कर उठाना रखना आदाननिक्षेपण समिति है, त्रस जीव रहित प्रासुक भूमि पर मल मूत्रादि का छोड़ना प्रतिष्ठापनासमिति है, ऐसी ये पांच समिति हैं।

(८३) सामायिक, वन्दना, स्तवन, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कार्योत्सर्ग ये साधु के आवश्यक कर्म हैं।

(८४) स्थविरकल्पी और जिनकल्पी ऐसे दो प्रकार के जैन साधु होते हैं। दोनों वनवासी हैं, दोनों नग्न रहते हैं, दोनों अट्ठाईस मूलगुण के धारक होते हैं, दोनों सर्व परिग्रह के त्यागी वैरागी होते हैं। परन्तु स्थविरकल्पी साधु शिष्य समुदाय के साथ में रहते है, तथा सभा में बैठकर धर्मोपदेश देते और सुनते हैं, पर जिनकल्पी साधु शिष्य समूह छोड़ कर निर्भय अकेले विचरते हैं और महा तपश्चरण करते हैं, तथा कर्म के उदय से आई हुई बाईस परीषह सहते हैं।

(८५) गर्मी के दिनोंमें धूप में खड़े रहते हैं यह उष्ण परीषह-जय है, शीत ऋतु में जाड़े से नहीं डरते यह शीतपरीषहजय है, भूख लगे तब धीरज रखते हैं, यह भूखपरीषहजय है, प्यास में पानी नहीं चाहते यह तृषापरीषहजय है, डांस मच्छर का भय नहीं करते, यह दंशमशकपरीषह का जीतना है, धरती पर सोते

है यह शय्यापरीषहजय है, मारने बांधने के कष्ट से अचल रहते हैं यह वधपरीषहजय है, चलने का कष्ट सहते हैं यह चर्यापरीषहजय है, तिनका कांटा लग जावे तो घबराते नहीं यह तृणस्पर्शपरीषह का जीतना है, मल और दुर्गन्धित पदार्थों से ग्लानि नहीं करते यह मलपरीपहजय है, रोगजनित कष्ट सहते हैं, पर उसके निवारण का उपाय नहीं करते, यह रोगपरीषहजय है। इस प्रकार वेदनीयकर्म के उदयजनित ग्यारह परीषह मुनिराज सहते हैं।

(८६) चारित्रमोह के उदय से मुनिराज निम्नलिखित सात परीषह सहते हैं अर्थात् जीतते हैं।

(१) नग्न दिगम्बर रहने से लज्जा और संकोचजनित दुःख सहते हैं, यह नग्नपरीषहजय है, (२) कर्ण आदि इन्द्रियों के वषयों का अनुराग नहीं करना सो अरतिपरीषहजय है। (३) स्त्रियों के हाव भाव में मोहित नहीं होना, स्त्री परीषह जय है। (४) मान अपमान की परवाह नहीं करते यह सत्कार पुरस्कार परीषहजय है। (५) भय का निमित्त मिलने पर भी आसन ध्यान से नहीं हटना, सो निषद्यापरीषहजय है। (६) मूर्खों के कटु वचन सह लेना, आक्रोश परीषह का जीतना है। (७) प्राण जावे तो भी आहारादिक के लिये दीनतारूप प्रवृत्ति नहीं करना, यह याचनापरीषहजय है। ये सात परीषह चारित्रमोह के उदय से होती हैं।

(८७) ज्ञानावरणीयजनित दो परीषह हैं। अल्पज्ञान होने से लोग छोटा गिनते हैं, इससे जो दुख होता है उसे साधू सहते हैं, यह अज्ञानपरीषहजय है। ज्ञान की विशालता होने पर गर्व नहीं करते, यह प्रज्ञापरीषहजय है। ऐसी ये दो परीषह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जैन साधु सहते हैं।

(८८) दर्शनमोहनीय के उदय से सम्यग्दर्शन में कदाचित् दोष उपजे तो वे सावधान रहते हैं—चलायमान नहीं होते, यह दर्शनपरीषहजय है। अन्तरायकर्म के उदय से वाञ्छित पदार्थ की प्राप्ति न हो, तो जैन मुनि खेद खिन्न नहीं होते, यह अलाभपरीषहजय है।

(८९) वेदनीय की ग्यारह, चारित्रमोहनीय की सात, ज्ञानावरणीय की दो, अन्तराय की एक और दर्शनमोहनीय की एक ऐसी सब बाईस परीषह हैं। उनमें से कोई मनजनित, कोई वचन जनित और कोई कायजनित हैं। इन बाईस परीषहों में से एक समय में एक साधु को अधिक से अधिक उन्नीस तक परीषह उदय आती हैं। क्योंकि चर्या, आसन और शय्या इन तीन में से कोई एक और शीत उष्ण में से कोई एक, इस तरह पांच में दो का उदय होता है शेष तीन का उदय नहीं होता।

(९०) स्थविरकल्पी और जिनकल्पी दोनों प्रकार के साधु एकसे निग्रन्थ होते हैं और अनेक प्रकार की परीषह जीत कर मोक्ष मार्ग साधते हैं (९१) जो साधु संघ में रहते हैं वे स्थविरकल्पधारी हैं और जो एकल विहारी हैं वे जिनकल्पधारी हैं।

(९२) स्थविरकल्पी साधु किंचित् सरागी होते हैं, और जिनकल्पी साधु अत्यन्त वैरागी होते हैं। यह छट्ठे गुणस्थान का यथार्थ स्वरूप वर्णन किया।

(९३) अब स्थिरता के स्थान अप्रमत्तगुणस्थान का वर्णन करते हैं, जहां धर्म ध्यान में चंचलता लाने वाली पंच प्रकार की प्रमाद क्रिया नहीं है और मन धर्म ध्यान में स्थिर होता है।

(९४) जिस गुणस्थान के अन्त तक चारित्रमोह के उपशम व क्षयका कारण अधःप्रवृत्तिकरण चालित रहता है और प्रमाद विहार नहीं रहता वह अप्रमत्तगुणस्थान है।

(९५) अव अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान का वर्णन करता हूं, जहाँ मोह का किंचित् उपशम अथवा किंचित् क्षय होता है।

(९६) इस गुणस्थान में ऐसे विशुद्ध परिणाम होते हैं, जैसे पूर्व में कभी नहीं हुए थे, इसीलिये इस आठवें गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण है। यहाँ चारित्रके तीन करणोंमें से अपूर्वकरण नामक दूसरा करण होता है।

(९७) हे भाई, अव अनिवृत्तिकरन नामक नव में गुणस्थान का स्वरूप सुनो। जहाँ परिणामों की अधिक स्थिरता हैं, इससे पहले आठवें गुणस्थान में जो परिणाम किंचित् चपल थे, वे यहां अचल हो जाते हैं।

(९८) जहां चढ़े हुए परिणाम फिर नहीं गिरते, वह नवमा गुणस्थान कहलाता है। इस नव में गुणस्थान में चारित्रमोहनीय का वह अंश नष्ट हो जाता है, यह चारित्र का तोसरा करण है।

(९९) अव दशवें गुणस्थान का वर्णन करता हूं, जिसमें आठवें और नवमें गुणस्थान के समान उपशम और क्षायिकश्रेणी के भेद हैं। जहाँ मोक्ष को अत्यन्त सूक्ष्म अभिलाषा मात्र है, यहाँ सूक्ष्म लोभ का उदय है इससे इसे सूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं।

(१००) अव ग्यारहवें गुणस्थान उपशांतमोह की सामर्थ्य कहता हूँ, यहां मोह का सर्वथा उपशम है—विल्कुल उदय नहीं दिखता और जीव का यथाख्यात चारित्र प्रकट होता है।

(१०१) जिस गुणस्थान को प्राप्त होकर जीव अवश्य ही गिरता है, और प्राप्त हुए गुणों को नियम से नष्ट करता है, वह उपशम चारित्र की चरम सीमा प्राप्त करने वाला ग्यारहवाँ गुणस्थान है।

(१०२) जहाँ जीव मोह को सर्वथा क्षय करता है, वा केवल-

ज्ञान बिलकुल समीप रह जाता है और यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है, वह क्षीणमोह नामक बारहवाँ गुणस्थान है।

(१०३) उपशम श्रेणी की अपेक्षा छट्ठे, सातवें, आठवें, नवमें, दशवें और ग्यारहवें गुणस्थान का उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त वा जघन्य काल एक समय है।

(१०४) क्षपकश्रेणी में आठवें, नवमें, दशवें और बारहवें गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त तथा जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त है।

(१०५) चित्त की वृत्ति को चूर्ण करने वाले क्षीणमोहगुणस्थान का कथन समाप्त हुआ, अब परमानन्दमय सयोगगुणस्थान की अवस्था वर्णन करता हूँ।

(१०६) जिस मुनि के दुखदायक घातिया चतुष्क अर्थात् ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय नष्ट हो गये और अघातिया चतुष्क जरी जेवरी के समान शक्तिहीन हुए हैं, जिसको अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्तसुख सत्ता और परमावगाढ़ सम्यक्त्व प्रगट हुए हैं। जिसको आयु नाम गोत्र और वेदनीय कर्मों की मात्र अस्सी, इक्यासी, चौरासी वा पचासी प्रकृतियों की सत्ता रह गई है, वह केवलज्ञानी प्रभु संसार में सुशोभित होता है, और उसी की अवस्था को सयोग केवली गुणस्थान कहते हैं।

(१०७) जो केवलज्ञानी भगवान् पद्मासन अथवा कायोत्सर्ग मुद्रा धारण किये हुए हैं, जो क्षेत्र स्पर्श नामकर्म की प्रकृति के उदय से बिना कदम रक्खे अधर गमन करते है, जिनकी संसार स्थिति उत्कृष्ट आठ वर्ष कम एक करोड़ पूर्व की और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है, वे सर्वज्ञदेव अठारह दोष रहित हैं। पं० बनारसीदासजी कहते हैं कि उन्हें मेरी त्रिकाल वन्दना है।

(१०८) जन्म, मृत्यु निद्रा भय, रोग, शोक, आश्चर्य, मोह ईर्षा, खेद, पसीना, गर्व, द्वेष, रति, चिंता, राग, प्यास, भूख ये अठारह दोष सयोगकेवली जिनराज को नहीं होते, और निर्विकल्प आनन्द में सदा लीन रहते हैं।

(१०९) तेरहवें गुणस्थानमें भगवानकी अतिशयमय निरक्षरी दिव्यध्वनि खिरती है। उनका परमौदारिक शरीर सप्त धातु और मल मूत्र रहित होता है। केश रोम और नाखून नहीं बढ़ते, इन्द्रियों के विषय नष्ट हो जाते हैं, पवित्र यथाख्यात-चारित्र प्रगट होता है, स्थिर शुक्लध्यानरूप चन्द्रमा का उदय होता है, लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञान पर उनका साम्राज्य रहता है।

(११०) यह सयोगी गुणस्थान का वर्णन किया, अब अयोग-केवली गुणस्थान का वास्तविक वर्णन करता हूं।

(१११) जहाँ पर किसी जीव को असाता का उदय रहता है साता का नहीं रहता, और किसी जीव को साता का उदय रहता है असाता का नही रहता, जहां जीव के मन वचन काय के योगों की प्रवृत्ति सर्वथा शून्य हो जाती है, जिसके जगज्जयी होने के गीत गाये जाते हैं, जिसको सयोगी जिनके समान अघातिया कर्म प्रकृतियों की सत्ता रहती है, सो उन्हें अन्त के दो समयों में सर्वथा क्षय करते हैं, जिस गुणस्थान का काल ह्रस्व पंच अक्षर प्रमाण है, वह अयोगी जिन चौदहवां गुणस्थान है।

(११२) गुणस्थानों की ये चौदह अवस्थायें संसारी अशुद्ध जीवों की हैं। आस्रव और संवर भाव, वन्ध और मोक्ष की जड़ हैं अर्थात् आस्रव वन्ध की जड़ है और संवर मोक्ष की जड़ है।

(११३) जव तक आस्रव और संवर के परिणाम हैं, तव तक जीव का संसार में निवास है। उन दोनों में आस्रव-विधि का

व्यवहार संसार-मार्ग की परिणति है, और संवर-विधिका व्यवहार मोक्ष-मार्ग की परणति है (११४) आस्रव वन्ध का उत्पादक है और संवर ज्ञान का रूप है, मोक्षपद का देने वाला है। जिस संवर से आस्रव का अभाव होता है, उसे नमस्कार करता हूं।

(११५) आस्रवरूप राक्षस जगत के जीवों को अपने वश में करके अभिमानी हो रहा है, जो अत्यन्त दुखदायक और महाभयानक है, उसका वैभव नष्ट करने के लिये जो उत्पन्न हुआ है, जो धर्म का धारक है, कर्मरूप रोग के लिये वैद्य के समान है, जिसके प्रभाव के आगे परद्रव्य जनित राग द्वेष आदि विभाव दूर भागते हैं, जो अत्यन्त प्रवीन और अनादिकाल से नहीं पाया था इसलिये नवीन है, जो सुख के समुद्र की सीमा को प्राप्त हुआ है, जिसने संवरका रूप धारण किया है, जो मोक्षमार्ग का साधक है ऐसे ज्ञानरूप बादशाह को मेरा प्रणाम है।

तेरहवें अधिकार का सार

जिस प्रकार सफेद वस्त्र पर नाना रँगो का निमित्त लगने से वह अनेकाकार होता है, उसी प्रकार शुद्ध बुद्ध आत्मा पर अनादि काल से मोह और योगों का सम्बन्ध होने से उसकी संसारी दशा में अनेक अवस्थायें होती हैं, उन ही का नाम गुणस्थान है। यद्यपि वे अनेक हैं पर शिष्यों के सम्बोधनार्थ श्रीगुरु ने १४ बतलाये हैं। ये गुणस्थान जीव के स्वभाव नहीं हैं, पर अजीव में नहीं पाये जाते जीव में ही होते हैं, इसलिये जीव के विभाव हैं, अथवा यों कहना चाहिए कि, व्यवहार नय से गुणस्थानों की अपेक्षा संसारी जीवों के चौदह भेद है।

पहले गुणस्थान में मिथ्यात्व दूसरे में अनन्तानुबन्धी, तीसरे में मिश्रमोहनीय का उदय मुख्यतया रहता है, और चौथे गुण-

स्थान में मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी और मिश्रमोहनीय का पाँचवें में अप्रत्याख्यानावरणीय का, छट्ठे में प्रत्याख्यानावरणीय का अनोदय रहता है। सातवें आठवें और नवमें में संज्वलन का क्रमशः मन्द, मन्दतर, मन्दतम उदय रहता है, दसवें में संज्वलन सूक्ष्मलोभ मात्र का उदय और सर्वमोह का अनोदय है, ग्यारहवें में सर्वमोह का उपशम और बारहवें में सर्वमोह का क्षय है। यहाँ तक छद्मस्थ अवस्था रहती है, केवलज्ञान का विकाश नहीं है। तेरहवें में पूर्णज्ञान है परन्तु योगों के द्वारा आत्मप्रदेश सकम्प होते है, और चौदहवें गुणस्थान में केवलज्ञानी प्रभु के आत्म प्रदेश भी स्थिर हो जाते हैं। सभी गुणस्थानों में जीव सदेह रहता है, सिद्ध भगवान गुणस्थानों की कल्पना से रहित हैं, इसलिये गुण-स्थान जीव के निज स्वरूप नहीं हैं, पर हैं, परजनित हैं, ऐसा जान कर गुणस्थानों के विकल्पों से रहित शुद्ध बुद्ध आत्मा का अनुभव करना चाहिये।

ग्रंथ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति

(१) भाषा का समयसार ग्रन्थ समाप्त हुआ और गुणस्थान अधिकार का वर्णन किया। इसका और कहां तक वर्णन करें, शक्ति अनुसार कहकर चुप हो रहना उचित है।

(२) ग्रन्थरूप समुद्र का पार नहीं पा सकते, ज्यों ज्यों कथन किया जावे त्यों त्यों बढ़ता ही जाता है, क्योंकि नाटक अपरम्पार है और कवि की बुद्धि तुच्छ है।

(३) समयसार नाटक का वर्णन महान है, और कवि की बुद्धि थोड़ी है, इससे पंडित बनारसीदास जी कहते हैं, कि उसे कोई पूरा पूरा नहीं कह सकता।

(४) यदि कोई अकेला योद्धा अपने बाहुबल के द्वारा चक्रवर्ती के दल से लड़े, तो वह कैसे जीत सकता है? अथवा कोई जलतारिणी विद्या में कुशल मनुष्य स्वयंभूरमण समुद्र को तैरना चाहे, तो कैसे पार पा सकता है? अथवा कोई उद्योगी मनुष्य मन में उत्साहित होकर विधाता जैसा काम करना चाहे, तो कैसे कर सकता है? उसी प्रकार मेरी बुद्धि अल्प है वा काव्य-कौशल कम है और नाटक महान् है, इसका मैं कहां तक वर्णन करूँ।

(५) जिस प्रकार एक वट के वृक्ष में अनेक फल होते हैं, प्रत्येक फल में बहुत से बीज तथा प्रत्येक बीज में फिर वट वृक्ष का अस्तित्व रहता है, और बुद्धि से काम लिया जावे तो फिर उस वट वृक्ष में बहुत से फल और प्रत्येक फल में बहुत से बीज और प्रत्येक बीज में वट वृक्ष की सत्ता प्रतीत होती है, इस प्रकार वट वृक्ष के अनन्तपने की थाह नहीं मिलती। उसी प्रकार जीव रूपी नट की एक सत्ता में अनन्त गुण हैं, प्रत्येक गुण में अनन्त पर्यायें हैं, प्रत्येक पर्याय में अनन्त नृत्य हैं, प्रत्येक नृत्य में अनन्त खेल हैं, प्रत्येक खेल अनन्त कलायें हैं, और प्रत्येक कला की अनन्त आकृतियें हैं, इस प्रकार जीव बहुत ही विलक्षण नाटक करने वाला है।

(६) ब्रह्मज्ञानरूपी आकाश में यदि श्रुतज्ञानरूपी पक्षी शक्ति अनुसार उड़ने का प्रयत्न करे, तो कभी अन्त नहीं पा सकता।

(७) ब्रह्मज्ञानरूप आकाश अनन्त है और श्रुतज्ञान परोक्ष है, कहां तक दौड़ लगावेगा? अब जिन्होंने समयसार की ऐसी रचना की है उन तीनों के नाम कहता हूं।

(८) इसे पहले स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य ने प्राकृत गाथा छन्द में रचा और समयसार नाम रक्खा। उन्हीं की कृति पर उन्हीं के

आम्नायी स्वामी अमृतचन्द्रसूरि ने संस्कृत भाषा में कलशा रचकर प्रसन्न हुए। पश्चात् श्रीमाल जाति में पण्डित बनारसीदास जी श्रावकधर्म प्रतिपालक हुए उन्होंने कवित्त रचना करके हृदय में ज्ञान का बीज बोया। यों तो शब्द अनादि है उसका पदार्थ अनादि है, जीव अनादि है, नाटक अनादि है, इसलिये नाटक समयसार अनादि काल से ही है।

(९-१०) अब सुकवि कुकविकी थोड़ीसी वास्तविक चर्चा करता हूँ। उनमें सुकविका दर्जा अव्यल है। वे पारमार्थिक रसका वर्णन करते हैं, मन में कपोल कल्पना नहीं करते और ऋषि परम्परा के अनुसार कथन करते हैं। सत्यार्थ-मार्ग को नहीं छोड़ते और असत्य कथन से प्रीति नहीं जोड़ते।

(११) जो छन्द, शब्द, अक्षर, अर्थ की रचना सिद्धान्त के अनुसार करते हैं वे ज्ञानी सुकवि हैं।

(१२-१३) अब जैसा कुकवि होता है सो कहता हूँ, उसे सुनो, वह पापी हृदय का अंधा हठग्राही होता है। उसके मन में जो नई कल्पनाएं उपजती हैं, उनका और संसारिक रस का वर्णन बड़ प्रेम से करता हैं। वह मोक्ष मार्ग का मर्म नहीं जानता और मन में ख्याति लाभ पूजा आदि की चाह रखता है। वह वचन को आत्मा जानता है, हृदय का मूर्ख होता है, उसे शास्त्र ज्ञान नही है।

(१४) वह वचन में लीन होकर संसार में भटकता है, वचन की ममता छोड़ कर कथन नहीं करता। संसार में वचन अनादि-काल का है यह तत्व कुकवि लोग नहीं समझते।

(१५) जिस प्रकार किसी स्थान से पानी की धारा शाखा-रूप हो कर नदी से निकलती है और फिर उसी नदी में मिल जाती हैं, वह शाखा शहर में जहाँ तहाँ होकर वह निकलती है,

सो जिस के मकान के पास हो कर बहती है वही कहता है कि, यह पानी मेरा है, उसी प्रकार हृदय रूप घर है और घर में अनादि ब्रह्म है और प्रत्येक के मुख में अनादि काल का वचन है, कर्म की लहरों से उच्छ्वासरूप हवा बहती है इसस मूर्ख जीव उसे अपनी ध्वनि कहते हैं।

(१६-१७) इस प्रकार मिथ्यादृष्टि कुकवि उन्मार्ग पर चलते हैं और अभिमान में मस्त होकर अन्यथा कथन करते हैं। वे पदार्थ का असली स्वरूप नहीं देखते, बाह्य दृष्टि से असत्य परणति देख कर झूठा वर्णन करते हैं।

(१८) कुकवि माँस के पिन्ड रूप कुचों को सुवर्णघट कहते हैं, कफ खखार आदि के घर रूप मुख को चन्द्रमा कहते हैं, हड्डी के दाँतों को हीरा मोती कहते हैं, मांस के ओठों को कुँदरू कहते है, हाड़ के दण्डों रूप भुजाओं को कमल की डंडी अथवा कामदेव की पताका कहते हैं, हड्डी के खम्भेरूप जांघों को केले का वृक्ष कहते हैं। वे इस प्रकार झूठी झूठी युक्तियां गढ़ते हैं और कवि कहलाते हैं, इतने पर भी कहते हैं हमें सरस्वती का वरदान है।

(१९) जो प्राणी मिथ्यादृष्टि और कुकवि होते हैं, उनका कहा हुआ वचन असत्य होता है, परन्तु जो सम्यग्दर्शन से सम्पन्न होकर शास्त्रोक्त कविता करते हैं, उनका वचन श्रद्धान करने योग्य होता है।

(२०) जिन की वाणी शास्त्रोक्त होती है और हृदय में तत्त्व श्रद्धान होता है, उनका मन और वचन दोनों प्रमाणिक हैं और वे ही सुकवि हैं।

(२१) अब यह बात कहता हूँ कि नाटक समयसार की काव्य-रचना किस प्रकार हुई है। इस ग्रन्थ के मूल कर्त्ता कुंद-कुंद स्वामी और टीकाकार अमृतचन्द्रसूरि हैं।

(२२) समयसार नाटक की सुखदायक संस्कृतटीका पण्डित लोग पढ़ते और विशेष ज्ञानी समझते हैं, परन्तु अल्प बुद्धि जीवों की समझ में नहीं आ सकती थी।

(२३-२४) जैन धर्मी पांडे राजमल जो नाटक समयसार के ज्ञाता ने इस ग्रन्थ का बाल बोध सहज-टीका की। इस प्रकार समय पाकर इस आध्यात्मिक-विद्या की भाषा वचनिका विस्तृत हुई, जगत में जिनवाणी का प्रचार हुआ और घर घर नाटक की चरचा होने लगी।

(२५) प्रसिद्ध शहर आगरे में निमित्त मिलने पर इस के बहुत से जानकार हुए, उन में पाँच मनुष्य अत्सन्त कुशल हुए, जो दिन रात ज्ञान-चर्चा में लवलीन रहते थे।

(२६-२७) पहले पण्डित रूपचंद जी, दूसरे पन्डित चतुर्भुज जी, तीसरे पण्डित भगोतीदास जी, चौथे पण्डित कुँवरपाल जी और पाँचवें पण्डित धर्मदास जी। ये पाँचों सज्जन मिल कर एक स्थान में बैठते तथा मोक्ष मार्ग की चर्चा करते थे और दूसरी वार्ता नहीं करते थे।

(२८) ये कभी नाटक का रहस्य सुनते, कभी और शास्त्र सुनते और कभी तर्क खड़ी करके ज्ञान चर्चा करते थे।

(२९) कुँवरपाल जी का चित्त कौरा अर्थात् कोमल था, धर्मदास जी धर्म के धारक थे, भगोतीदास जी सुमतिवान थे,

चतुर्भुज जी के भाव स्थिर थे और रूपचन्द जी का प्रकाश चन्द्रमा के समान था।

(३०) जहां तहां जिनवाणी का प्रचार हुआ, पर जिसकी बुद्धि मलिन है वह नहीं समझ सका। जिसके चित्तमें स्वाभाविक ज्ञान उत्पन्न हुआ है वह इसका रहस्य तुरन्त समझ जाता है।

(३१) प्रत्येक हृदय में जिनराज और जैनधर्म का निवास है परन्तु मजहब के पक्षरूपी शराब पी लेने से मत वाले लोग नहीं समझते।

(३२-३३) अधिक महिमा कहां तक कहें, मुद्दे की बात कह देना उचित है। प्रसिद्ध शहर आगरे में बनारसी नामक सहज ज्ञानी हुए, उनमें काव्य-कौशल था और ऊपर कहे हुए पांचों भाई उन पर कृपा रखते थे, इन्होंने निष्कपट होकर सरल चित्त से हँसकर कहा।

(३४) जीव का कल्याण करने वाला नाटक समयसार है। उसकी राजमल जी रचित सरल टीका है। भाषा में छन्दबद्ध रचा जावे तो इस ग्रन्थ को सब पढ़ सकते है।

(३५) तब बनारसीदासजी ने मन में सोचा कि यदि इसकी कविता में रचना करूँ, तो जिनवाणी का बड़ा प्रचार होगा। उन्होंने उन पांचों सज्जनों की आज्ञा ली और कवितरूप रचना की।

(३६) वि० सम्वत् सोलहसौ तेरानवे आश्विन मास शुक्ल पक्ष तेरस तिथि रविवार के दिन यह ग्रन्थ समाप्त किया।

(३७) उस समय हजारों बादशाहों में प्रधान महा प्रतापी

[illegible] एक मुसलमान बादशाह शाहजहाँ थे।

(३८) उनके राज्य में आनन्द से इस ग्रन्थ की रचना की और कोई भय वा उपद्रव नहीं हुआ यह उनकी कृपाका फल है।

(३९) ३१० सोरठे और दोहे, २४५ इकतीसे सवैये, ८६ चौपाई, ३७ तेईसा सवैया, २० छप्पय, १८ अट्ठारह कवित्त (घनाक्षरी) ७ अडिल्ल, ४ कुंडलिए ऐसे ये सब मिलकर ७२७ सातसौ सत्ताईस नाटक समयसार के पद्यों की संख्या है, ३२ अक्षर के श्लोक के प्रमाण ने ग्रन्थ-संख्या १७०७ है।

(४०) सब द्रव्यों में आत्मद्रव्य प्रधान है और नाटक के भाव अनन्त हैं, सो उसका आगम में सत्यार्थ कथन है।

ज्ञानी जीव को बंधन ही होता—

ज्ञानी ज्ञान मगन रहै रागादिक मल खोइ।
चित्त उदास करनी करै, करम बंध नहिं होइ ॥३५॥
मोह महातम मल हरै, धरे सुमति परकास।
मुकति पंथ परगट करै, दीपक ज्ञान विलास ॥३६॥

—निर्जरा द्वार

इस प्रकार आप कोई भी दोहा या सवैया या छन्द पढ़िये आपको शांति मिलेगी और आपका मन पर पदार्थों से हटकर कुछ समय तक अपने आप में रम जायेगा।

—'स्वतंत्र जी'

जिसकी जहां जैसी हालत है उसकी वहां वैसी ही दृष्टि है पंडित शुभ-अशुभ दोनों का त्याग कर संसार नष्ट करता है और मूर्ख दोनों में मग्न होकर संसार को बढाता है।

नाटक समयसार

आ० कुन्दकुन्द के प्राकृत ग्रंथ समयसार पाहुड पर अमृतचन्द्र सूरि की आत्मख्याति टीका एवं कलशों पर विक्रम की १७ वीं शताब्दि के पूर्वार्ध में पांडे राजमल जी ने बालबोधिनी टीका लिखी है (गद्य रूप में) इन्हीं रचनाओं के आधार पर बनारसीदास जी ने नाटक समयसार की रचना पद्यों में की है। कवि की यह केवल एक प्रकार से समयसार पर हिन्दी का टीका' मात्र है, फिर भी आपने अपनी अपूर्व काव्य-प्रतिभा द्वारा इतनी विशेषता ला दी है कि नाटक समयसार का आप कोई भी पद्य पढ़िये आप आत्मविभोर हो जायेंगे और आपके लिए कवि की अपूर्व छटा दिखाई देगी। कवि ने शब्दों का चुनाव एवं चयन इतना सुन्दर किया है कि पाठक अपने आपको उसमें खोया हुआ अनुभव करता है।

नाटक समयसार में कुल ७२७ छन्द हैं जिनका हिसाब निम्न प्रकार है। ३९० दोहा सोरठा, २४३ सवैया इकतीसा, ८६ चौपाई, ६० सवैया तेईसा, २० छप्पय १८ कवित्त, ७ अडिलम, ५ कुन्डलियां। जब कि मूल कलश २५७ है। कवि ने मूलग्रन्थ के अभिप्राय को खूब विस्तार पूर्वक लिखकर मौलिकता ला दी है चौदहवें गुण को स्वतन्त्र रूप से लिखा है जिसमें ११३ पद्य हैं उत्थानिका में ५० और उपसंहार में ४० पद्य दिये गये हैं। कवि की यह रचना वि० सं० १६९३ में आश्विन शु० १० रविवार विजयादशमी के दिन समाप्त हुई। और एक दिन ऐसा भी आवेगा कि कविवर बनारसीदास आन्तर शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर मुक्ति स्थान में सदा के लिए अनन्त

स्थान बनायेंगे, तब आप आवागमन के चक्कर से अनन्त काल के लिये मुक्त हो जायेंगे।

नाटक समयसार बनारसीदास जी की प्रमुख एवं सर्वश्रेष्ठ रचना है। जैन हिन्दी साहित्य में नाटक समयसार को सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त है। अध्यात्म रस का यह अपूर्व ग्रंथ है। इसका प्रत्येक शब्द आत्मा पर सीधा प्रभाव डालता है, इसको प्रारम्भ करने के पश्चात् छोड़ने को जी नहीं चाहता। समयसार को यदि भाषा साहित्य के अध्यात्म की चरम सीमा कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी ऐसा मैं मानता हूँ। जैन कवियों, विद्वानों एवं लेखकों पर समयसार में वर्णित आध्यात्मिकता का जो प्रभाव पड़ा है वह अवश्य ही उल्लेखनीय है।

नाटक समयसार ही भाषा मध्ययुगीन हिन्दी काल की भाषा मानी गयी है इसका समय १७ वीं शताब्दि से १९वीं शताब्दि (३०० वर्ष) तक माना गया है। इन शताब्दियों में हिन्दी साहित्य की बहुमुखी उन्नति एवं विकास हुआ। महाकवि तुलसीदास, कविवर बनारसीदास, बिहारी, रसखान, भूषन, केशव, रहीम, सेनापति आदि जितने भी उच्च कोटि के कवि हुये हैं, वे सब इन्हीं तीन शताब्दियों के बीच हुये थे। इन कवियों ने हिन्दी साहित्य के प्रचार, प्रसार, विकास एवं उत्थान में अपने जीवन की बाजी लगा दी, उनमें से बनारसीदास जी भी एक थे। यदि इन तीन सदियों के साहित्य को हिन्दी साहित्य से निकाल दिया जाये तो फिर हिन्दी साहित्य निर्जन वन के समान ही दिखाई देगा। शुष्क और नीरव ही दीखेगा।

—'स्वतंत्र जी'

विषय-सूची

अनुभव रस निज पीजिये, अनुभव का सार ।
अनुभव ज्ञान संभारिये, अनुभव का शृंगार ।।

प्रकाशकीय वक्तव्य

कविवर बनारसीदास जी का नाटक समयसार महान अध्यात्मिक है। कवि जैसे अध्यात्म के वेत्ता थे उसी के अनुरूप आपने ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ के स्वाध्याय करने से मुझे खूब शान्ति मिलती है और आनन्द प्राप्त होता है। नाटक समयसार वीर-नि० सं० २४७६ में सस्ती ग्रन्थमाला दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ था, लेकिन अब वह समाप्त हो गया है। अतः केवल पद्य में ही नाटक समयसार छपवाना आरम्भ कर दिया। परन्तु मेरे कुछ मित्रों ने आग्रह किया कि इस पुस्तक में इसका हिन्दी अनुवाद भी होना चाहिए जिनको मैं धन्यवाद देता हूँ।

क्योंकि पुस्तक आधी से अधिक छप चुकी थी इसलिये हिन्दी अनुवाद कविता के साथ साथ न छप सका और पुस्तक के वाद में दिया गया है अर्थ पं० बुद्धिलाल श्रावक देवरी वालों ने किया था और वि० सम्वत् १९८६ में बम्बई से छप चुका है, परन्तु अब नहीं मिलता है। पाठकों को जरा असुविधा तो होगी और प्रमाद वश त्रुटियां रह जाना संभव है क्योंकि जल्दी में ही छपाया गया है पाठक क्षमा करेंगे।

विशेष उल्लेखनीय यह है कि इस ग्रन्थ में प्रस्तावना समयसार, नाटक समयसार, आ० कुन्दकुन्द, पं० बनारसीदास जी के संबंध में पं० ज्ञानचन्दजी स्वतन्त्र सूरत ने अपनी अनुभूति लेखनी

से लिखा है। मैंने स्वतन्त्रजी को लिखा कि मैं समयसार नाटक छपवा रहा हूँ आप प्रस्तावना शीघ्र लिखकर भेज दें। तब आपने अपने कई आवश्यकीय कार्य छोड़कर समय निकालकर प्रस्तावना शीघ्र ही लिख कर भेज दी।

आपका मैं क्या परिचय दूं ? वे स्वयं अपना परिचय हैं और स्वतन्त्र सूरत के नाम से भारतीय जैन सामाज में प्रसिद्ध हैं। प्रति सप्ताह जैन मित्र के माध्यम से परोक्षरूप में आपकी मंजी हुई लेखनी द्वारा परिचय मिलता ही रहता है। मैं नहीं समझ पाता कि स्वतन्त्र जी को किन शब्दों में धन्यवाद दूं।

श्री ला० पन्नालालजी आरची टैक्ट (करोल बाग, देहली) ने १०१) रुपया देकर इस पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग देते हुए पुस्तकालयके जीवनसदस्य बने,इनके लिए मैं आपका आभारी हूं।

श्री मनोहरलाल जी प्रेस वालों ने भी इसके प्रूफ देखने आदि में सहयोग दिया है और लगन से कार्य किया है, मैं आपका ऋणी हूं।

निवेदक :—

राधामोहन जैन

प्रस्तावना

परम स्नेही भाई श्री राधामोहन जी जैन, आन० मंत्री श्री वर्द्धमान जैन पब्लिक लायब्रेरी धर्मपुरा एवं संचालक–राधा फेन्सी स्टोर्स, चान्दनी चौक दिल्ली का मेरे पास पत्र आया कि मैं श्रीवर्द्धमान जैन पुस्तकालय की ओर से नाटक समयसार प्रकाशित कर रहा हूं। आप नाटक समयसार पर एवं पं० बनारसीदासजी के संबंध में प्रस्तावना के रूप में लिखकर शीघ्र ही भेज दें। आपकी लेखनी से मेरे हृदय को बड़ी शान्ति मिलती है।

श्री राधामोहनजी की बात को मानना ही पड़ा और समय निकालकर मैंने समयसार का महत्व, आ० कुन्दकुन्दका संक्षिप्त जीवन परिचय, नाटक समयसार, पं० बनारसीदासजी का संक्षिप्त जीवन चारित्र ऐसे ४ लेख दिये हैं। आदि के जो दो लेख हैं उनकी भी मेरे लिये विशेष आवश्यकता प्रतीति हुई।

यदि आ० कुन्दकुन्ददेव समयसार न रचते तो फिर आत्म-ख्याति टीका, कलश, परम अध्यात्म तरंगिणी, नाटक समयसार आदि टीका ग्रन्थ हमें देखने को ही नहीं मिलते। मेरी दृष्टि में समयपाहुड़ विशाल वृक्ष है और इसके ऊपर लिखी गयी विभिन्न गद्य पद्य टीकायें (संस्कृत, ढूंढारी आदि भाषा में) पुष्प हैं और समय पाहुड़ रूपी वृक्ष के जनक कलिकाल सर्वज्ञ आ० कुन्दकुन्द हैं। इसी सदाशय को लेकर आगे दो लेख दिये गये हैं। जो कि पाठकों एवं स्वाध्याय प्रेमियों के लिये उपयुक्त ही होंगे। ऐसा मैं मानता हूं।

श्री राधामोहनजी सरल भद्र एवं विनम्र प्रकृति के निष्ठावान धार्मिक प्रेमी एवं परोपकारी हैं। सेवाभावी आप सदा से ही रहे हैं।(अप्रत्यक्षरूप में आप अनेक संस्थाओं के मूक सेवक एवं पोपक हैं, अभावग्रस्तों को आप गुप्तरूप से उनके अनुरूप सेवायें करते ही रहते हैं) आप सदैव हँसमुख रहते हैं। विशेपता यह है कि आप अपने को लघु तुच्छ मानते हैं। यह आपके विनय गुण का द्योतक है।

अव आपका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर विशेप रहता है और नाटक समयसार आपका सर्व प्रिय ग्रन्थ है। आनन्द की वात यह है कि नाटक समयसार छपाने का अर्थ व्यय आपने ही वहन किया है। अतएव आपको जितना धन्यवाद दिया जाये कम है। मेरे ४ लेखों में जो त्रुटियां हैं उनका अधिकारी मैं हूं और शेप के अधिकारी आप सव हैं। लेखों में अर्धकथानक, वनारसीविलास वीर पाठावलि, जैनाचार्य, आदर्श युग निर्माता आदि ग्रन्थों से सहायता ली गई है।

माघ शु० १४ शुक्रवार
वीर नि० सं० २४९२
ता० ४-२-६२

ज्ञानचन्द्र जैन
"स्वतन्त्र"
सूरत

देवाधिदेव श्री १००८ भगवान् पार्श्वनाथजी
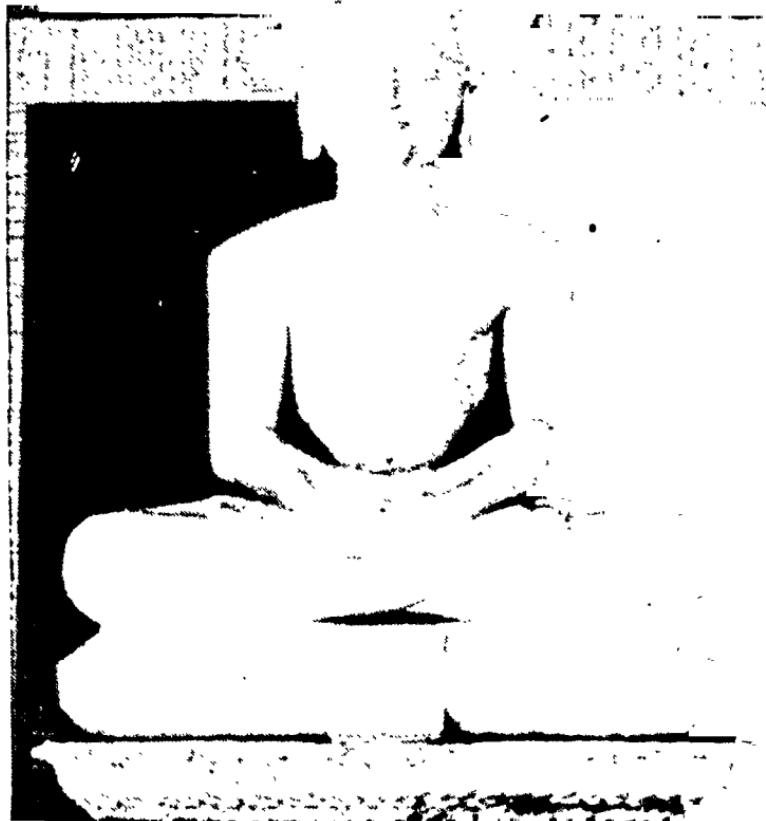
नरेन्द्रं फणीद्रं सुरेन्द्रं अधीशं। शतेन्द्रं सुपूजैं भजैं नाथ शीशं।
मुनींद्र गणेन्द्रं नमों जोड़ हाथं। नमो देव देवं सदा पार्श्वनाथं॥

श्रीवीतरागाय नमः ।

कविवर स्व० पं० बनारसीदासकृत छन्दोबद्ध

समयसार नाटक

श्री पार्श्वनाथ--स्तुति

करम-भरम जग-तिमिर-हरन-खग, उरग-लखन-पग शिवमग दरसी। निरखत नयन भविक जल बरखत,हरखत अमित भविकजन-सरसी ॥ मदन-कदन-जित परम-धरम-हित, सुमिरत भगत भगत सब डरसी। सजल जलद-तन मुकुट सपत-फन, कमठ दलन जिन नमत बनरसी ॥१

सर्व लघु स्वरांत अक्षरयुक्त छप्पय छंद ।

सकल करमखल-दलन, कमठ-सठ-पवन कनक-नग। धवल परमपद-रमन जगतजन अमल कमल खग ॥ परमत जलधर पवन, सजल घनसमतन समकर। पर-अघ रजहर

जलद, सकल जन नत भव-भय-हर ।। जम-दलन नरक-पद छय-करन, अगम अतट-भव-जल-तरन । वर सबल मदन वन हर-दहन, जय जय परमअभय करन ।। २

सवैया इकतीसा ।

जिन्हके वचन उर धारत जुगल नाग, भये धरनिंद पदमावति पलक में । जाके नाम महिमासों कुधातु कनक करै, पारस पखान नामी भयो है खलक में ।। जिनकी जनमपुरी नामके प्रभाव हम, अपनो स्वरूप लख्यो भानसो भलक में । तेई प्रभु पारस महारस के दाता अब, दीजे मोहि साता दृगलीला की ललक में ।।३

सिद्ध भगवानकी स्तुति । (अडिल्ल)

अविनाशी अविकार, परम रसधाम हैं । समाधान सरवंग, सहज अभिराम हैं । शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध , अनादि अनंत हैं । जगत शिरोमनि सिद्ध, सदा जयवंत हैं ।।४

साधुरूप भगवानकी स्तुति । सवैया इकतीसा ।

ज्ञान कौ उजागर सहज सुख सागर, सुगुण रतनागर विरागरस भर्यौ है । सरन की रीति हरै मरन को भैं न कर, करनसों पीठ दे चरण अनुसर्यौ है ।। धरमको मंडन भरम को विहंडन है, परम नरम ह्वै के करमसों लर्यौ है । ऐसौ मुनिराज भुवलोकमें विराजमान, निरखि बनारसी नमस्कार कर्यौ है ।। ५

सम्यग्दृष्टि स्तुति। (सवैया ८ भगण)

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिम चंदन। केलि करैं शिव मारग में, जग मांहि जिनेश्वर के लघुनंदन। सत्य स्वरूप सदा जिन्हके, प्रगट्यौ अवदात मिथ्यात-निकंदन। सांत दशा तिन्हकी पहिचान करैं कर जोरि बनारसि वंदन ॥६

सवैया इकतीसा।

स्वारथके सांचे परमारथ के सांचे चित्त सांचे सांचे बैन कहैं सांचे जैनमती हैं। काहूके विरुद्ध नांहि परजाय-बुद्धि नांहि, आतमगवेषी न गृहस्थ हैं न जती हैं॥ सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घट में प्रगट सदा, अंतर की लच्छिसों अजाची लच्छपती हैं। दास भगवन्त के उदास रहैं जगत सौं, सुखिया सदीव ऐसे जीव समकिती हैं॥७

सवैया इकतीसा।

जाके घट प्रगट विवेक गनधरकौसौ, हिरदे हरख महामोह कों हरतु है। सांचौ सुख मानै निज महिमा अडोल जानै, आपु ही में आपनो सुभाव ले धरतु है॥ जैसें जल-कर्दम कतकफल भिन्न करै, तैसें जीव अजीव विलछनु करतु है। आतम सकति साधै ज्ञान को उदौ आराधै, सोई समकिती भवसागर तरतु है॥८

मिथ्यादृष्टि। सवैया इकतीसा।

धरम न जानत बखानत भरम रूप, ठौर २ ठानत लराई पक्षपात की। भूल्यौ अभिमान में न पाउं धरे धरनी में, हिरदे में करनी विचारे उतपात की॥ फिरे डाँवाडौल सौ करमके कलोलिनिमें, व्है रही अवस्था सु बवूले कैसे पातकी। जाकी छाती ताती कारी कुटिल कुवाती भारी, ऐसौ ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी॥६

दोहा।

बंदौ शिव अवगाहना, अरु वंदों शिवपंथ।
जसु प्रसाद भाषा करों, नाटक नामगरंथ॥ १०

कवि स्वरूप वर्णन।

चेतन रूप अरूप अमूरति, सिद्ध समान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अङ्ग, कियो परसंग महातम घेरौ॥
ज्ञानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगम केरौ
जासु प्रसाद सधै शिवमारग, वेगि मिटे भववास वसेरौ।११

लघु कविता वर्णन। सवैया इकतीसा

जैसें कोउ मूरख महासमुद्र तिरिवेकों, भुजानिसें उद्यत भयौ है तजि नावरौ। जैसें गिरि ऊपरि बिरखफल तोरिवे कों, वावनु पुरुष कोऊ उमंगै उतावरौ। जैसें जल कुण्डमें निरखि शशि प्रतिबिंब, ताके गहिवेकों कर नीचो करै

टावरो । तैसें मैं अलपबुद्धि नाटक आरंभ कीनो, गुनी मोहि हँसेंगे कहेंगे कोउ बावरो ॥ १२

सवैया इकतीसा ।

जैसें काहू रतनसों बींध्यो है रतन कोउ, तामें सूत रेशम की डोरी पोई गई है । तैसे बुध टीका करि नाटक सुगम कीनौ,तापरि अलप बुद्धि सुद्धि परिनई है ॥ जैसे काहू देशके पुरुप जैसी भाषा कहैं, तैसी तिनहूँ के बालकनि सीख लई है । तैसे ज्यों गंरथको अरथ कह्यो गुरु त्योंहि,हमारी मति कहिवेकों सावधान भई है ॥१३

सवैया इकतीसा ।

कबहू सुमति व्है कुमतिको विनाश करैं, कबहों विमल ज्योति अंतर जगति है । कबहू दया व्है चित करत दयालरूप, कबहू सुलालसा व्है लोचन लगति है ॥ कबहों आरती व्है कैं प्रभु सनमुख आवे, कबहों सुभारती व्है बाहरि बगति है । धरै दसा जैसी तब करै रीति तैसी ऐसी हिरदे हमारे भगवंत की भगति है ॥ १४

सवैया इकतीसा ।

मोक्ष चलिवेको सोंन करम को करै बोन, जाके रस भोन बुध लोन ज्यों घुलत है । गुनको गरंथ निरगुन को सुगम पंथ, जाको जसु कहत सुरेश अकुलत है ॥ याही

के जु पत्ती ते उडत ज्ञानगगन में, याही के विपत्ती जग जाल में रुलत है। हाटकसौ विमल विराटकसौ विसतार नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है ॥ १५

दोहा।

कहौं शुद्ध निहचै कथा कहौं शुद्ध विवहार।
मुक्ति पंथ कारन कहौं, अनुभौको अधिकार ॥१६
वस्तुविचारत ध्यावतैं, मन पावैं विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजे, अनुभौ याकौ नाम ॥१७
अनुभौ चिंतामनि रतन, अनुभौ है रसकूप।
अनुभौ मारग मोक्ष को, अनुभौ मोक्ष सरूप ॥१८

सवैया इकतीसा।

अनुभौके रसकों रसायन कहत जग, अनुभौ अभ्यास यहु तीरथकी ठौर है। अनुभौकी जो रसा कहावै सोई पोरसा सु, अनुभौ अधोरसासों ऊरधकी दौर है ॥ अनुभौ की केलि यहै कामधेनु चित्रावेलि, अनुभौको स्वाद पंच अमृतको कौर है। अनुभौ करम तोरै परमसों प्रीति जोरै, अनुभौ समान न धरम कोऊ और है ॥१९

दोहा।

चेतनवंत अनंत गुन, पर्यय सकति अनंत।
अलख अखंडित सर्वगत, जीव दरव विरतंत ॥२०

फरस वरन रस गन्ध मय, नरद फास संठान ।
अनुरूपी पुद्गल दरव, नभ प्रदेश परवान ॥२१
जैसैं सलिल समूह में, करैं मीन गति कर्म ।
तैसें पुद्गल जीव कौं, चलन सहाई धर्म ॥ २२
ज्यों पंथिक ग्रीषम समै, बैठे छाया मांहि ।
त्यों अधर्म की भूमिमें, जड़ चेतन ठहरांहि ॥ २३
संतत जाके उदर में, सकल पदारथ वास ।
जो भाजन सब जगत कौ, सोई दरव आकाश ॥ २४
जो नवकरि जीरन करैं, सकल वस्तु थिति ठान ।
परावर्त्त वर्त्तन धरैं, काल दरव सो जान ॥ २५
समता रमता उरधता, ज्ञायकता सुखभास ।
वेदकता चैतन्यता, ए सब जीव विलास ॥२६
तनता मनता वचनता, जड़ता जड़ संमेल ।
लघुता गुरुता गमनता, ए अजीव के खेल ॥२७
जो विशुद्ध भावनि बंधै, अरु ऊरधमुख होय ।
जो सुखदायक जगतमें, पुण्य पदारथ सोय ॥२८
संकलेश भावनि बंधै, सहज अधोमुख होय ।
दुखदायक संसार में, पाप पदारथ सोय ॥२९
जोई करमउद्योत धरि, होइ क्रिया रसरत्त ।
करषै नूतन करमकों, सोई आस्रव तत्त ॥३०
जो उपयोग सरूप धरि, वरतै योग विरत्त ।